यह संग्रह

में हिन्दी की अनेक प्रतिष्ठित पत्र-
१९७९ काशित कहानियों में से चुनी ऐसी
पत्रिकाओं में प्र जो हिन्दी कहानी के वर्तमान परिदृश्य
बीस कहानियां हैं निधित्व करती है। ये कहानियां
का सही प्रति के बदलते संदर्भो, विसंगत और
भारतीय जीवन रीति, परम्परागत नैतिक-सामाजिक
चरित्रहीन राज लगते हुए प्रश्न चिह्नों और नव-
मान्यताओं पर व-आधुनिकों में पनपती आदतों को
धनाढ्यों तथा न में निर्ममता से उभारती है।
उनके क्रूर यथार्थ

हिन्दी हानियों का यह संग्रह किसी भी
साहित्य-प्रेमी क, परिवार के लिए अपरिहार्य है।

सं. डा. महीप सिंह

1979 की श्रेष्ठ हिन्दी कहानियां

१९७९ की हिंदी कहानियाँ
एक कथा-वर्ष से गुजरते हुए

—डा० महीप सिंह

किसी एक वर्ष मे प्रकाशित कहानियों को उनकी समग्रता मे पहचानने का प्रयत्न बहुत श्रमसाध्य है और जोखिम से भरा हुआ भी। वर्ष भर की कहानियो को उनके प्रकाशन की अवधि मे धीरे-धीरे पढना या उन्हे एक साथ रख कर पढना इतनी विविधता से गुजरना होता है कि उसमें यह निश्चय करना सरल नही रह जाता कि इस वर्ष की कहानियों मे सवेदना का कोई केन्द्रीय सूत्र है या नही। और यदि है तो वह क्या है? गत वर्ष (१९७८) की कहानियों पर लिखते हुए मैंने अनुभव किया था कि हमारे जीवन मे विविध स्तरों पर असुरक्षा का बोध गहराई तक व्याप्त है। हमारे चरित्र के अनेक विसंगत पहलुओ की पृष्ठभूमि मे इसे अनुभव किया जाता है। उस वर्ष में प्रकाशित अनेक कहानियों के माध्यम से मैंने यह पहचानने की कोशिश की थी कि हमारी कहानियो मे अधिकार के दुरुपयोग, धन और सेक्स की नगी भूख, सभी स्तरो पर लगभग सभी वर्गों द्वारा शोषक और शोषित स्थितियों को ग्रहण करते चले जाने की मानसिकता और हफरा-तफरा से भरी ऐसी अवसरवादिता जिसे सैद्धान्तिकता का निर्लज्ज जामा पहनाया जाता है, को किस प्रकार रेखाकित किया गया है।

सन् १९७९ का वर्ष हमारे देश में उच्च राजनीतिक स्तर पर नैतिक स्खलन, अवसरवादिता सिद्धातों की सुमरनी से

झाकती हुई सिद्धातहीनता, धन-शक्ति का खुला खेल और घृणित्त वैयक्तिक महत्वाकांक्षाओ का वर्ष था। सिद्धान्तहीन राजनीति का नंगा नाच इस कदर देश में खेला गया कि ऐसा लगने लगा कि सिद्धान्तहीनता, मूल्यहीनता और चरित्रहीनता ही इस देश के सबसे बड़े सिद्धान्त, मूल्य और चरित्र बन गये हैं। देश के स्तर पर व्यक्ति असुरक्षित महसूस कर रहा था क्योंकि दल-बदल की राजनीति में ख्यातिनामा राजनेता खुले आम बिक रहे थे, इसलिए प्रशासन नाम की चीज लुप्त होती जा रही थी। जीवन के स्तर पर वह इसलिए असुरक्षित महसूस कर रहा था, क्योंकि सड़क की किस नुक्कड़ पर, बस की सीट, रेल के किस डिब्बे में लपलपाते हुए चाकू की चमक कब उसे चकाचौंध करती हुई उसे अपनी गिरफ्तमें ले लेगी इसका कोई भरोसा नहीं था। और रोज-मर्रा की जरूरत की चीजो के बढ़ते हुए भावों के कारण परिवार स्तर पर उसकी कठिनाइया उसके दशम द्वार से टकरा-टकरा कर उसे चेतना शून्य बना रही थीं।

भ्रष्ट और अवसरवादी राजनीति पर कुछ अच्छी कहानिया और व्यंग्य इस वर्ष पढने को मिले। शरदजोशी, हरिशंकर पर-साई, अशोक शुक्ल, के० पी० सक्सेना, नरेन्द्र कोहली, लक्ष्मीकात वैष्णव आदि अनेक व्यंग्य लेखकों ने राजनीति और उससे जुडे हुए व्यक्तियो की विसंगत स्थितियों और मानसिकता पर अनेक चुटोले व्यंग्य लिखे। **चौराहे पर खड़ा आदमी** (शरद जोशी-साप्ताहिक हिन्दुस्तान २३ सितम्बर, १९७९) में वह व्यक्ति किसी जमाने में समाजवाद के इन्तजार में खड़ा था। फिर वह समग्र क्राति के इन्तजार में खड़ा रहा। लोगों ने इसे खड़े-खड़े सूखते देखा है और सूखने की स्थिति में फलते-फूलते देखा है। वादो, इरादो, सिद्धातो, बहसों और निराशाओ के चक्रव्यूह में लम्बा चक्कर काटने के बाद वह फिर चौराहे पर खड़ा था। दल बदल की राजनीति में सिद्धात तो एक ऐसे कम्बल की तरह है कि

जरूरत के मुताबिक उसे नीचे भी बिछाया जा सकता है और ऊपर भी ओढ़ा जा सकता है। गेंदालाल कार्यकर्ता में राजनेता गणपत राम का कार्यकर्ता गेंदालाल वर्तमान राजनीतिक की सटीक व्याख्या करता हुआ कहता है…पारटी की राजनीति इस देश में खतम हो गई सुगनामल, आदमी की राजनीति है। अगर जीत गये तो जिधर ज्यादा आदमी इकट्ठा दिखेंगे, उधर ही गणपत राम जी भी हो जायेंगे। समय बोध (महीप सिंह— कादम्बिनी, नवम्बर, १९७९) में जग्गू (पेशेवर गुण्डा) कहता है— "जो चीज लम्बे समय तक रहती है, वह बेजान होती है। जिंदगी की सच्ची हकीकत उस चीज में है जिसके बारे में यह भी भरोसा न हो कि अगले पल वह हमारे हाथ में होगी या नहीं। इसीलिए अपने देश का राजनीतिक जीवन इतनी हरकत से भरा हुआ है। राजनीतिज्ञों से ही मुझे एक बड़े 'गुर' का ज्ञान हुआ है—वह 'गुर' है—समय थोड़ा है, इसलिए 'एल० एम० बी०' फंड का समय रहते भरपूर इस्तेमाल कर लो।" और एल० एम० बी० का मतलब है 'लूटो मेरे भाई'।

सारिका के चुनाव विशेषाक (६ दिसम्बर, १९७९) में हरिशंकर परसाई, के० पी० सक्सेना, जवाहर सिंह, सरोजनी प्रीतम, बलराम, नरेन्द्र कोहली, सुरेश उनियाल, रमेश बत्तरा, राधेश्याम उपाध्याय, राजकुमार गौतम, प्रेम जनमेजय आदि लेखकों ने अपने-अपने ढंग से देश की भ्रष्ट राजनीति की परतों को उधेड़ा है। राजनीति और सत्ता की मदान्धता का क्रूरतम और कुरुपतम रुप राजनेताओं की संतान में देखने को मिलता है। हमारे देश की पुत्र-राजनीति सम्भवत: संसार में अपना सानी नहीं रखती। ऐसे पुत्रों, पुत्रियों और दामादों के काले कारनामे इस देश में बच्चे-बच्चे की जुबान पर रहे हैं, परन्तु आज तक किसी भी राजनेता ने अपनी संतान के कृत्यों की खुली भर्त्सना नहीं की। बल्कि स्थिति यह रही है कि ऐसे सभी कोष किसी न

किसी रूप में अपनी सतान को सरक्षण प्रदान करते रहे है और उनकी छवि को उभारने का प्रयत्न कर रहे हैं। मुशी नेकीरामजी (सरोजनी प्रीतम-सारिका, १६ दिसम्बर, ६७६) में मत्री पुत्रों पर सार्थक व्यग्य किया गया है।

राजनीति और सत्ता के बदलते रूपों पर एक अच्छी फन्तासी-कथा है 'पांचवी डिबिया' (अशोक शुक्ल-सारिका, १६ दिसम्बर, १६७६) राजनीतिक सत्ता किस प्रकार राजतत्र से से अधिनायक तत्र, उससे पूजीवादी तत्र और उससे नेता विमुख पार्टी तत्र की ओर अग्रसित होती है और हर स्थिति में भ्रष्ट होती जाती है, यह इस कहानी का मूल सदेदन बिन्दु है। लेखक ने एक पाचवी डिबिया की भी कल्पना की है—"और जब पाचवी डिबिया खुल जाएगी, तब अपने आप सारी दुनिया से कलुआ प्रेत की हुकूमत हट जाएगी। तब अपने-आप किसी तरह की कोई हुकूमत रह ही नही जाएगी। रह जाएगी सिर्फ--व्यवस्था।

पर कौनसी व्यवस्था ? यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाता है।

आदर्शों की उद्घोषणा और सिद्धातहीन व्यक्तिगत जीवन ने जिस प्रकार का वातावरण इस देश में उत्पन्न किया है उसमें सभी चीजें दिशा-भ्रमित-सी लगती है। इस भ्रमित स्थिति का सबसे दूषित प्रभाव हमारी युवा पीढी पर पडा है जो आदोलन, हडताल, घेराव, आक्रोश प्रदर्शन तो निरन्तर करती रहती है, पर उसे स्वय नही मालूम कि यह सब वह क्यों करती है। **परथम श्रेणी सबको दो** (रमेश उपाध्याय कंक-मार्च/अगस्त—१६७६) **और इसी शहर मे** (सुरेन्द्र तिवारी—साक्षात्कार—मार्च-मई १६७८) इस युवा मानसिकता का चित्रण करने वाली इस वर्ष की विशिष्ट कहानिया है।

कुछ वर्षों मे यह देश चालू मुहावरों का देश बन गया है। राजनीति मे जनतत्र, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, अल्पसंख्यकों

और पिछले वर्गो का हितचिंतन आदि आज के चालू मुहावरे है जिनका उपयोग इस देश के सभी राजनीतिक दल करते है। प्रगतिशील, प्रतिक्रियावाद, बुर्जुआ, फासिस्ट, आम आदमी, जनवाद आदि ऐसे चालू मुहावरे है जिनका अंधाधुध प्रयोग आज युवावर्ग-विशेष रूप से युवा लेखक करता है। **नदी-न्याय** (प्रभु जोशी—नवभारत टाइम्स—४ नवम्बर) कहानी ऐसी चालू मानसिकता के युवकों पर गहरा व्यग्य करती है।

इस वर्ष प्रकाशित कहानियो ने एक विशिष्ट दृष्टि से भी मुझे आकर्षित किया। वृद्धों की मानसिकता पर ससार साहित्य में बहुत अच्छी कथा-कृतियो का सृजन हुआ है। हेमिग्वे की बहुचर्चित कृति—"**ओल्ड मॅन एण्ड द सी**' से लेकर यासानुरी कावाबाता की अनोखी कृति '**हाऊस आफ स्लीपिंग ब्यूटीज**' तक कितनी ही ऐसी रचनाएं है जिनमे वृद्धो की अवश, विवश, ललक भरी, पूर्व स्मृतियो में खोयी और वर्तमान मे अपने अस्तित्व और और सदर्भ की तलाश करती हुई जिंदगियो को चित्रित किया गया है। हिंदी मे वृद्धो की आधिक परवशता को लेकर ही अधिकाश कहानिया लिखी गयी हैं। प्रेमचंद की **बूढी काकी** मे लेकर स्वदेश दीपक की **महामारी** तक मे वृद्ध (एकाकी या युगल) आर्थिक दबाव में पिसता हुआ अपनी ललक के हाथो अमानवीय यातना की स्थिति झेलता रहता है। इस वर्ष **घर लौटने पर** (रामदरश मिश्र दैनिक हिन्दुस्तान—३० दिसम्बर) **वर्षो** (शिवानी—सा० हिंदुस्तान १६ अगस्त) **देशभक्त** (दामोदर सदन—सारिका—१ अक्टूवर) **नये अभिमन्यु** (हृदयेश—धर्मयुग— ६ जनवरी) **सा.न बोर्ड वड़रूफर** (शशिप्रभा शास्त्री—भाषा जून) **गर्मियां** (मृणाल पांडे-धर्मयुग ६दिसम्बर) **चौख** (वेद राही सारिका १मई) **पुण्य की माटी** (सजीव—आजकल—जुलाई) आदि अनेक कहानियों - वृद्ध-जनो की व्यवस्था का चित्रण है। वृद्धों की स्थिति किस वार मे नोकर से बदतर हो जाती है तो कही उनकी स्थिति

के देवता की तरह पूजनीय, परन्तु अधिकार रहित हो गयी है और फिर बार-बार प्रश्न उभरता है कि क्या सचमुच पैसा ही सारे सम्बन्धों का सूत्रधार है। (घर लौटने पर)। **चीख** कहानी में पाकिस्तानी आक्रमण के भय से खाली हुए गांव में एक अकेली बुढ़िया की व्यवस्था का मार्मिक चित्र है। **देश भक्त** कहानी एक अवकाश प्राप्त गर्वीले आई०सी०एस अधिकारी की मानसिकता का बड़ा सूक्ष्म चित्रण करती है तो **साइन बोर्ड बदल कर** कहानी में चित्रित वृद्ध महोदय अपने अतीत के बदरंग हुए गौरव पर दुकानदारी का नया साइन बोर्ड लगाकर अपना धंधा चला रहे हैं।

युवा लेखक सजीव की दो कहानियां **पुण्य की माटी** और **टीस** दो विभिन्न परिवेश के वृद्ध जनों की व्यथा को समेटती है। पुराने जागीरदार श्रीधरराय दुर्गा पूजा की तैयारी उसी तरह करना चाहते हैं जैसे उनके वैभव के दिनों में हुआ करती थी। परन्तु वे दिन तो लद गये। उनकी जवान बेटी शिखा के विवाह की बात देहज की चौखट पर आकर ठिठक जाती है और शिखा रिसेप्शनिस्ट की नौकरी करती उस दलहीज तक अनजाने की पहुंच जाती है जहां की मिट्टी से दुर्गा पूजा के अवसर पर प्रतिमा बनायी जाती है। **टीस** कहानी में छोटा नागपुर के आदिवासी सपेरों की व्यथा-कथा वृद्ध शिबू काका के माध्यम से कही गयी है जिनके जीवन के साथ हमारा सभ्य और धर्मप्राण समाज सदा ही घिनौने खिलवाड़ करता आया है।

विवश वृद्धावस्था के समानान्तर प्रतिरोध करती युवा पीढ़ी का एक संकेत **नये अभिमन्यु** में है। वृद्ध मास्टर बजरंग प्रसाद अपने मकान मालिक का अन्याय सहते आ रहे थे किन्तु एक दिन उनका लड़का स्थिति की विवशता को एक गुम्मे से तोड़ देता है और बरसात की रात में टपकते हुए छत के नीचे सोने वाला परिवार गहरी नींद का सुख पा लेता है।

राजनीतिक और सामाजिक चेतना का कहीं कलात्मक और

कहीं सपाट चित्रण करने वाली अनेक कहानियां इस वर्ष में पढने को मिलीं। **वोरगति** (गिरिराज किशोर—साप्ताहिक हिन्दुस्तान २८ अक्टूबर) व्यवस्था के हाथो पिटते हुए निरीह जन की एक प्रतीक कथा है। **धराशायी** (सिम्मी हर्षिता—धर्मयुग ४ मार्च) छोटी-बड़ी जातियों में बंटे और फटे हुए समाज की नियति पर नश्तर लगाने वाली सार्थक रचना है।

भय लौटा दो (रमाकांत—कालबोध सितम्बर) आज के उस व्यक्ति की मार्मिक कहानी है जो अपने चारो ओर के अन्याय को देखकर बौखलाता है और कुत्ते की तरह हर अन्यायी को काट लेना चाहता है। परन्तु वह भयभीत है, क्योंकि कटैले कुत्ते की नियति भी जानता है। परन्तु वह अन्याय को वर्दाश्त नही करना चाहता, उसमें चीखना चाहता है और डरना चाहता है। कालबोध के इसी अंक में प्रकाशित हेतु भारद्वाज की कहानी **अब यही होगा** में ग्रामीणजनों की राजनीतिक चेतना का चित्रण करती है।

१६७६ का वर्ष अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के रूप में मनाया गया। सामाजिक स्तर पर बाल-कल्याण की अनगिनत योजनाएं बनी, परन्तु उनमें से कितनी सार्थक दिशा की ओर कदम बढा सकी, इसकी चर्चा न करना ही बेहतर है। हमारे देश में ऐसी अनेक कल्याणकारी योजनाएं योजनाकारों को बहसों से निकल कर कागज पर उतरती हैं और उनके निमित्त निर्धारित की गयी धनराशि कागजों पर से चक्कर काटती हुई टी०ए०, डी०ए०, विचौलिए आदि कितने ही माध्यमों को तृप्त करती हुई स्वयं सूख जाती है। इस वर्ष में बाल जीवन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष केन्द्र बना कर कुछ कहानियां लिखी गयी। 'खेल' (मृणाल पांडेय—साप्ताहिक हिन्दुस्तान १४ अक्टूबर) 'चोट' (शांता वर्मा—साप्ताहिक हिन्दुस्तान १८ फरवरी) लाल (इंदिरा मित्तल धर्मयुग १५ अप्रैल) अंधेरे का सैलाब (सुनील कौशिक धर्मयुग—२२ अप्रैल) अपने भीतर की कमजोरी (नफीस आफरीदी धर्मयुग ३ जून) आदि

के देवता की तरह पूजनीय, परन्तु अधिकार रहित हो गयी है और फिर बार-बार प्रश्न उभरता है कि क्या सचमुच पैसा ही सारे सम्बन्धों का सूत्रधार है। (घर लौटने पर)। **चीख** कहानी में पाकिस्तानी आक्रमण के भय से खाली हुए गांव में एक अकेली बुढ़िया की व्यवस्था का मार्मिक चित्र है। **देश भक्त** कहानी एक अवकाश प्राप्त गर्वीले आई०सी०एस अधिकारी की मानसिकता का बड़ा सूक्ष्म चित्रण करती है तो **साइन बोर्ड बदल कर** कहानी में चित्रित वृद्ध महोदय अपने अतीत के बदरंग हुए गौरव पर दुकानदारी का नया साइन बोर्ड लगाकर अपना धंधा चला रहे हैं।

युवा लेखक संजीव की दो कहानियां **पुण्य की माटी** और **टीस** दो विभिन्न परिवेश के वृद्ध जनों की व्यथा को समेटती हैं। पुराने जागीरदार श्रीधराय दुर्गा पूजा की तैयारी उसी तरह करना चाहते हैं जैसे उनके वैभव के दिनों में हुआ करती थी। परन्तु वे दिन तो लद गये। उनकी जवान बेटी शिखा के विवाह की बात दहेज की चौखट पर आकर ठिठक जाती है और शिखा रिसेप्शनिस्ट की नौकरी करती उस दलहीज तक अनजाने की पहुंच जाती है जहां की मिट्टी से दुर्गा पूजा के अवसर पर प्रतिमा बनायी जाती है। **टीस** कहानी में छोटा नागपुर के आदिवासी सपेरों की व्यथा-कथा वृद्ध शिबू काका के माध्यम से कही गयी है जिनके जीवन के साथ हमारा सभ्य और धर्मप्राण समाज सदा ही घिनौने खिलवाड़ करता आया है।

विवश वृद्धावस्था के समानान्तर प्रतिरोध करती युवा पीढ़ी का एक संकेत **नये अभिमन्यु** में है। वृद्ध मास्टर बजरंग प्रसाद अपने मकान मालिक का अन्याय सहते आ रहे थे किन्तु एक दिन उनका लड़का स्थिति की विवशता को एक घुम्मे से तोड़ देता है और बरसात की रात में टपकते हुए छत के नीचे सोने वाला परिवार गहरी नींद का सुख पा लेता है।

राजनीतिक और सामाजिक चेतना का कहीं कलात्मक और

कहीं सपाट चित्रण करने वाली अनेक कहानियां इस वर्ष में पढ़ने को मिली। **वीरगति** (गिरिराज किशोर—साप्ताहिक हिन्दुस्तान २८ अक्टूबर) व्यवस्था के हाथों पिटते हुए निरीह जन की एक प्रतीक कथा है। **धराशायी** (सिम्मी हर्षिता—धर्मयुग ४ मार्च) छोटी-बड़ी जातियों में बंटे और फटे हुए समाज की नियति पर नश्तर लगाने वाली सार्थक रचना है।

भय लौटा दो (रमाकांत—कालबोध सितम्बर) आज के उस व्यक्ति की मार्मिक कहानी है जो अपने चारों ओर के अन्याय को देखकर बौखलाता है और कुत्ते की तरह हर अन्यायी को काट लेना चाहता है। परन्तु वह भयभीत है, क्योंकि कटेले कुत्ते की नियति भी जानता है। परन्तु वह अन्याय को बर्दाश्त नहीं करना चाहता, उसमें चीखना चाहता है और डरना चाहता है। कालबोध के इसी अंक में प्रकाशित हेतु भारद्वाज की कहानी **अब यही होगा** में ग्रामीणजनों की राजनीतिक चेतना का चित्रण करती है।

१९७९ का वर्ष अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के रूप में मनाया गया। सामाजिक स्तर पर बाल-कल्याण की अनगिनत योजनाएं बनी, परन्तु उनमें से कितनी सार्थक दिशा की ओर कदम बढा सकी, इसकी चर्चा न करना ही बेहतर है। हमारे देश में ऐसी अनेक कल्याणकारी योजनाएं योजनाकारों की बहसों से निकल कर कागज पर उतरती हैं और उनके निमित्त निर्धारित की गयी धन-राशि कागजों पर से चक्कर काटती हुई टी०ए०, डी०ए०, बिचौलिए आदि कितने ही माध्यमों को तृप्त करती हुई स्वयं सूख जाती है। इस वर्ष में बाल जीवन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष केन्द्र बना कर कुछ कहानियां लिखी गयी। 'खेल' (मृणाल पांडेय—साप्ताहिक हिन्दुस्तान १४ अक्टूबर) 'चोट' (शांता वर्मा—साप्ताहिक हिन्दुस्तान १८ फरवरी) लाल (इंदिरा मित्तल धर्मयुग १५ अप्रेल) अंधेरे का सैलाब (सुनील कौशिक धर्मयुग—२२ अप्रैल) अपने भीतर की कमजोरी (नफीस आफरीदी धर्मयुग ३ जून) आदि

कहानिया इस वर्ष में प्रकाशित हुई। परन्तु इनमे एक भी कहानी ऐसी नही थी जो बाल वर्ष की अविस्मरणीय रचना बन जाती। मृणाल पाडे की खेल बच्चो की मानसिकता मे असमानता के सूत्रों की अच्छी मनोवैज्ञानिक कहानी है। बच्चो की समस्या के साथ ही जुडे पब्लिक स्कूलो की घिनौनी राजनीति पर लिखी गयी कहानी-उपनिवेश (कुसुम, चतुर्वेदी धर्मयुग १८ नवम्बर) ऐसी शिक्षण सस्थाओ मे व्याप्त भ्रष्टाचार और उसमे जीने वाले अध्यापक की विवशता की एक सार्थक रचना है।

दाम्पत्य जीवन की फिसलन, उलझन और असतुलन भरी जिदगी की दो अच्छी कहानियो का मैं यहा उल्लेख करना चाहता हू। ये कहानिया हैं—**'कच्चे धागे से'** (सुखवीर—नवनीत जुलाई) और **अनावृत कौन** (राजी सेठ—सारिका—१ जनवरी) सुखवीर की कहानी यद्यपि परम्परागत शक्की दिमाग वाले पति द्वारा पत्नी को दी गयी चरम यातना की कहानी है, परन्तु अपने शिल्पगत वैशिष्ट्य के कारण वह पाठक को उस यातना का अतर्ण भागीदार बना देती है। राजी सेठ की कहानी मे पति-पत्नी के बीच समजन की समस्या और गहरी है। प्रकाश पत्नी के माध्यम से भरपूर जिदगी जीना चाहता है, पर ऐसी जिदगी जो मात्र मासलता को छूती चलती है। वह जिदगी की ऊपरी सतहो पर उतराता हुआ चलना चाहता है जबकि उसकी नवविवाहिता पत्नी जिदगी जीना ही नही चाहती, जिदगी मे झाकना भी चाहती है।

पति-पत्नी सम्बन्धो पर एक और अच्छी व्यग्यात्मक कहानी है—**आओ ड्रामा खेलें** (हर दर्शन सहगल—सचेतना, मार्च)

इस देश मे नव-धनाढ्यों और नव-आधुनिको का एक ऐसा वर्ग तेजी से पनप रहा है जिसके लिए सामाजिक मूल्य, मर्यादाए और सम्बन्ध महत्वहीन होते चले जा रहे हैं। इस थीम पर दो अच्छी कहानिया इस वर्ष प्रकाशित हुई—**मंचमेकर** (कुसुम अंसल, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १५ जुलाई) और **पहचान** (सुनीता

जैन, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १५ जुलाई) नव-धनाढ्य वर्ग की चारित्रिक विसगति पर कुसुम अंसल ने कुछ अच्छी कहानियां लिखी हैं। मैच मेकर कहानी भी उसी वर्ग के चरित्र को उद्घाटित करती है जिसमें जीवन की प्राथमिकताओं के फोकस बिन्दु तेजी से बदल रहे हैं।

पहचान कहानी मध्यमवर्गीय सस्कारो को नव-आधुनिकों द्वारा तहस-नहस किये जाने की पीड़ा को व्यक्त करती है जिसमें निकटतम सम्बन्धों की सम्पूर्ण पहचान अपना रंग बदल रही है।

किसी एक वर्ष में प्रकाशित कुछ कहानियों के माध्यम से उस वर्ष की कथाचेतना को रेखांकित करना या निष्कर्ष निकालना बहुत सही नहीं होगा, क्योंकि वर्ष में प्रकाशित सभी कहानियों को पढ़ सकना लगभग असभव है। परन्तु इस वर्ष में प्रकाशित जितनी कहानियां मैं पढ़ सका उससे कुछ निष्कर्ष अवश्य निकाले जा सकते हैं। निष्कर्षों में से एक निष्कर्ष यह भी है कि इस वर्ष वयोवृद्ध कथाकारों की भी कुछ कहानियां पढ़ने को मिलीं। 'बाबो का गुच्छा (भगवतीचरण वर्मा, साप्ताहिक हिन्दुस्तान २६ अगस्त) होरी किष्पन (गोविन्दवल्लभ पन्त—साप्ताहिक हिन्दुस्तान—१० सितम्बर) दार्क जन्म की भूमिका (जैनेन्द्र कुमार—सारिका १६ सितम्बर) सत्ती (हंसराज राज रहबर (नवभारत टाइम्स—११ नवम्बर)—परन्तु इन सभी कहानियों को पढ़ने पर लगा कि हम कम से कम पैंतीस वर्ष पूर्व के कथा-ससार में सांस ले रहे हैं।

१९७९ की श्रेष्ठ हिंदी कहानियां

अशोक शुक्ल

○

पांचवीं डिबिया

शैतान ने पूछा, "बोल भाई, कौन है तू ? काजी कि कोतवाल ?"

उसने जवाब दिया, "सरकार, न काजी न कोतवाल ! नाम मेरा कलुआ, जाति मेरी प्रेत। आपका बंदा हूं, मरघट में रहता हूं।"

बंदों को देखकर भला कौन खुदा नहीं मुस्कराता ! शैतान मुस्कराया, जैसे ट्यूबलाइट जली हो। मगर मन से बोला, "ऐ मेरे बंदे कलुआ प्रेत ! ऐसी क्या सासत आन पड़ी तुझ पर कि सत्रह बरस से तू ऐन बीच मसान में एक टांग पर खड़ा बस मेरा ही नाम जपे चला जा रहा है ? तेरे रोम-रोम से, तेरी सांस-सांस से, बस 'जै शैतान जै शैतान' ही निकल रहा है। आखिर और भी बहुत सारे देवता हैं दुनिया में। तू और सबको छोड़कर मेरे ही ऊपर पक्का ईमान क्योंकर लाया है भला ? आखिर चाहता क्या है ?"

कलुआ ने शैतान के दोनों पांव मजबूती से पकड़ लिये। पैरों पर माथा रगड़, हाथों से आंसू पोंछ, हा-हा खाकर बोला,

"दुहाई है सरकार की, जो सब कुछ भीतर-बाहर तक जानते-समझते भी अपने बंदे से ही बात कहलवाना चाहते हैं। वर्ना ऐ पाक-शैतान, आप क्या खुद नहीं जानते कि आजकल के देवताओं की भली चलाई !…टके-टके के लोग देवता बने बैठे हैं। लेते हैं मन भर, देते हैं कन भर। जमानत करवाने तक में दो-चार हजार की पूजा खा जाते हैं। बिना पूजा लिये पत्ता तक नहीं हिलाते। फिर, काम भी पक्का नहीं करते। पूजा खाकर तबादला तो करा दिया, पर कैंसिल नहीं होगा, इसकी कोई गारंटी नहीं। ऐसे देवताओं को जो पूजे सो अंधा !…और आप पर पक्का यकीन इसलिए लाया हूं सरकार, कि मैंने तो आखिरी जीत आपकी ही होती देखी है। जिसने शुद्ध मन से आपको अपनाया, और जो ईमानदारी से आपके रास्ते पर चला, उसने तरक्की की सारी मंजिलें लांघीं। इसीलिए सत्रह साल से एक टांग पर खड़ा हूं मैं बीच मसान में, कि आपका जाप कर आप को प्रसन्न कर एक वरदान लूंगा। मुझे मेरी मर्जी का एक वरदान दें ! क्योंकि मैं आपका सच्चा बंदा हूं।"

अब लोहा-इस्पात हो तो कटजाये, जादू-टोना हो तो कट जाये, चुनाव-समझौता हो तो कट जाये, नियम-कानून हो तो कट जाये, लेकिन सत्रह साल से एक टांग पर तपस्या कर रहे सच्चे बंदे की बात भला कैसे कटे ? भक्ति की डोरी में बंदगी की गांठ। बाचा का बांधा शैतान बोला, "अच्छा, तो आप मांगलें !"

कलुआ ने मांगा, "ऐ पाक-शैतान ! मुझे ऐसी तरकीब दे, कि मैं ताकयामत दुनिया भर में हुकूमत कर सकूं !"

शैतान गंभीर हुआ। बोला, "तूने बड़ी चीज मांग ली रे कलुआ प्रेत। एक वरदान में हमेशा-हमेशा की हुकूमत कवर नहीं की जा सकती। इसके लिए मैं तुझे पांच डिबियां देता हूं। इन्हें ले जा। ये तुझे कयामत तक की हुकूमत देंगी।"

तोप तो हो सौ टन की, लेकिन दागना न जानने वाले के

लिए किस काम की ? चोट तो हो सौ मन की, लेकिन निशाने पर न मार पाने वाले के लिए किस काम की ? डिबिया तो हो हुकूमत की, लेकिन खोलना न जानने वाले के लिए किस काम की ? इसलिए कलुआ ने मुह बिगाड़कर पूछा, "इन डिबियों का भला मैं करूंगा क्या सरकार ?"

शैतान ने समझाया, "इनमें सारी दुनिया की हुकूमत बंद है रे कलुआ ! सबसे पहले तू पहली डिबिया को लेना और किसी बेकसूर मारे गये मुर्दे के मुह में रखकर तेरह दिन तेरह रात मेरा नाम जपना। चौदहवें दिन डिबिया को खोल लेना, उसके जादू से सारी दुनिया की हुकूमत तेरे कदमों में आ गिरेगी और ताकयामत तेरी हुकूमत को डिगाने वाला कोई नहीं होगा। लेकिन पूजा के विधि-विधान में कोई कसर रह गई, तो सौ साल बाद डिबिया बेअसर हो जायेगी।"

□

अब पूजा में तो हजार विधान, लाख लफड़े ! पूजा में घी-गुड़ चढ़े, चदन-धूप चढ़े, यौवन-रूप चढ़े, धन दौलत-रत्न चढ़े, ठंडा चढ़े, गर्म चढ़े। कलुआ घबराया, कि पूजा के विधान में कसर रह गई, तो सौ साल बाद गई हुकूमत हाथ से। उसने शैतान से उपाय पूछा।

शैतान ने बताया, "पहली डिबिया बेअसर हो जाये, तो तेरह दिन तेरह रात विधि-विधान से पूजा करके दूसरी डिबिया खोल लेना। उसके जादू से ताक़यामत तेरी हुकूमत बनी रहेगी। लेकिन पूजा में कोई कसर रह गई, तो सौ साल बाद दूसरी डिबिया भी बेअसर हो जायेगी। अब विधि-विधान से पूजा करके चौहदवें दिन तीसरी डिबिया खोल लेना। अगर सौ साल बाद तीसरी डिबिया भी बेअसर हो जाये, तो विधि-विधान से पूजा कर चौथी डिबिया खोल लेना। लेकिन देख, चौथी डिबिया को कभी बेअसर मत होने देना तू।"

"और अगर पूजा में कसर रह जाने की वजह से सौ साल बाद चौथी डिबिया भी बेअसर हो जाये, तो ?"

"तो फिर मजबूरी है। चौथी डिबिया बेअसर हुई, तो पांचवी डिबिया अपने आप खुल जायेगी। उसे न तू रोक सकेगा न मैं। इसलिए अगर खैरियत चाहता है, तो सुन रे कलुआ प्रेत, पांचवी डिबिया को खुलने का मौका मत देना। खुल गई, तो तेरी क्या, किसी की कोई हुकूमत बच नहीं पायेगी। इसलिए इसको बचाना।"

ऐसा कहकर शैतान तो हो गया गायब, और हुकूमत की पांचों डिबिया सभाले कलुआ लौटा अपने मसान।

कलुआ के दस भाई, सौ भतीजे, हजार दोस्त, लाख यार। उसने सबको दौड़ा दिया कि कोई बेकसूर मुर्दा खोज लाओ। खोजने पर भला क्या नहीं मिलता? आखिर, भीड़ पर हुई फायरिंग में बेकसूर मारा गया एक मुर्दा मिल गया। कलुआ ने मुर्दे के मुंह में रखी पहली डिबिया और लगा शैतान का नाम जपने। न दिन का ज्ञान, न रात का बोध। जब जपते-जपते बिल्कुल थक गया, तब उसने हिसाब मिलाया। तब तक बारह दिन बारह रात बीत चुके थे। उसने सोचा कि भला बारह-तेरह में ऐसा कौन-सा बड़ा फर्क है, डिबिया तो इतने दिनों में सिद्ध हो ही गई होगी, लाओ खोल लें। तो उसने लिया शैतान का नाम, डिबिया खोल ली।

डिबिया के अन्दर थे—मुकुट, सिंहासन, राजसी-तलवार और मोटे-मोटे धर्मग्रंथ।

कलुआ ने तलवार कमर में बांधी, मुकुट माथे पर लगाया और सिंहासन पर बैठ गया, फिर उसने एलान किया⋯"ऐ दुनिया के लोगो, मैं तुम्हारा राजा हूं। मुझे भगवान ने तुम्हारे ऊपर राज्य करने के लिए भेजा है। तुम लोग अपने सिर झुकाओ और मेरी हुकूमत मानो।"

कलुआ की बात आधे लोगों ने तो बिना सुने ही मान ली, लेकिन बाकी आधे लोगो ने नही मानी। वे बोले, "इसका क्या सबूत कि तुझे भगवान ने ही राजा बनाया है? हो सकता है, तू अपने आप राजा बन बैठा हो! हमें सबूत दे।"

कलुआ भी नंबरी घाघ। हर चाल की काट जानता था। उसने मोटे-मोटे धर्मग्रंथों से फाडकर कुछ पन्ने निकाले और लोगों में बांट दिये। पन्नों में लिखा था, "राजा भगवान का प्रतिनिधि है। राजा की आज्ञा भगवान की आज्ञा है। राजा की इच्छा भगवान की इच्छा है।

धर्म की किताबें, सो भी पुरानी। उनके खिलाफ भला कौन जाये? जो जाये, उसका लोक बिगाडे राजा और परलोक बिगाडे देवता। जो जाये, उसे राजा दे सजा और देवता दें शाप जो जाये, उसे राजा डाले जेल में और देवता डालें नर्क में।

वहम हो तो तर्क करो, लेकिन अंधविश्वास में कैसी तो बहस और कैसा तो तर्क! लिहाजा बाकी बचे आधे लोगों ने भी मान लिया कि जब धार्मिक किताबें गवाही दे रही है, तो फिर कैसा शक और कैसा सदेह! राजा है कलुआ और प्रजा है शेष। तब दुनिया भर के सारे आदमियों ने हाथ जोड कर राजा की पूजा की, "हे प्रतापी राजा, तू महान है। हम तेरी प्रजा हैं। हम दोषी है, तू निर्दोष है। तेरी जय।"

और पहली डिबिया के जादुई प्रताप से कलुआ की हुकूमत चल गई। चलती रही, चलती रही। इसी तरह कई साल बीत गये।

लेकिन डिबिया की पूजा के विधि-विधान में एक दिन की कसर तो रह ही गई थी। कुछ दिनों के बाद उसका असर कम होने लगा। असर कम होने लगा, तो कलुआ के मन में लोभ जागा। उसने दुनिया भर के हीरे-जवाहरात अपने खजाने में भर लिए और दुनिया भर की खूबसूरत औरतें अपने रनिवास में भर

ली और दुनिया भर के ज्ञानी-गुणी आदमी अपने दरबार में भर लिये। अब तो भाई, दसों दिशाओं में ऊपर से नीचे तक जहां कही, जो कुछ था, सब कलुआ का था।

लेकिन तब तक सौ साल बीत गये। डिबिया हो गई बेअसर जादू हो गया खत्म। तब तो फिर जुलुम हो गया। वही प्रजा जो कल तक भेड़ बनी हुंक रही थी, आज भेडिया बन गुर्राने लगी। लोगो ने राजा का महल घेर लिया, धर्मग्रंथो के पन्ने फाड़ डाले और चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे, "राजा झूठा है, वह भगवान नही है। उसने अपने फायदे के लिए अपने नौकरों से धर्मग्रंथ लिखवाये है। उसने हमारा खून चूसकर अपने खजाने में भर लिया है। हम उसे सूली पर चढायेंगे।"

कलुआ के होश गुम, हवास गुम। जान पर संकट आया देख भागा कलुआ और सीधा मसान में आकर ही रुका।

□

कलुआ के दस पूत, सौ पोते, हजार मित्र, लाख हितैषी। उसने सबको फिर दौडाया। खोजते-खोजते आखिर मिल गई एक बेकसूर औरत की लाश, जिसे गुंडो ने बलात्कार करने के बाद मारकर फेंक दिया था। कलुआ ने उसके मुह में रखी दूसरी डिबिया और लगा शैतान का नाम जपने। न दिन की चिंता, न रात की फिकर। जब जाप करते-करते थक गया, तब उसने हिसाब मिलाया। बारह दिन बारह रात बीत चुके थे। उसने सोचा, जैसा बारह वैसा तेरह, डिबिया तो अब सिद्ध हो ही गयी होगी, लाओ खोल लें। और उसने दूसरी डिबिया खोल ली।

डिबिया के अदर थे हथकडी, हटर, फौजी पोशाक और एक राइफल मय सगीन के।

कलुआ ने झटपट फौजी पोशाक पहन ली और राजमुकुट को हथकड़ी लगा हटर से पीटता हुआ राजमहल के सामने खड़ी

भीड़ के रू-ब-रू आकर बोला, "ऐ मेरे देश के लोगों, मैंने राजा को खत्म कर दिया। राजा झूठा था, निरकुश था। उसने प्रजा के साथ कभी न्याय नहीं किया। इसलिए मैंने उस स्वार्थी राजा को मार डाला है, उसके मुकुट को गिरफ्तार कर लिया है, उसके सिंहासन में आग लगा दी है और उसकी तलवार को म्यूजियम में रखवा दिया है। अब इस दुनिया में कोई राजा नहीं होगा। और ऐ मेरे महान देश के महान निवासियों ! मैंने धर्मग्रंथों को भी ताले में बंद करवा दिया है, क्योंकि ये धर्मग्रंथ स्वार्थी राजा का हित साधने के लिए झूठ बोलते थे। आज से—कागज में लिखा हुआ बिल्कुल बेमानी हुआ। आज से जो मैं कहूंगा, वही धर्म है, जो मैं करूंगा, वही कानून है। मैं महान हूं। तुम लोग मेरी जय-जयकार करो।"

□

तब, दुनिया के आधे लोगों ने तो कलुआ-डिक्टेटर की बात बिना सुने ही मान ली, लेकिन बाकी आधे लोग नहीं माने। उन्होंने कहा, "तुम राजा की फौज में रह चुके हो, तुम उसके दोस्त रह चुके हो। इस बात का क्या सबूत कि तुमको राजा ने ही नहीं भेजा ?"

कलुआ था चालू, हर चाल की काट जानता था। उसने डिबिया से राइफल उठायी और धड़ाधड़-धड़ाधड़ सत्रह फायर झोंक दिये। सत्रह दीये बुझे, सत्रह सिंदूर पुछे। सत्रह कलेजे फटे, सत्रह लाशें लोट गयीं। धरती में बहा खून और आकाश में गूंजी कलुआ की दहाड़, "देख लो रे, यही है मेरा और मेरी ईमानदारी का सबूत। अब भी अगर किसी को कोई शक हो, तो और बोलो ?"

जिंदगी के आंगन में कष्टों से चुहल कर लेना एक बात है, लेकिन मौत के मकान में अपने ही हाथों से फांसी पर झूल जाना बिल्कुल दूसरी बात है। इसलिए भीड़ में साथ-साथ बंध

गई। किसने अमृत खाया था और किसका चोला माटी का नही था, जो कलुआ पर शक करता ! लोगों ने अपनी नाकें कटवाकर फेंक दी और दुम दबाये अपने-अपने दड़बो में जा छिपे।

और दूसरी डिबिया के जादुई प्रताप से कलुआ की हुकूमत फिर चल गई। चलती रही, चलती रही। कई साल बीत गये। लेकिन दूसरी डिबिया की पूजा में भी तो एक दिन की कसर रह गई थी। इसलिए उसका जादू कम होने लगा।

जब जादू कम होने लगा, तब राइफल से गोलिया ज्यादा चलने लगी। फिर और सब काम रुक गये, सिर्फ गोलिया ही चलने लगी। आखिर में गोलिया चलाने वालो पर भी गोलिया चलने लगी।

तब तक सौ साल गये बीत। डिबिया का असर खत्म, जादू का जोर खत्म, तो कलुआ के राजमहल मे रहने वाले उसके खासमखास सिपाहियों ने ही और गोलिया चलाने से इकार कर दिया। उन्होने विद्रोह कर दिया।

प्राणों पर सकट आया देख कलुआ बिजली की रेल-सा सड़ाक से भागा और मसान पर पहुचकर ही सास ली।

कलुआके दस सगे, सौ सबधी, हजार गाव के, लाख पडोसी उसने सबको फिर दौडाया। खोजते-खोजते आखिर मिल ही गई एक बेकसूर सिपाही की लाश, जिसे तस्करो ने मारकर फेंक दिया था। कलुआ ने उसके मुह में तीसरी डिबिया रखी और लगा शैतान का नाम जपने। न दिन का पता, न रात का होश। जब जाप करते-करते बहुत दिन हो गये और कलुआ थक गया, तब उसने हिसाब मिलाया। बारह दिन बारह रात हो गये थे। उसने सोचा, जैसा बारह-बाट वैसा तीन-तेरह, इनमें भला फर्क ही क्या है ! डिबिया तो सिद्ध हो ही गई होगी, लाओ खोल लें। तो उसने झुकाया शैतान को शीश और तीसरी डिबिया खोल ली।

तीसरी डिबिया में एक तरफ तो धरी थी बहुत सारी पूंजी और दूसरी तरफ धरी थी एक किताब। किताब का नाम था, 'अच्छी हुकूमत के सौ अचूक नुस्खे।'

कलुआ ने पूंजी से बहुत सारे बैंक खोल दिये। फिर उसने लोगों को बुलाकर कहा कि·····"ऐ दुनिया वालो, मैं तुम्हे एक खुशखबरी सुना रहा हूं। अब तुम्हीं लोग अपनी दुनिया के मालिक हो, अब दुनिया भर में तुम्हीं लोगों का राज्य है। अब तुम लोग खूब मजे से तरक्की करो। मैंने तुम्हारे लिए बैंक खोल दिये हैं। मेरे बैंक तरक्की करने वालों को मामूली ब्याज पर कर्ज देंगे। इसके अलावा मैं तुम लोगों के लिए एक किताब भी लाया हूं। लो, यह किताब लो।"

□

ऐसा कहकर कलुआ ने डिबिया में मिली किताब लोगों में बांट दी। किताब में अच्छी हुकूमत के सौ अचूक नुस्खे थे। लोग किताबें लेकर चले गये और अलग-अलग नुस्खे आजमाने लगे। वे बहुत खुश थे, क्योंकि वे अपने राजा आप थे।

और इधर तो लोग किताब के अचूक नुस्खों के विभिन्न पोज आजमाते रहे, और उधर कलुआ ने बैंकों के जरिये अपनी हुकूमत फैलानी शुरू की। धीरे-धीरे सारी दुनिया में उसी की हुकूमत चलने लगी। इसी तरह न जाने कितने साल बीत गये।

लेकिन तीसरी डिबिया की पूजा में भी तो एक दिन की कसर रह गई थी। इसीलिए डिबिया का जादू धीरे-धीरे कम पड़ने लगा। जादू कम पड़ने लगा, तो हुकूमत हिलने लगी। हुकूमत हिलने लगी, तो कलुआ ने दुनिया को खरीदना शुरू कर दिया।

उसके बैंक नफा कमा-कमाकर खूब मोटे हो गये थे और बहुत दूर-दूर तक फैल गये थे। दुनिया में जितना पैसा था, सारा उसके बैंकों में जमा था। वह बिना ताज का बादशाह था।

उसकेपास बहुत, वह तब या करीब-करीब सारा पैसा था।

पहले उसने एक आदमी का सब कुछ खरीदकर एक आदमी को बेघरबार कर दिया। फिर उसने चार आदमियों का सबकुछ खरीदकर चार आदमियों को बेघरबार कर दिया। फिर उसने काफी आदमियों का सबकुछ खरीदकर काफी आदमियों को बेघरबार कर दिया। आखिर में उसने सभी आदमियों का सबकुछ खरीदकर सभी आदमियों को बेघरबार कर दिया।

लेकिन तब तक सौ साल खत्म हो गये। जादू का जोर बीता, डिबिया का असर बीता। जादू खत्म होते ही सारे आदमियों को होश आ गया। उन्होंने कलुआ के बैंकों को घेर लिया और चीखकर बोले, "ऐ कलुआ, अच्छी हुकूमत के ये तेरे सौ अचूक नुस्खे बिल्कुल धोखा है। और यह भी झूठ है, कि हम खुद अपने मालिक है। दरअसल हाकिम तू है। बता, अगर हम अपने मालिक खुद हैं, तो हमारा सब कुछ बिक क्यों गया। इसलिए तूने धोखा देकर हमारा जो-जो कुछ खरीदा है, उस सबको हम वापस लेंगे। हम तेरे बैंकों पर कब्जा कर रहे है।"

अब लोग तो हुल्लड करते हुए बैंकों पर कब्जा करने भागे और कलुआ भागा हवा की चाल अपनी जान बचाने। उसने मसान पर पहुंचकर ही सांस ली।

□

कलुआ के दस मामा, नौ फूफा, हजार चाचा, लाख ताऊ। उसने सबको फिर दौड़ाया। आखिर एक बेकसूर बच्चे की लाश मिल ही गई, जिसे एक ट्रक कुचलकर भाग गया था। कलुआ ने उसके मुह में चौथी डिबिया रखी और शैतान के नाम का जाप शुरू कर दिया। उसने न घड़ी देखी, न घंटा सुना, बस जाप ही करता चला गया। थक गया, तोहिसाब मिलाया। बारह दिन बारह रात बीत चुके थे। उसने सोचा, बारह-तेरह में कुल बाल बराबर का ही तो फर्क है। डिबिया तो सिद्ध हो ही

गई होगी, लाओ खोल लें। तो उसने लिया शैतान का नाम और चौथी डिबिया खोल ली।

डिबिया में एक तरफ तो धरी थीं खादी की पोशाकें और दूसरी तरफ धरे थे लोहे के औजार।

कलुआ ने अपने लोगों में से कुछ को खादी की पोशाकें पहना दीं और कुछ को लोहे के औजार पकड़ा दिये। फिर उसने इन आदमियों पर 'नेता' के बिल्ले चिपकाकर इन्हें शहरों में, गावों में, कल-कारखानों में, सभा-कमेटियों में बिखरा दिया। इसके बाद वह एक ऊंचे से मंच पर खड़ा हो गया और हवा से अपना मुट्ठी बंधा हाथ लहराता हुआ बोला, "साथियो, पिछली हुकूमत में हम बहुत छले गये हैं। इसलिए आओ, आज हम सब मिलकर तय करें कि हमारी दुनिया में जो कुछ भी है और जो कुछ भी होगा, वह सिर्फ राज्य का होगा, सिर्फ समाज का होगा, अब कोई चीज किसी एक आदमी की नहीं होगी, इसलिए चीजें सबकी होंगी।"

आधे लोग तो बिना सुने ही कलुआ की बात मान गये, लेकिन बाकी आधे लोगों ने सफाई मांगी। उन्होंने पूछा, "पहली बात तो यह बताओ कि तुम हो कौन! और दूसरी बात यह बताओ क्या सबूत कि इस बार बेईमानी नहीं होगी?"

कलुआ था महागुरू, वह हर चाल की काट जानता था। उसने बताया कि "भाइयो, मैं भी तुम्हारी तरह एक मामूली आदमी हूं, इसलिए मैं भी चाहता हूं कि अब इस बार बेईमानी न हो। तभी तो कहता हूं कि इंसान को अपना कुछ रखने का हक ही मत दो। जब वह कुछ रख ही नहीं सकता, तब भ्रष्टाचार कैसे करेगा! जब उसका कुछ हो ही नहीं सकेगा, तब वह क्यों बेईमानी करेगा!"

फिर क्या था! डिबिया के जादू के जोर से कलुआ की बात लोगों की समझ में आ गई, लोग मान गये। उन्होंने अपना

सब कुछ राज्य को दे डाला। अपने तन के अलावा कुछ भी अपना न रखा। न बीवी अपनी रखी न बच्चे, न खेत अपने रखे, न कारखाने, न घर अपने रखे न गाव।

लेकिन तब एक समस्या सामने आई। सवाल उठा, कि यह तो मान लिया कि सब कुछ राज्य का है, लेकिन राज्य अपने सब कुछ का इतजाम कैसे करे ? इसलिए मामूली आदमी कलुआ ने अपने जैसे औरो से सलाह करके तय कर दिया कि राज्य के सब कुछ की देखभाल के लिए सब लोग मिलकर एक सरकार चुनें।

लोगो ने सरकार चुनी, तो कलुआ ने चौथी डिबिया के जादू के जोर से नेता बने अपने ही आदमियो को चुनवा दिया और उनके जरिये दुनिया भर पर हुकूमत करने लगा। इसी तरह कई साल बीत गये।

लेकिन चौथी डिबिया की पूजा मे भी तो एक दिन की कसर रह गई थी। इसलिए कुछ दिनो के बाद उसका असर कम होने लगा। असर कम होने लगा, तो कलुआ के नेता ज्यादा शौक-मौज करने लगे। फिर वे और सब कुछ छोडकर सिर्फ शौक-मौज करने लगे। आखिर में, वे और ज्यादा शौक-मौज करने के लिए आपस मे लडने लगे। वे लोग कई टुकडो मे बट गये। एक से दो हुए, दो से दस हुए, दस से लाख हुए, लाख से असख्य हुए। एक ने दूसरे से कहा, "तू दुश्मन का भेदिया है !" तीसरे ने चौथे से कहा, "तू भ्रष्ट है !" दसवें ने बारहवें से कहा, "तू ढुलमुल है, सकीर्ण है, वेविश्वासी है !" हजारवें ने लाखवें से कहा, "तू आयाराम-गयाराम, झूठा-मक्कार है !" अगले ने आखिरी से कहा, "मैं चाहे खुद डूब जाऊ, लेकिन तुझे जरूर डुबाऊगा।"

तब तक सौ साल बीत गये। चौथी डिबिया का जोर खत्म, असर खत्म। असर के खत्म होते ही लोग अपने-अपने घरो से

लाठियां लेकर निकल आये। उन्होंने खादीवाले, वादीवाले, टोपीवाले, चोटीवाले, दाढीवाले, मूछवाले, औजारवाले, हथियार-वाले, गद्दारीवाले, मक्कारीवाले सारे नेताओं को घेर लिया और धमकाने लगे, "तुम सब साले भ्रष्ट हो। हम तुम्हें धो-धो कर शुद्ध करेंगे, उसके बाद बदलेंगे।".

ऐसा सुनकर नेता लोग तो चले बगलें झांकने और कलुआ ने यह देखकर कि अपनी हुकूमत तो अब चली ही गई, सीधा मसान की दौड़ लगाई।

◻

तबसे कलुआ भाग रहा है। वह घबराहट में मसान का रास्ता भूल गया है। लेकिन जैसे ही वह मसान में पहुंचेगा, वैसे ही पाचवी डिबिया खुल जायेगी, बिना पूजा-पाठ के, बिना विधि-विधान के, बिना किसी के खोले, अपने आप खुल जायेगी। न चाही जायेगी। तब भी खुल जायेगी। क्योंकि शैतान ने कहा था, कि पाचवीं डिबिया का खुलना कोई रोक नहीं सकता।

और जब पाचवी डिबिया खुल जायेगी, तब अपने आप सारी दुनिया से कलुआ प्रेत की हुकूमत हट जायेगी। तब किसी तरह की कोई हुकूमत रह ही नही जायेगी। रह जायेगी सिर्फ—व्यवस्था!

कुसुम अंसल

○

मैचमेकर

समीर अभी तक लौटा नहीं था, चेतना प्रतीक्षा करती करीब-करीब थक चुकी थी। अपने छोटे-से लान के किनारे उगे पौधों और गमलों की सफाई का जायजा लेती वह कितने ही चक्कर काट चुकी थी! उसकी अंगुलियों से चुने जंगली पौधे और घास के लम्बे हरे पत्ते, गमले के पास ढेर हो रहे थे। चेतना उन्हें बिना इजाजत उगने का दण्ड दे रही थी या अपने भीतर के अपने आप को दण्डित कर रही थी! पता नहीं आते-जाते न जाने कितनी बार घड़ी देख गई थी वह—पांच बज चले थे—हिसाब से देवेन्द्रजी की ट्रेन को दो बजे पहुंचना था। स्टेशन से यहां तक आते ज्यादा-से-ज्यादा बीस-पच्चीस मिनट और अब···ट्रेन अधिकतर देर से ही आती है। इस बार देवेन्द्रजी बहुत दिनों बाद आ रहे हैं। यों तो दिल्ली में साल में तीन-चार बार उनके चक्कर लग जाते हैं, पर जब भी आते है, यहीं ठहरते है। देखा जाये तो देवेन्द्रजी उनके अपने कुछ भी न होते हुए भी न जैसे बहुत कुछ हैं। समीर से उम्र में बड़े है। दस वर्ष का तो अन्तर होगा ही, फिर भी आपस में बहुत पटती है दोनों की। चेतना को मालूम

है, वह विधुर हैं, एक बेटी के अलावा इस संसार में उनका कोई नहीं है।

देवेन्द्रजी का समीर के परिवार से स्नेह है—यह बात हर माध्यम से चेतना तक आती है और अपनी हर उलझन के बावजूद चेतना इस सत्य को स्वीकार कर लेती है। जहां एक ओर समीर और देवेन्द्रजी के बीच वह अपने आप को अजनबी-सी पाती है, वहां दूसरी ओर अक्सर देवेन्द्रजी अपनी बेटी निमिषा को उसके संरक्षण में निश्चिन्तता से सौंप कर चले जाते हैं। देवेन्द्रजी और चेतना में जब भी कभी वार्तालाप जुड़ता है, तब वह चेतना का साहित्य के प्रति प्रेम, उसके बनाए गये चित्रों की बातचीत करते-करते एक समान मानसिक धरातल तक तैर आते हैं। उस समय अपनी सारी कुण्ठाएं भुला कर चेतना उनसे एक समझौता कर लेती है।

नमिता को बहुत सालों से देख रही है। निमना के होस्टल से लौट कर छुट्टियों में वह कुछ-न-कुछ दिन चेतना के पास अवश्य रहती है। चेतना के नमिता से छोटे अपने दो बेटे हैं—वह भी नमिता को बहन-सा मानते हैं। चेतना को कभी नमिता बड़ी बहन, कभी मां का-सा दर्जा देकर अपने जीवन में एक विशेष स्थान पर ले आई है। चेतना उसकी छोटी-बड़ी सभी उलझनों की साझेदार रह चुकी है। उन क्षणों की निकटता में अपनापन उड़ेलती है। कभी प्यार से, कभी नाराजी से उसे पिकासो, वानगोग की चित्रकला से लेकर प्रेमचन्द और शरत के साहित्य तक पुस्तकें पढ़ा जाती है। और कभी वह नमिता को पूरी ढील दे देती है, जो चाहे करे—उस पल उसे याद आता है कि उसका अपना एम. ए. का प्रमाण-पत्र किसी अलमारी में कपड़ों की तह में दबा पड़ा है और उसकी साहित्यिक कविताओं की गुनगुनाहट पर के गुसलखाने के दरवाजों में बन्द हो कर रह गई है। इस बार नमिता बम्बई के कालेज में अपनी बी. एस-सी. की डिग्री

लेकर लौट रही है। इन तीन सालों की पढाई के बीच वह दिल्ली नहीं आई है। चेतना की प्रतीक्षा की बेचैनी शायद इसी बात की हो सकती है।

कार का हार्न परिचित था, चेतना तेज कदमो से आकर लान पर पडी कुर्सी पर बैठ गई—पत्रिका के पृष्ठ उलटने लगी, कही ऐसा न लगे कि उसने बहुत प्रतीक्षा की है। प्रतीक्षा—हा, इस प्रतीक्षा के साथ भी तो कितना कुछ जुडा है—उसके जीवन का कितना कुछ—समीर ने उसके और उसने समीर के बदल जाने की प्रतीक्षा की है, पर···

'हैलो, आण्टी—!'

'हैलो, चेतना!'

आदतन हाथ जोडे चेतना उठ जाती है, शब्द नही निकलते। नमिता को अपनी बाहो मे घेर कर प्यार करने का मन है, पर नमिता कुर्सी पर बैठ चुकी है—'हलो' कह कर वह भी देवेन्द्रजी को बैठ जाने का संकेत कर लेती है। वास्तविकता की नग्नता का कुरूप दम्भ और फैलने लगता है। इसे झुठलाती औपचारिकता निभा कर चेतना सामान आदि रखवाने चली जाती है।

□

चाय की मेज पर सब फिर इकट्ठा होते है। बातो और कहकहों से घर गूजने लगता है—नमिता, विवेक और विनीत के बीच बैठी है। वे उत्साहित से बातो मे लगे है। देवेन्द्रजी और समीर मे कोई राजनीतिक बहस छिडी है, पर चेतना को लगता है घर के एक कोने मे ढेर-सारा सन्नाटा भरा है। आया इस बीच बत्तिया जला जाती है। सब कुछ जगमगाने लगता है, पर चेतना को घर मे कही अधेरा-सा व्यापता लगता है। खाने-पीने के साथ वार्त्तालाप चलता रहा, जो इधर-उधर घूमता हुआ अन्त मे नमिता पर रुका और उसी बिन्दु पर ठहर-सा गया। देवेन्द्रजी उस बिन्दु पर ठहरे प्रश्न को उघाड़ने लगे—नमिता बड़ी हो गई

है। बी. ए. कर चुकी है। पत्नी विहीन, नितान्त अकेले देवेन्द्रजी नमिता की देख-भाल में अपने को असमर्थ पाकर उसे ससुराल भेजने की चिन्ता में है—यह बात वह पहले भी कह चुके हैं पर आज यह और भी अधिक वजनदार लग रही है और चेतना मन-ही-मन डरती है, यह काम उसके बूते का नहीं।

समीर और देवेन्द्रजी उसके अव्यावहारिक और दुनियादार न होने के पुराने अवांछित वार्त्तालाप को बीच में ले आते हैं, और चेतना उसी में उलझने लगती है कि बातों ही बातों में मिसेज सेन का नाम उभर कर आता है। कितने लोगों की शादी करवाई है ! क्या सूझ-बूझ है ! कितनी बढ़िया मैचमेकर है—सही तलवार, सही म्यान में डालती है।

मिसेज सेन की तारीफों के साथ-साथ देवेन्द्रजी की एक फटकार-सी नजर, चेतना तक आती है, 'चेतना, तुम इतना गुम-सुम क्यों रहती हो ? क्लब, सभा-सोसाइटी को पसन्द नहीं करती ? जिन्दगी को किस नजरिए से देखती हो···?'

प्यालों में चाय उड़ेलते उसके हाथ ठिठकते हैं। खाने की मेज पर वह जीवन के नजरिए यानी जीवन-दर्शन को इन काम-काजी मशीनी लोगों से कैसे बताए—क्या बहस करे—क्या समझाए कि 'जीवन' क्या इतनी हल्की चीज है कि चम्मच में उठा कर गटक ली जाए !

वह हंस दी थी।

नमिता कह रही थी, 'आण्टी लिव्स इन फैण्टेसी। पता नहीं क्यों आण्टी दिन-रात सपनों की दुनिया में खोई रहती हैं ?'

'नमिता, यू लर्न फ्रोम आण्टो ! तुम समझ लेना कि सपनों में चलना बीमारी है—इसलिए हमेशा प्रैक्टिकल रहना। सभा-सोसाइटी में घुल कर ऐसी छा जाना कि हर कोई तुम्हारे सुन्दर प्रतिभाशाली व्यक्तित्व से प्रभावित होकर, तुम्हारी चर्चा करता रहे !' समीर का स्वर नमिता को समझाने के साथ-साथ चेतना

के प्रति अपनी कुण्ठाओ को पूरी तरह उभार कर उसके सम्मुख रख जाता है।

बिजली के प्रकाश मे उसकी परछाई नमिता पर पड रही थी। चेतना को लगता है, वह परछाई उठ कर उसके अपने शरीर तक लौट रही है। वह सोचती रह जाती है—क्या चाहते है ये पति लोग ? पत्नि न रह कर क्या मैं सिनेमा की हीरोइन बन जाऊ, जो हर काम कर सके—तलवार, घोडा चलाने से लेकर शास्त्रीय नृत्य तक ! पढ़ाई की बात उठे तो मैं ज्ञान की पिटारी बन जाऊं ! जैसे जीवन न हुआ, मात्र एक रगमच हो गया कि हर पल एक सर्वगुणसम्पन्न नायिका का अभिनय करते रहो !

समीर ने सिगरेट सुलगा ली थी। किसी बात पर ठठा कर देवेन्द्रजी हसे।

नमिता अब फोन से जा लगी थी। खाने की मेज से अब तक सब उठ चुके थे। नमिता ने अपनी किसी सहेली से 'डिस्को जाने का कार्यक्रम तय कर लिया था।

समीर, देवेन्द्रजी की जोडी उसके पास आ खडी हुई। समीर ने कहा, 'कृष्णमूर्ति के यहा आज डिनर है, तुम तो चलोगी नही ! हम दोनो ही हो आते है। वहा मिसेज सेन भी मिल जाएगी तो नमिता की बातें कर लेंगे।'

चेतना ने प्रत्युत्तर मे मात्र सिर हिला दिया था। यो उनके उत्तर की अपेक्षा ही किसे थी !

कृष्ण मूर्ति की पार्टी के नाम पर कपकपी हो आती है उसे। उन पार्टियो मे उसने जाकर कितने नए-नए विचित्र अनुभव अर्जित किये थे ! उसे याद है, एक बार उस पार्टी मे प्राय सभी पुरुष परिचित-अपरिचित सभी महिलाओं के माथे का, आखो के आस-पास का चुम्बन ले रहे थे। चेतना उसे सहज, साधारण, एक प्रकार की निकटता के सम्बन्ध की अभिव्यक्ति मात्र मान रही थी, पर तभी अधेड़-से, बहुत फैशनपरस्त कृष्ण मूर्ति ने

उसके माथे पर भी एक अप्रत्याशित चुम्बन जड़ दिया है तो वह घबरा-सी उठी थी। लहसुन और शराब मिली-जुली दुर्गन्ध का भभका नथुनों में समा गया था। चुम्बन ही नहीं, उसकी अर्थपूर्ण दृष्टि उसे अव्यवस्थित कर गई थी। बात-की-बात में वह चेतना को बाहों का सहारा-सा देने लगा था। और भी महिलाएं थीं आस-पास। पर यहां केवल चेतना ही अपनी सांस में घुली दुर्गन्ध से मुक्ति पाने के प्रयास में रुआंसी होने लगी थी। समीर ऊपर के कमरे में ब्रिज खेल रहा था। अन्धेरे बगीचे और धीमी-धीमी रोशनी वाले कोनों में कुछ नए-नए जोड़े अदृश्य होने लगे हैं तो किसी तरह उस बुड्ढे कृष्ण मूर्ति से पीछा छुड़ा कर वह बहुत देर तक बाथरूम में घुसी रही।

समीर से जब कहा तो कहने लगा, 'कृष्ण मूर्ति लहसुन की गोलियां खाता है···!'

देवेन्द्रजी और समीर कपड़े बदल कर कार में जा बैठे हैं··· नमिता भी अपने कमरे से आती है। बड़ी खूबसूरत मिडी घुटनों तक आते बूट पहने, खूब गहरे रंगों का मेकअप किए किसी पत्रिका में छपे मॉडल-सी लगने लगती है।

'आण्टी, मैं टिप्पी के साथ जा रही हूं, शायद देर से आऊं! आप दरवाजे की चाबी चौकीदार को दे देना, मैं चुपचाप आकर सो जाऊंगी। पापा को बताया नहीं है, पूछें तो कह दीजिएगा कि 'तबेला' गई हूं, टिप्पी हैज द की!'

नमिता धड़धड़ाती बाहर निकल जाती है। चेतना के उत्तर की अपेक्षा भी उसे नहीं है। नमिता को अनुशासन में बांधने का चेतना का हक भी क्या है! दरवाजे की चाबियां भीतर से लाकर चेतना चौकीदार को दे देती है।

चाबियां इतने भिन्न-भिन्न सार्थक अर्थों में क्यों प्रयोग हो रही हैं? 'टिप्पी हैज द की!' टिप्पी के पास 'तबेला' नामक 'डिस्को' में प्रवेश पाने की चाबी है! एक चाबी चौकीदार के

पास है, जो रात को समीर, देवेन्द्रजी और नमिता को भीतर आने में सहायक होगी और एक चाबी, किट्टी पार्टी की विशेष महिलाएं प्रयोग में लाती है। चेतना को बहुत दिनों तक पता भी न चला कि कुछ महिलाएं अपने चेहरो पर विशेष मुस्कानें लाकर अपनी-अपनी कारों की चाबिया बदल कर क्यों एक-दूसरे की कार मे चली जाती है ? साडी-दुपट्टा बदल कर सहेलिया बहन' बनती है, यह तो सुना था, पर कार बदल कर क्या बनती हैं ? यह राज जब चेतना पर खुला तो वह चौंक गई थी ! उन्ही लोगो के बीच समीर रात को पार्टियो मे अकेला जाने लगा है चेतना को उनके बीच इतना अजनबीपन लगने लगा है कि वह चाह कर भी इस आधुनिक समाज मे सहज नही हो पाती। उसे लगता है, वह अपने सस्कारों की एक नन्ही-सी नलकी में कैद, धीरे-धीरे रेंग रही है कि किसी तरह बाहर आ सके ! जबकि ससार तेजी से भाग रहा है। यह 'जेट एज' है, तेज रफ्तार का समय ! और चेतना अपनी ही मान्यताओ के खम्भे से बधी खडी रह गई है !

☐

प्रात: आठ बज रहे थे। देवेन्द्रजी और समीर अपने-अपने काम पर जाने के लिए तैयार हो रहे थे। तभी पता चला एक महिला, जिसे 'चौधरानी' कहते हैं, शादी-ब्याह के रिश्ते तय करती है, यानी 'प्रोफेशनल' है, आने वाली है। वह ठीक नौ बजते ही आ पहुची और उन दोनो को कार मे बिठला कर ले गई। चेतना से किसी ने कुछ नही पूछा। क्यो नही पूछा ? चेतना स्वयं से ही सवाल-जवाब करती बैठी रह गई।

ग्यारह बजे वे लोग लौटे।

समीर ने जल्दी-जल्दी में बस यही बताया था कि कोई श्री मेघराज है, उनसे वे लोग मिलकर आये है। वे बहुत बड़े लोग है। बड़ा भव्य मकान है। शाम को चौधरानी फिर आ रही हैं।

चाय पिएंगे और बैठ कर बात-चीत भी हो जाएगी कि आगे क्या तय करना है।

समीर दफ्तर चला गया, देवेन्द्रजी भी साथ हो लिए। नमिता अभी तक सो रही थी। चेतना को अपनी चचेरी बहन मीना के घर 'काफी-पार्टी' के लिए जाना था। अतः ये सारी उलझनें छोड़ कर सहसा जैसे भाग जाना चाहती थीं। यही सोच यह जल्दी-जल्दी तैयार हो कर निकल पड़ी।

मीना के घर तब तक बहुत-सी महिलाएं आ चुकी थीं। उनमें मिसेज सेन भी थीं। चेतना के मन में उनसे मेघराजजी के बारे में बात करने की इच्छा होने लगी। वह आज चुपचाप सारी बातें पता करके अपनी व्यवहार कुशलता से सबको चकित कर देना चाहती थी। भाग्य से एक मौका हाथ आया था। मिसेज सेन को दिल्ली की पूरी खबर रहती। उनका काम ही है—इधर की सच्ची-झूठी बात उधर, और उधर की इधर।

चाय-काफी के दौर समाप्त हो जाने पर चेतना मिसेज सेन को मीना के बैडरूम में ले गई। बातों की कोई विशेष भूमिका नहीं बांधनी पड़ी। एक बार छेड़ देने पर मिसेज सेन टेप-रिकार्डर की तरह बजी तो देर तक बजती रही—

'चेतनाजी, अपने मेघराजजी को तो मैं बहुत सालों से जानती हूं। दिल्ली के कुछ पुराने, नामी घरानों में ऐसा कोई नहीं, जो मेघराजजी को न जानता हो। उनका परिवार बड़ा ही समृद्ध और सुसंस्कृत है। अपनी तीनों बेटियों को बहुत ऊंची शिक्षा दी है उन्होंने। बड़ी बेटी की शादी हुए छह साल हो गये हैं। उससे छोटी ने विदेश जाकर किसी फ्रेंच आर्टिस्ट से शादी कर ली है। नम्बर तीन का दो साल हुए चोपड़ा के बेटे से ब्याह हुआ था, पर अब डाईवोर्स हो गया है। सुना है एक बंगाली पाद-निगर के साथ खुल्लम-खुल्ला रहती है। क्या जाने उनसे शादी करेगी भी या नहीं!'

पास है, जो रात को समीर, देवेन्द्रजी और नमिता को भीतर आने में सहायक होगी और एक चार्वा, किट्टी पार्टी की विशेष महिलाएं प्रयोग में लाती हैं। चेतना को बहुत दिनों तक पता भी न चला कि कुछ महिलाएं अपने चेहरों पर विशेष मुस्कानें लाकर अपनी-अपनी कारों की चाबियां बदल कर क्यों एक-दूसरे की कार में चली जाती हैं ? साड़ी-दुपट्टा बदल कर सहेलियां 'बहन' बनती हैं, यह तो सुना था, पर कार बदल कर क्या बनती है ? यह राज जब चेतना पर खुला तो वह चौंक गई थी ! उन्हीं लोगों के बीच समीर रात को पार्टियों में अकेला जाने लगा है चेतना को उनके बीच इतना अजनबीपन लगने लगा है कि वह चाह कर भी इस आधुनिक समाज में सहज नहीं हो पाती। उसे लगता है, वह अपने संस्कारों की एक नन्ही-सी नलकी में कैद, धीरे-धीरे रेंग रही है कि किसी तरह बाहर आ सके ! जबकि संसार तेजी से भाग रहा है। यह 'जेट एज' है, तेज रफ्तार का समय ! और चेतना अपनी ही मान्यताओं के खम्भे से बंधी खड़ी रह गई है !

□

प्रातः आठ बज रहे थे। देवेन्द्रजी और समीर अपने-अपने काम पर जाने के लिए तैयार हो रहे थे। तभी पता चला एक महिला, जिसे 'चौधरानी' कहते हैं, शादी-ब्याह के रिश्ते तय करती है, यानी 'प्रोफेशनल' है, आने वाली है। वह ठीक नौ बजते ही आ पहुंची और उन दोनों को कार में बिठला कर ले गई। चेतना से किसी ने कुछ नहीं पूछा। क्यों नहीं पूछा ? चेतना स्वयं से ही सवाल-जवाब करती बैठी रह गई।

ग्यारह बजे वे लोग लौटे।

समीर ने जल्दी-जल्दी में बस यही बताया था कि कोई श्री मेघराज है, उनसे वे लोग मिलकर आये है। वे बहुत बड़े लोग हैं। बड़ा भव्य मकान है। शाम को चौधरानी फिर आ रही हैं।

चाय पिएंगे और बैठ कर बात-चीत भी हो जाएगी कि आगे क्या तय करना है।

समीर दफ्तर चला गया, देवेन्द्रजी भी साथ हो लिए। नमिता अभी तक सो रही थी। चेतना को अपनी चचेरी बहन मीना के घर 'कॉफी-पार्टी' के लिए जाना था। अतः ये सारी उलझनें छोड़ कर सहसा जैसे भाग जाना चाहती थी। यही सोच वह जल्दी-जल्दी तैयार हो कर निकल पड़ी।

मीना के घर तब तक बहुत-सी महिलाएं आ चुकी थीं। उनमें मिसेज सेन भी थीं। चेतना के मन में उनसे मेघराजजी के बारे में बात करने की इच्छा होने लगी। वह आज चुपचाप सारी बातें पता करके अपनी व्यवहार कुशलता से सबको चकित कर देना चाहती थी। भाग्य से एक मौका हाथ आया था। मिसेज सेन को दिल्ली की पूरी खबर रहती। उनका काम ही है—इधर की सच्ची-झूठी बात उधर, और उधर की इधर।

चाय-काफी के दौर समाप्त हो जाने पर चेतना मिसेज सेन को मीना के बेडरूम में ले गई। बातों की कोई विशेष भूमिका नहीं बांधनी पड़ी। एक बार छेड़ देने पर मिसेज सेन टेप-रिका-र्डर की तरह बजीं तो देर तक बजती रहीं—

'चेतनाजी, अपने मेघराजजी को तो मैं बहुत सालों से जानती हूं। दिल्ली के कुछ पुराने, नामी घरानों में ऐसा कोई नहीं, जो मेघराजजी को न जानता हो। उनका परिवार बड़ा ही समृद्ध और सुसंस्कृत है। अपनी तीनों बेटियों को बहुत ऊंची शिक्षा दी है उन्होंने। बड़ी बेटी की शादी हुए छह साल हो गये हैं। उससे छोटी ने विदेश जाकर किसी फ्रेंच आर्टिस्ट से शादी कर ली है। नम्बर तीन का दो साल हुए चोपड़ा के बेटे से ब्याह हुआ था, पर अब डाईवोर्स हो गया है। सुना है एक बंगाली पाप-सिंगर के साथ खुल्लम-खुल्ला रहती है। क्या जाने उससे शादी करेगी भी या नहीं!'

पास है, जो रात को समीर, देवेन्द्रजी और नमिता को भीतर आने में सहायक होगी और एक चाबी, किट्टी पार्टी की विशेष महिलाएं प्रयोग में लाती है। चेतना को बहुत दिनों तक पता भी न चला कि कुछ महिलाएं अपने चेहरों पर विशेष मुस्कानें लाकर अपनी-अपनी कारों की चाबियां बदल कर क्यों एक-दूसरे की कार में चली जाती हैं ? साड़ी-दुपट्टा बदल कर सहेलियां बहन' बनती है, यह तो सुना था, पर कार बदल कर क्या बनती है ? यह राज जब चेतना पर खुला तो वह चौंक गई थी ! उन्हीं लोगों के बीच समीर रात को पार्टियों में अकेला जाने लगा है चेतना को उनके बीच इतना अजनबीपन लगने लगा है कि वह चाह कर भी इस आधुनिक समाज में सहज नहीं हो पाती। उसे लगता है, वह अपने संस्कारों की एक नन्ही-सी नलकी में कैद, धीरे-धीरे रेंग रही है कि किसी तरह बाहर आ सके ! जबकि संसार तेजी से भाग रहा है। यह 'जेट एज' है, तेज रफ्तार का समय ! और चेतना अपनी ही मान्यताओं के खम्भे से बंधी खड़ी रह गई है !

□

प्रात: आठ बज रहे थे। देवेन्द्रजी और समीर अपने-अपने काम पर जाने के लिए तैयार हो रहे थे। तभी पता चला एक महिला, जिसे 'चौधरानी' कहते हैं, शादी-ब्याह के रिश्ते तय करती है, यानी 'प्रोफेशनल' है, आने वाली है। वह ठीक नौ बजते ही आ पहुंची और उन दोनों को कार में बिठला कर ले गई। चेतना से किसी ने कुछ नहीं पूछा। क्यों नहीं पूछा ? चेतना स्वयं से ही सवाल-जवाब करती बैठी रह गई।

ग्यारह बजे वे लोग लौटे।

समीर ने जल्दी-जल्दी में बस यही बताया था कि कोई श्री मेघराज है, उनसे वे लोग मिलकर आये है। वे बहुत बड़े लोग हैं। बड़ा भव्य मकान है। शाम को चौधरानी फिर आ रही हैं।

चाय पिएंगे और बैठ कर बात-चीत भी हो जाएगी कि आगे क्या तय करना है।

समीर दफ्तर चला गया, देवेन्द्रजी भी साथ हो लिए। नमिता अभी तक सो रही थी। चेतना को अपनी चचेरी बहन मीना के घर 'कॉफी-पार्टी' के लिए जाना था। अतः ये सारी उलझनें छोड़ कर सहसा जैसे भाग जाना चाहती थी। यही सोच वह जल्दी-जल्दी तैयार हो कर निकल पड़ी।

मीना के घर तब तक बहुत-सी महिलाएं आ चुकी थीं। उनमें मिसेज सेन भी थीं। चेतना के मन में उनसे मेघराजजी के बारे में बात करने की इच्छा होने लगी। वह आज चुपचाप सारी बातें पता करके अपनी व्यवहार कुशलता से सबको चकित कर देना चाहती थी। भाग्य से एक मौका हाथ आया था। मिसेज सेन को दिल्ली की पूरी खबर रहती।,उनका काम ही है—इधर की सच्ची-झूठी बात उधर, और उधर की इधर।

चाय-काफी के दौर समाप्त हो जाने पर चेतना मिसेज सेन को मीना के बैडरूम में ले गई। बातों की कोई विशेष भूमिका नहीं बांधनी पड़ी। एक बार छेड़ देने पर मिसेज सेन टेप-रिकार्डर की तरह बजीं तो देर तक बजती रहीं—

'चेतनाजी, अपने मेघराजजी को तो मैं बहुत सालों से जानती हूं। दिल्ली के कुछ पुराने, नामी घरानों में ऐसा कोई नहीं, जो मेघराजजी को न जानता हो। उनका परिवार बड़ा ही समृद्ध और सुसंस्कृत है। अपनी तीनों बेटियों को बहुत ऊंची शिक्षा दी है उन्होंने। बड़ी बेटी की शादी हुए छह साल हो गये है। उससे छोटी ने विदेश जाकर किसी फ्रेंच आर्टिस्ट से शादी कर ली है नम्बर तीन का दो साल हुए चोपड़ा के बेटे से ब्याह हुआ था, पर अब डाईवोर्स हो गया है। सुना है एक बंगाली पाप-सिंगर के साथ खुल्लम-खुल्ला रहती है। क्या जाने उससे शादी करेगी भी या नहीं!'

बातों में रस लेती मिसेज सेन बोले जा रही थी—

'चेतना, तुम्हें याद है, पिछले साल दरियागंज में किसी एक नीना चावला का मर्डर हुआ था ! बड़ी खूबसूरत थी ! पचास साल की उम्र में भी क्या रूप था उसका ! सुनते हैं, वह मेघराज की 'कीप' थी। मसूरी में गर्मियों के कुछ महीने मेघराज उसके साथ बिताते थे। नीना का वहां बड़ा सुन्दर बंगला है। सुना जाता है मेघराज ने वह बंगला उसे किसी वर्षगांठ पर भेंट किया था। चलो, अब तो बेचारी मर ही गई···।'

चेतना को सहसा मेघराज की पत्नी सत्या का चेहरा याद आया जिनसे वह रमा के यहां 'किट्टी-पार्टी' पर मिल चुकी है। पास ही २४ नम्बर में बेदी साहब रहते हैं, उनकी सगी बहन है वह !

एकाएक उसे याद पड़ा, बेदी साहब की मृत्यु का दिन ! वह समीर के साथ दुख प्रकट करने वहां गई थी। सत्या बड़ी कीमती, सुन्दर साड़ी पहने थी। ऐसा लग रहा था, जैसे अभी किसी 'ब्यूटी पार्लर' से सज कर आई है। हर आगन्तुक की दृष्टि उन पर ठहर जाती थी। मरने वाले की सगी बहन है, जान कर और भी अधिक आश्चर्य होता। सत्या को भाई की मृत्यु के दुख से अधिक चिन्ता अपने कीमती कपड़ों की थी। वह नख-शिख पूरी तरह सजी, अपनी विशेष अदा में इधर-उधर घूमती, अपनी लम्बी-लम्बी नाजुक अंगुलियों में चौड़ी लेस का काला, कलात्मक रूमाल थामे शोकवार्ता में सक्रिय भाग ले रही थी।

आज एकाएक यादों में लुका-लिपटा वह साधारण, पर विशेष रूप से सामने आ खड़ा हुआ था। प्यारी-सी, भोली-भाली-सी नमिता के लिए ऐसी सास। मन में एक प्रश्न-चिन्ह उगने लगा।

मिसेज सेन कहे जा रही थी, 'असली बात तो अभी रह गई है। उनके बेटे रमण के बारे में तो मैंने बताया ही नहीं !'

कहानी का नायक तो सचमुच अभी तक धरती पर नहीं उतरा था और इतनी बड़ी भूमिका कैसे बंध गई—चेतना सोच

रही थीं। अपने भीतर की गृहिणी की पूरी बुद्धि लगाकर इस निष्कर्ष तक पहुची थी कि लड़का ठीक होने से शायद काम चल जाएगा।

'मिसेज सेन लड़के के बारे में भी कुछ बता दीजिए न ! आपने देखा होगा ?'

'अरे हा, देखा क्यों नही, मेरे बेटे सन्नी के साथ ही तो पढ़ता था। अक्सर यहां आता-जाता रहता था। आजकल सन्नी बाहर है, इसलिए नही आता, नहीं तो मैं तुमसे मिलवा देती। लड़का बड़ा अच्छा है। मैं तो अपनी केतकी की शादी करना चाहती थी उससे, पर उसे रमण पसन्द ही नही। केतकी ने तो उसे बचपन से देखा है। कहती है—'मम्मी, बडा सोया-सोया-सा है रमण ! एलर्ट नही है। *काम बहुत धीरे-धीरे करता है। कार ड्राइव इतना* 'स्लो' करता है कि कोफ्त होती है। ही इज नाट ए थ्रिलर···।' अब पता नही यह 'थ्रिल' क्या है जो उसमें नजर नही आता लड़कियों को ? पढाई तो उसने पूरी की नही। लन्दन गया था कुछ करने, पर पिता ने बुला लिया। यहां काम बहुत फैला हुआ है और वह इकलौता ही बेटा है। सच पूछो तो केतकी 'हा' करती तो मैं आखें बन्द करके उसकी शादी कर देती। ऐसा घर-परिवार कहा मिलेगा। इतने एडवास, पढ़े-लिखे अमीर है। ऊपर से इतना नाम है उनके परिवार का ! मेघराज की बेटियों का क्या है, उनका जीवन, उनका अपना है। जैसे भी चाहें रहे, भाई या बाप पर बोझा तो नहीं है। जहा तक मेघराज की अपनी निजी जिन्दगी का सवाल है, बड़े लोगों के साथ एक-आध किस्से तो जुड़े ही रहने चाहिए। जवानी में एक-आधे भूलें तो सभी से हो जाती हैं। और अब नीना मर चुकी है, आख ओझल तो पहाड़ ओझल !'

मिसेज सेन को, धन्यवाद देकर लौट आई चेतना। मन में अनेक प्रश्न सिर उठा रहे थे। कैसा विचित्र लग रहा था, सब

कुछ। मेघराज, सत्या, उनकी बेटिया, सोया-सोया रमण। 'हो इज नाट ए थिनर' जाने क्यों किसी अंग्रेजी पत्रिका में पढ़ा एक लेख याद आने लगा—ड्रग्स लेने वाले बच्चे सोए-सोए-से लगते है, कही रमण···!

चेतना को लगा ये सारे रहस्य बता कर वह देवेन्द्रजी और समीर सबको चौंका देगी। एक साथ इतनी जानकारी। उसे लग रहा था, देवेन्द्रजी को यह सब पसन्द नही आएगा और वह सीधे 'ना' कर देंगे।

□

शाम को ड्राइग-रूम मे अच्छी तरह बन-सवर कर चेतना आ बैठी थी। चाय की मेज पर तरह-तरह के स्वादिष्ट भोज्य-पदार्थ सजे थे। किसी भी क्षण समीर के साथ देवेन्द्रजी आ सकते थे। पर सभी साथ आए—समीर, देवेन्द्रजी, नमिता और उनके साथ चौधरानी भी।

चेतना चौधरानी को नजरो मे तौलने लगी। साधारण-सी स्वयसेविका-जैसी लगने वाली महिला! सादी वेश-भूषा! सफेद साड़ी, सारे बाल—सफेद और हाथ में बड़ा-सा थैलानुमा पर्स!

चौधरानी ने बैठते ही अपने भारी पर्स से एक काली डायरी निकाली, कुछ नामो पर पेंसिल से निशान लगाए और दो-तीन फोन करके कुछ लोगो से अपना मिलने का समय तय किया। फिर आकर सोफा पर आराम से बैठ गई।

'चेतना बेटी है आप! देवेन्द्रजी बता रहे थे कि नमिता को बहुत प्यार करती है। कितने भाई-बहन है आप? कोई एक-आध बैचलर हो तो हमें बताइये···। देखो जी, मै तो सीधा लड-कियों से पूछ लेती हू कि कैसा लडका चाहिए? सोने की अगूठी दे वह, हीरे की अंगूठी दे वह! फिर आपकी नमिता तो हीरो मे मढ़ देने लायक है जी—ई। बड़े बाप की इकलौती बेटी। सोच-समझ कर ही बताया आपको। आपकी टक्कर की आसामी तो

मेघराज ही है, वैसा घर-बार दूसरा दिल्ली में ढूढे नही मिलेगा आपको।'

देवेन्द्रजी को ही नही, समीर को भी लग रहा था कि अधिकतर बातें पूछ चुके हैं। फिर भी कुछ प्रश्न कर रहे थे और चौधरानी उत्तर दे रही थी। देवेन्द्रजी को भी लगा था रमण थोड़ा सुस्त-सा है, तो उत्तर में चौधरानी ने कहा, 'देखो जी, जब बाप की अपनी परसनैलिटी बडी ओवर पावरिंग हो तो बेटे अक्सर सुस्त लगते है। आप चाहो तो अलग से मिल लो उससे। बड़ा होशियार है। नई फैक्टरी वही तो सम्भाल रहा है। तेईस-चौबीस साल का है। और अधिक क्या उम्मीद करते है आप ?'

और भी अनेक प्रश्न चलते रहे। चेतना को लगा, सारी बातें मिसेज सेन की बातो से मिलती-जुलती तो है, केवल कहने का ढग अलग है। सारी बात का पासा पलटा हुआ-सा लगा, और सारी बात एक सतोषजनक ढर्रे से बह कर जैसे किसी एक निष्कर्ष तक पहुच रही थी। चेतना के मन मे घुटन होने लगी, कही ऐसा न हो बेचारी नमिता इन बातो के जाल में फस जाए! उसे बचाना होगा ! वह हिम्मत करके कहने लगी, 'चौधरानीजी, आपने मेघराज के और नीना चावला के बारे मे कुछ नही बताया? उनका क्या सम्बन्ध था ? अखबार मे यह भी निकला था कि उसके 'मर्डर' का रहस्य खुल नही पाया है !'

चेतना की बात से किसी के चेहरे और चौधरानी से आत्म-विश्वास में कोई परिवर्तन नही आया। जैसे चौकने की बारी चेतना की ही थी।

'कोई बात नही बेटी, बड़े आदमियो में यह सब चलता रहता है। बडा आदमी किसी से हसे-बोले तो लोग बदनाम कर देते है। ये सारी बातें बताई हुई हैं। वह नीना तो उनकी कोई गरीब रिश्तेदार थी, मेघराज पैसे-वैसे से उसकी मदद कर दिया करता था, और कुछ नही था। लोगों का क्या है, जहा खूबसूरत औरत

देखी, उसकी बात आई, एक कहानी गढ़ ली। कान कच्चे न करो, इन बातों के सिर-पैर नही होते बेटी !'

देवेन्द्रजी कन्या-पक्ष के लोगों का परिचय दे रहे थे। चौधरानी की पूरी सतुष्टि करा रहे थे। चेतना तक बात आई तो कहने लगे, 'हमारी चेतना बहुत सीधी है। इसे तो दुनिया का कुछ पता नही। इसका बस चले तो पूरी आधुनिकता को आग लगा दे और इतिहास से खोज कर कोई पुराना राम-राज्य ले आये···!'

सब हस रहे थे—देवेन्द्रजी, समीर चौधरानी और दूसरे सोफे पर बैठी नमिता भी। चेतना नमिता को दो बार भीतर जाने को कह चुकी थी, पर वह वही डटी बैठी थी। चेतना उसे फटी-फटी आखो से देख रही थी—बदरंग हो आई 'जीन' उस पर काला ब्लाउज, जिस पर पेट के पास उसने गाठ बांध रखी थी। माथे पर खुले छोड़े, लम्बे कटे बाल हवा में झूल रहे थे। आखो पर ढेर-सारा काजल नीले रग का मसकारा—कत्थई से काली होती लिपस्टिक। ढेर-सारी चादी की चूड़िया, अगुलियो मे आठ-दस अगूठिया और उस सब के ऊपर कल-कल करती नमिता की हसी ! चेतना सोच रही थी आखें बन्द करके उसकी निर्दोष हसी सुने या आखें खोल कर उसका वह आधुनिक रूप देखे, जिसकी प्रदर्शनी लगाए वह यहा बैठी है ! □

कुसुम चतुर्वेदी

○

उपनिवेश

फिफ्थ स्टैंडर्ड की क्लास से निकलते ही प्रिंसिपल चक्रवर्ती मिल गये थे, "मिस सिन्हा, काम समाप्त करके आफिस में आइएगा जरा।"

सुधा सिन्हा का कलेजा धड़क उठा। जब से स्कूल में नये प्रिंसिपल आये हैं, रोज ही किसी-न-किसी स्टॉफ मेंबर की बारी आ जाती है। मिसेज बहल को कल फिर चेतावनी मिली थी। स्वदेश बहल का फीका और सुता हुआ चेहरा सुधा की आंखों में घूम गया। आर्य कन्या पाठशाला की नौकरी छोड़ कर उसने तीन वर्षों से यहां पढ़ाना शुरू किया था। यहां उसके दोनों बच्चे पढ़ रहे थे। इस स्कूल से नौकरी छूट जाने का अर्थ था, चार-चार सौ रुपये न दे सकने की स्थिति में बच्चों को किसी सामान्य स्कूल में पढ़ाना। मिस्टर बहल की आकस्मिक मृत्यु ने स्वदेश को छब्बीस वर्ष की वय में ही इस भरी-पूरी दुनिया में निराधार छोड़ दिया था। स्वदेश, सुधा के यहां आने के कुछ बाद आयी थी। पुराने प्रिंसिपल मि० पंत के सामने वह अपना हाल सुनाते-सुनाते फफक उठी थी। 'इंग्लिश फ्लूएंटली बोल

सकती हो ?' मि० पंत ने पूछा था।

'जी हां, मैंने प्रारंभिक शिक्षा क्रिश्चियन स्कूल में पायी है। इंग्लिश बखूबी बोल सकती हूं।'

मि० पंत ने कुछ देर सोच कर कहा था, 'इंग्लिश का ऐक्सेंट तो तुम्हारा एकदम पंजाबी है, पर खैर, मैथमेटिक्स में चल जायेगा। जुलाई से स्कूल ज्वॉयन कर लेना। रहने की व्यवस्था भी हो जायेगी।'

सुधा के साथ भी अंग्रेजी उच्चारण की दिक्कत है। हिंदी माध्यम से शिक्षित होने के कारण गोल मुंह करके कान्वेंटी इंग्लिश बोलना उसे भी नहीं आता। पर इतने अरसे से अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में पढ़ा-पढ़ा कर अंग्रेजी संभाषण का पर्याप्त अभ्यास तो हो ही गया है। पिछले स्कूल के प्रिंसिपल, एक आयरिश फादर उसमें अनावश्यक रुचि न लेने लगते, तो वह यहां आने को कदापि उत्सुक नहीं थी। आयरिश फादर के भव्य लबादे और प्रभावशाली व्यक्तित्व में दबी-ढकी असलियत को जान कर वह स्तब्ध रह गयी थी। कोई हिंदुस्तानी उसमें रुचि लेता, तो शायद वह अपने कुंवारेपन की लंबी शून्यता को भर पाने का आश्वासन भी खोजती। फादर के लिए पहले मिस मोहिनी, फिर मिस तनेजा, फिर वह···एक जीवन-पक्ष, जो किन्हीं पारिवारिक कारणों से अनजाना रह गया, इस रूप में जानने की इच्छा उसकी नहीं हुई।

और फिर, इस नौकरी के लिए इंटरव्यू देने के पश्चात प्रिंसिपल पंत और मिसेज पंत से उसकी बातचीत में उसे बड़ा सहारा मिला था। जब लौटी थी, तो वयस्क पंत दंपती की सदय दृष्टियां उसके आशंकित हृदय को सहलाती रही थीं।

अंग्रेजी उसे सचमुच बहुत अच्छी नहीं आती थी। काम-चलाऊ बोल लेना और बात है, पर सिक्स्थ स्टैंडर्ड के बच्चों को पढ़ाना उसके लिए कठिन कार्य है; संपन्न अभिभावक अंग्रेजी

में महारत हासिल करवाने के लिए ही तो एक-एक बच्चे पर दस-दस हजार रुपये हर साल व्यय करते है। पब्लिक स्कूल की शिक्षिका के व्यक्तित्व, रहन-सहन की स्टाइल और अंग्रेजी के उच्चारण से ही तो वे प्रभावित होते है। अशिक्षित या अर्द्ध-शिक्षित अभिभावको से तो वह निबाह ले जाती है, किंतु विदेशों मे रह रहे, अंग्रेजी को मातृभाषा की तरह फर्राटे से बोलने-वाले अभिभावकों के सामने उसे अपनी सपाट लहजे वाली अंग्रेजी के कारण बहुत निराशा होती है। हर महीने बच्चो के टेस्ट कार्डो पर क्लास-टीचर के नाते उसे रिमार्क लिखने होते है। वह जानती है ये कार्ड जिनके पास जायेंगे, वे अंग्रेजी में निष्णात होते है। लिखित रूप में उसकी एक भी भूल अक्षम्य मानी जायेगी। पैंतीसों कार्ड बिछा कर उन पर रिमार्क लिखते समय कई-कई बार उसे डिक्शनरी देखनी पडती है। गलत लिखे गये शब्दों को ब्लेड से खुरच कर मिटाना पड़ता है। जूनियर स्कूल की इंचार्ज मिस नोरा ने उसकी गलतिया पकड़ ली थी, 'व्हाट यू हव डन मिस सिन्हा! यू नो दे आर फॉर गार्जियंस, व्हाट इंप्रेशन दे विल फॉर्म फॉर अवर स्कूल टीचर्स ?'

कार्डो पर सपाट रिमार्क लिखते-लिखते वह बेहद क्लात हो उठती है—ही इज वीक इन हिंदी ऐंड मैथमेटिक्स, ही इज वेरी गुड इन आर्ट्स, ही टेक्स इंटरेस्ट इन म्यूजिक, आदि-आदि। क्या लाभ है उसे अपने एम. ए. तक शिक्षित होने का ? अंग्रेजी माध्यम स्कूलों से सीनियर कैंब्रिज पास शिक्षिकाओं से वह मात खा जाती है।

○

नये प्रिंसिपल शिमला से आये हैं। वहां के इंग्लिश माध्यम स्कूल मे उन्होंने बीस वर्ष काम किया है। बंगालियों का इंग्लिश पर अच्छा अधिकार होता है। सुना है, उन्होने कॉल्विन ता— केदार स्कूल, लखनऊ में शिक्षा प्राप्त की है। आते ही

को उन्होंने अत्यधिक उत्साह से सभाला। लगा कि उसका नये सिरे से सुधार करेंगे। प्रारंभ में सारे स्टाफ को उन्होंने एकदम प्रभावित कर लिया था। अधूरे पडे स्टाफ-क्वार्टर्स का निर्माण तेजी से प्रारभ हो गया। किचन ब्लॉक नया बनाने का प्लान बना, खाने में सुधार हुआ। हर मास्टर के वेतन में दस रुपये की वृद्धि हुई। मिस सिन्हा को याद है कि कितनी जल्दी लोग मि० पत को भूल गये थे और उनके ढीले-ढाले व्यक्तित्व के के कारण नौकरी में अनुशासनहीनता, पैसे की अनावश्यक बर्बादी आदि की बातें कही जाने लगी थी।

नये प्रिंसिपल ने धीरे-धीरे एक 'इनर सर्किल' बना ली थी। सीनियर टीचर महीपाल रावत को बॉस नियुक्त कर दिया। सीनियर क्लास के मैथमेटिक्स टीचर नंदवानी को गेम्स-इन्चार्ज का एलाउंस दिया। हाउस-मैट्रनों को हर शाम चार बजे से छह बजे तक की छुट्टी के अतिरिक्त हफ्ते में एक पूरे दिन की छुट्टी की व्यवस्था की। नौकरो को नयी वर्दी प्रदान की गयी। हेड बैरा की तनख्वाह बढा दी गयी। चार पुराने नौकरो को नदी के बाध के किनारे बस रही हरिजन-बस्ती मे जमीन खरीदने के के लिए पाच-पाच सौ रुपये एडवास दिये गये।

स्कूल में शतरज-सी बिछ चुकी थी। अब मोहरो के पिटने की बारी थी। वाइस प्रिंसिपल मि० कुमार का पत जी को यहा से हटाने में सबसे अधिक हाथ था, किन्तु प्रिंसिपल के पद को सुशोभित करने की उनकी अदम्य इच्छा पर विराम लगा कर ट्रस्टियो ने मि. चक्रवर्ती को यहा ला बिठाया। स्कूल में अभी तक कोई अध्यापक यूनियन नही थी। नये प्रिंसिपल की प्रेरणा से यह कार्य भी संपन्न हुआ। अध्यापक यूनियन के उद्‌घाटन के दिन मि० चक्रवर्ती की ओर से एक शानदार डिनर दिया गया। उनकी उपस्थिति में शिक्षको के लिए स्कूल-सेवा संबंधी एक नियमावली तैयार की गयी। इस नियमावली में अवकाश-

ग्रहण के आयु-निर्धारण के तौर से सबसे पहले निशाना मि० कुमार को बनाया गया। अधिकांश मास्टर प्रसन्न थे। मि० कुमार का नया मकान काफी लोगों की ईर्ष्या का विषय बना हुआ था। कुछ लोगों ने तटस्थता ओढ़ ली। ऐसे केवल दो-चार मास्टर ही थे, जिन्हें अपने अवकाश की पूर्व सूचना खटकी थी।

प्रिंसिपल चक्रवर्ती ने मि० कुमार के शानदार फेयरवेल में संस्था को की गयी उनकी सेवाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की और एक कीमती घड़ी उपहार में दी। इस उदारता के नीचे नये नियमके परवर्ती प्रभावों की बात स्टाफके मनमें दुबक-सी गयी।

स्कूल से लगभग आठ सौ मीटर दूर एक खड्ड खरीदा गया। उस पर नये सर्वेंट क्वार्टर बनाये गये। नौकरों को पानी, बिजली, फ्लश-लैट्रीन जैसी आधुनिक सुविधायें दी गयी।

स्कूल की बिल्डिंगों के साथ बने क्वार्टरों में इधर-उधर बिखरे-बसे सारे नौकर एक बस्ती में इकट्ठे हो गये। नये मकानों में जाते समय नौकरों के मन में बेहद उत्साह था। टीन-छायी पुरानी कोठरियों को छोड़ कर लिंटर पड़े, पक्के फर्श और आगे बरामदे वाले कमरे उन्हें मिले थे। किचनके पिछवाड़े पड़नेवाला नौकरों का ब्लॉक भी खाली कराया गया। डाईनिंग हॉल से इन घरों में सब्जी के पूरे भरे डोंगे, पुलाव भरी प्लेटें, कस्टर्ड, सॉस, जैम, मक्खन, ब्रेड खिसकाने में सुविधा होती थी। इस तरफ के नौकरों को क्वार्टर छोड़कर जाना बड़ा अखर रहा था, पर कोई चारा भी नहीं था। प्रिंसिपल ने उन्हें अनेक नयी सुविधायें प्रदान की थी। स्कूल-डिस्पेंसरी से उन्हें दवा मिलने लगी थी। सहकारी डेरी से स्कूल में दूध आता था, वहां से नौकरों के लिए एक-एक पाव दूध दिया जाने लगा था।

अगले महीने की शुरुआत में दूध के पैसे काटकर जब नौकरों का वेतन दिया गया, तो सभी चौंके। नये प्रिंसिपल ने उनके वेतन में पांच रुपये बढ़ाये थे, नयी वर्दी सिलवायी थी, प्रॉविडेंट

फंड जमा होने लगा था, नये मकान बने थे अतः दूध के विषय में मुह खोलना उचित नही था। अभी तो नये साहब से कितने लाभ मिलने की सभावना है। अभी उन्हें आये कुल छह महीने ही हुए हैं। कितना कुछ तो कर दिया गया है।

⊙

सुधा को याद है, जब बिलखते हुए गोपाल को स्कूल से निकाला गया था। पद्रह-बीस दिनो तक लगातार बुखार आने के बाद जब डॉक्टरो ने उसे टी० बी० का शक बताया था, तब ३० वर्षो की स्कूल-सेवा के पुरस्कारस्वरूप सौ रुपये देकर उसे नौकरी से पृथक कर दिया गया। सभी नौकरो को एक्स-रे कराने का आदेश दे दिया गया। प्रिसिपल ने अहसान जताते हुए कहा कि स्कूल की तरफ से हर नौकर का एक्स-रे खर्च उठाया जायेगा। सभी नौकरो को डॉक्टर से अपने स्वास्थ्य की रिपोर्ट लेकर आना पडेगा। बैरो-खानसामो में बहुत से पुराने लोग थे, जिन्होंने पिछले प्रिसिपल के कार्यकाल मे अपनी मागों को लेकर लम्बी हड़ताल की थी। यूनियन खर्च में हर नौकर अपने वेतन में से एक रुपया महीना देता था। डॉक्टर के यहा से स्क्रीनिंग रिपोर्ट लेने वालो का ताता लगा रहता। आधे से अधिक नौकर निकाल दिये गये। उनके क्वार्टर खाली करवा लिये गये। बच्चों के हॉस्टल में तपेदिक के रोगी नौकरों को कैसे रखा जा सकता है? नौकरों में से किसी मे स्वय, किसी की पत्नी या किसी की सतान में टी० बी० के लक्षण पाये गये। हालाकि निकाले जानेवाले नौकरो का कहना था कि यह सब प्रिसिपल और डॉक्टर की मिलीभगत थी।

स्कूल मास्टर भी नगर मे बिखरे मकानो को छोड़ कर स्कूल की बैरकनुमा क्वार्टरों में आ बसे थे। हर मास्टरनी के लिए एक दिन मैट्रन की ड्यूटी करना अनिवार्य हो गया। पास-पास आ बसे हम-पेशा लोगो मे पारस्परिक प्रेम के स्थान पर

ईर्ष्या अधिक पनप रही थी। किसने सास के दिये पैसों से फ्रिज लिया है, किसने स्कूटर खरीदने के लिये क्या तिकड़म भिड़ायी है और कौन प्रिंसिपल का चमचा बना हुआ है—जैसी बातें रोज सुनने को मिलने लगी। किसी को प्रिंसिपल द्वारा कुछ कहा-सुना जाता, तो उसको तुरन्त अपने पड़ोसी के चुगलखोर होने का सन्देह होता। एक वर्ष बीतते-न-बीतते हर व्यक्ति के मन मे दूसरे के प्रति आशका उत्पन्न हो गयी थी। सुधा को लगता, समूचे स्कूल के वातावरण में जहर घुल गया है। स्कूल के काम अब जीविकोपार्जन न रह कर, प्रिंसिपल के शब्दो मे 'डेडिकेशन' बनते जा रहे थे। जी-तोड़ परिश्रम करने के बाद भी सिर पर लटकी तलवार का अहसास प्रत्येक को बना रहता।

○

सुधा भी घिसट रही थी। प्रिंसिपल का आदेश सुनने के पश्चात उसके होंठ कक्षा में बोलते रहे और मस्तिष्क न जाने किन-किन ऊबड़-खाबड़ घाटियो में भटकता रहा। एक बजे अतिम कक्षा पढा कर लच के लिए डाइनिंग हॉल मे जाने से पूर्व उसे प्रिंसिपल से मिल लेना है। अब तक तीन टीचर निकाले जा चुके है। दो को पूरे सेशन की छुट्टी दे दी गयी है। मिस कौर अपने पिता के ऑपरेशन के लिए चडीगढ़ गयी थी। वहां उन्हे स्वीकृत छुट्टियों से एक हफ्ता अधिक लग गया। प्रिंसिपल ने उन्हें नेक सलाह दी, 'देखिये मिस कौर, हमने आपकी एवजी में पूरे सेशन के लिए बंदोबस्त कर लिया है, आपको भी सुविधा होगी। घर पर रह कर बूढ़े पिता जी की अच्छी तरह देखभाल कर सकती है।' मि० वर्मा अपने बहनोई की आकस्मिक मृत्यु के कारण छुट्टी लेकर गये थे। वहा बहन ने एक दिन जबरदस्ती रोक लिया। आते ही उन्हें प्रिंसिपल के सामने जवाबदेही करनी पड़ी। शोक, विवशता और क्षोभ के कारण उत्तर देने में अशोक वर्मा की गर्दन की नसें फूल रही थीं। आखें आंसू रोकने की

चेष्टा में सुर्ख हो रही थी । सारे स्टाफ के सामने वे बस इतना कह सके, 'सर, मेरी बहन बड़ी विपत्ति में थी । ब्रदर-इन-लॉ उसे अपने प्रॉविडेंट फंड, बीमा, प्रॉपर्टी आदि किसी बारे में बता नहीं पाये थे ।'

बड़े मीठे स्वर में मि० चक्रवर्ती ने उन्हें समझाया, 'अच्छा हो मि० वर्मा, आप पूरे सेशन भर अपनी बहन के साथ रहें । उनका काम ठीक-ठाक कर दें । आपको जगह जिसे हमने रखा है । उसे पूरे सेशन भर पढ़ाने के लिए कह दिया है ।'

अशोक कुछ बोलना चाहता था, पर जानता था कुछ कहना व्यर्थ है । बहन को संभालना तो है, पर अपनी भी जिम्मेदारियां है—पत्नी है, बच्चे है, बूढ़े पिता हैं । पूरे सेशन भर बहन के यहां बैठ कर सब खायेंगे क्या ? फिर यह नोटिस पूरे सेशन की ही हो, इसकी क्या गारंटी है ?

दरअसल नये प्रिंसिपल की चालों से धीरे-धीरे सभी अवगत होते जा रहे थे । पुराना स्टॉफ कई-कई वेतन-वृद्धियां ले कर काफी आगे पहुंच चुका है । नये व्यक्तियों की नियुक्तियां प्रारंभिक वेतन पर होती हैं । इन स्कूलों में प्रारंभिक वेतन की राशि भी प्रिंसिपल की इच्छा पर निर्भर है । स्कूल का माहौल बन चुका था । नौकरों की छंटनी, मास्टरों से गुलाम की तरह काम लेना, उन्हें एक-एक कर यों टरकाना । अशोक के मन में आया, अभी चीख कर सबके सामने कह दे, 'सर, आपके दोनों पैरों में भयंकर एग्जिमा है, वीपिंग एग्जिमा । आपने भीतर-भीतर सड़ते नौकरों को अपने स्कूल से निकाल कर असहायता के गर्त में ढकेल दिया । आप जो हर समय अपने पैरों, टांगों को खुजाते रहते है और वैसे ही सबसे हाथ मिला लेते हैं, सारे कागज छूते है, हमें भी इससे उबकाई आती है और इनफेक्शन का डर लगता है ।'

सुधा को वह बड़ी बहन की जगह मानता था । स्कूल छोड़ कर जाने से पहले उसके कमरे में वह यह सब कुछ कहता रहता

था। यह सब प्रिंसिपल से नहीं कहा जा सकता था। अन्यत्र नौकरी पाने के लिए इस संस्था के कार्य का प्रमाणपत्र उसके लिए सहायक हो सकता था।

सुधा को काफी दिनों से आभास मिलने लगा था कि अब उसकी भी बारी आनेवाली है। धीरे-धीरे वह अपने को इस स्थिति से मुकाबला करने के लिए तैयार भी कर रही थी। चोरी-छिपे कई रिक्त स्थानों पर उसने प्रार्थनापत्र भी भेजे थे। वहां से बुलाहट न आने का कारण बताया गया कि 'थ्रू प्रॉपर चैनल' आवेदन करना चाहिए। सुधा को आशा है, उसके बहन-भाई कहीं-न-कहीं अपने प्रभाव से उसे काम दिला देंगे। न भी मिले, तो किसी के भी घर वह रह लेगी। अकेली जान, जहां भी रहेगी, वहां कुछ-न-कुछ काम ही आयेगी। पर बहन-भाइयों के घर में एक 'डिग्नीफाइड' आया के रूप में अपनी कल्पना करके वह कांप जाती थी।

७

सुधा जैसे ही ऑफिस पहुंची, विलियम ने चश्मा उतार कर मेज पर रखते हुए वही कहा, जिसकी उसे आशंका थी, "मिस सिन्हा, अच्छा हो आप किसी हिंदी स्कूल में नौकरी तलाश कर लें। मिस नोरा आपके काम से संतुष्ट नहीं हैं। आपकी इंग्लिश बड़ी कमजोर है। कई गार्जियन भी यह शिकायत कर चुके हैं।"

तक जाग कर करेक्शन करते-करते मेरे चश्मे का नंबर बढ़ गया है।

मि० चक्रवर्ती की मुद्रा उत्तरापेक्षी थी ही नहीं। उन्होंने चपरासी को कागज दे कर एक गिलास पानी लाने को कहा। सुधा को बैठे देख कर उन्होंने आदेश दिया, "जाइए मिस सिन्हा, डाईनिंग हॉल मे बच्चे शोर कर रहे होगे, उन्हें 'डिसिप्लिन' में रखिए।"

डिसिप्लिन ! डिसिप्लिन ! ! डिसिप्लिन ! ! ! सुधा के मस्तिष्क की थकी शिराएं फटने को हो आयीं। मन किया, कागजों से भरी ट्रे उठा कर प्रिंसिपल के मुह पर दे मारे। यहा के बच्चे क्या माता-पिता के प्रेम के अवाछित फल है ? यहां हॉस्टल मे बच्चो को पटक कर पैसो के बल पर वे कुछ पढ़े-लिखे बेकार व्यक्तियो को जैसे खरीद लेते है। कभी भी किसी भी गार्जियन का पत्र आ टपकता है—'बच्चा फला विषय में कमजोर है, क्यो है ?' हर शिकायत संबंधी शिक्षक का 'एक्स-प्लेनेशन' मांगा जाता है। पढाई, कोरे पैसे खर्च करने से आती है क्या ? यहा आ कर देखें, जैसा खाना उनके नौकर भी न खाते होगे, बच्चे खाते हैं। चावल जैसी चीज को दोबारा मागने पर प्रिंसिपल बच्चों को झिड़क देते हैं, 'तुम सब मरभुक्खे हो। तुम्हें सिर्फ खाना खाने की पड़ी रहती है।' बच्चे यह उत्तर नही दे सकते, 'सर, ये पैसा किसका है, जिसके बूत पर आपकी यह दुकानदारी चल रही है ? आप चार कदम भी कार विना बाहर नही निकलते है···कीमती शराबें उड़ाते हैं···किचन का बढ़िया खाना पहले आपके घर पहुंचता है।'

बच्चों को 'डिसिप्लिन' में रखने की इस आदमी को खब्त है। सुबह से लेकर रात तक बच्चों को मशीन बनाये रखो। सुबह पी० टी०, फिर ब्रेकफास्ट, पढाई, ट्यूशन, टी, खेल, डिनर, सोना, हर समय की बधी हुई मशीनी दिनचर्या। सुधा को अपना

उन्मुक्त स्कूली जीवन याद आता। स्कूल से लौटते ही किताबें चारपाई पर पटक कर वह सीधे अमरूद के पेड़ पर चढ जाती थी। मा रसोई में खाना धरे बैठी चिल्लाती रहती थी।

सुधा की सारी युवावस्था पब्लिक स्कूलों में शिक्षण करते कटी है। हिंदी प्राइमरी स्कूलों के टाट पर बैठ कर पढने वाले बच्चे गालिया बकते है। गालिया यहा भी दी जाती है। अंग्रेजी में दी जाने वाली गालियो के हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किये जायें, तो सुनने वाले कानो पर हाथ धर लेंगे। यहा बच्चे आपस में जो 'नॉन-वेज जोक्स' सुनाते है, उनके समानातर हिंदी स्कूलों के बच्चे एक भी नही सुना सकते। पर, यहां शानदार बिल्डिगें है, चमचमाती नयी कुर्सिया है, कुछ पढ़े-लिखे दास हैं, जिन्हे सुबह आठ बजे से शाम आठ बजे तक उन बच्चों की देखभाल में जुटे रहना पड़ता है। वे बच्चे, जिनके लिए इनके जन्मदाताओं के पास समय नही है। लेबर लॉ के अनुसार काम लेने का नियम इन स्कूलो में लागू नही होता। प्रिंसिपल चक्रवर्ती, मिसेज सलूजा द्वारा दफ्तर में उपहारस्वरूप लगाये गये पंखे के नीचे निर्विकार बैठे हवा का आनद उठा रहे है। मिसेज सलूजा इस सेवा के प्रतिदान में आज भी छुट्टी मना रही होगी। सुधा को डाइनिंग हॉल में जा कर बच्चो को चुप कराना है, उनके साथ बेस्वाद खाना गटकना है। दुनिया का छोटा-से छोटा देश भी स्वाधीनता के लिए प्रयत्नशील है। इस छोटे-से क्षेत्र में हर व्यक्ति रोजी कमाने के लिए दोपाया पशु बन कर एक-दूसरे के दुखों से बेखबर बना हुआ है। यू० एन० ओ० का घोषणापत्र सारी दुनिया के लिए है, केवल ये चंद शानदार इमारतें इस दायरे से बाहर बनी हुई है।

क्या यहा के लोगों को सम्मान और स्वाधीनता पाने का कभी ध्यान नही आता? एक व्यक्ति में भी इतना साहस नही कि इस तानाशाह प्रिंसिपल को खरी-खरी सुना सके? स्वदेश बहल को पति की मृत्यु के पश्चात काफी पैसा मिला है। बच्चे

स्कूल में मुफ्त पढ लें, इसलिए वे इतनी दिक्कत और जिल्लत भोगकर निकाले जाने तक यहा पड़ी हुई हैं।

सुधा पर एकतरफा आक्षेप लगा कर प्रिंसिपल ने विदा किया। दो शब्द कहने का मौका भी उसे न मिल सका। प्रिंसिपल ऑफिस से बदहवास चेहरा लिये लौटने पर डाइनिंग हॉल में बैठे अन्य शिक्षकों की टटोलती दृष्टियां उसे चाक करके रख देंगी। सुधा इस अन्याय को यों नही पियेगी। अपने ऊपर लगाये गये आरोपो का लिखित उत्तर देगी।

स्कूल इमारत के लबे-लबे बरामदो में दोपहरी का सन्नाटा बिछा हुआ था। डाइनिंग हॉल में बच्चो का शोरगुल और प्लेटो की खनक सुनाई पड रही थी। सुधा ने अपने अपमान का बदला लेने का निश्चय किया और डाइनिंग हॉल की तरफ जाने वाली सडक पर पाव बढाये। अकस्मात एक विशाल पजे में फंसा हुआ यहा के शिक्षण कार्य का प्रमाणपत्र न जाने कहां से आकर चीखने को आतुर, सुधा के होंठो से चिपक गया।

अजीबोगरीब भूमिका अदा कर रहा था। वह भूमिका पुराने राजपूत राजाओं का उत्साह बनाए रखने वाले विरुदावली गायकों से मिलती थी। वह उस भागते हुए आदमी को मार डालने के लिए मालिक का लगातार उत्साहवर्द्धन कर रहा था। मालिक हर गाली देने के बाद और पहले उसकी तरफ देखता था। वह तीसरा आदमी उसके कान में लगातार कुछ-न-कुछ कह रहा था।

इस बार मालिक के पीछे खडे उस तीसरे आदमी ने हाके का दबाव बढाने के लिए स्वयं उन्हे ललकारा, 'आखिर कर क्या रहे हो। शिकार को मालिक के सामने क्यो नही लाते ?'

दबाव बढा ! परन्तु आश्चर्य की बात कि ज्यो-ज्यो वह दबाव बढ रहा था, मचान और शिकार के बीच का अन्तर भी बढता चला जा रहा था। वह आदमी उस घेरे से निकल जाने की जी-तोड कोशिश मे लगा था। उसके लिए यह आखिरी अवसर था। जितना वह दौड सकता था, उतना दौड़ रहा था। हाका सचालन का सारा दायित्व अब उस तीसरे आदमी ने स्वय अपने ऊपर ले लिया था। मालिक के हाथो मे सिर्फ बन्दूक बची थी।

दौडते-दौडते वह पास वाली बस्ती के बारे में सोच रहा था। उसकी आखो के सामने से वहां के एक-एक निवासी की शक्ल सटा-सट्ट गुजरती जा रही थी। वह बस्ती पठन-पाठन मे लगे विद्वानो की बस्ती थी। उन लोगो के बारे मे अधिकतर यही सोचा-समझा जाता था कि वे लोग चाहे जितने भी तटस्थ क्यो न हो, पर सच्चाई और न्याय के दमन का प्रश्न उठते ही वे सच्चाई व न्याय की तरफ हो जाते है। यह सब उसे तिनके के सहारे के समान लग रहा था। हालांकि हाका शुरू होने से पहले वह उसी बस्ती के बहुत-से लोगों के द्वार खटखटा आया था, उन्होने उसका प्रलाप धैर्य से सुना था और अभयदान की मुद्रा में मुस्कराते हुए हाथ उठा कर, द्वार बन्द कर लिए थे। लेकिन एक द्वार उसने तब बिसार दिया था। उसके बारे में उसे अब सब

जिंदा या मुर्दा, जिस भी हालत मे मिले उसे हमारे सामने हाजिर करो। उनकी इस बात से यह स्पष्ट होता जा रहा था, अब वे उसकी मौत से ही सम्बन्धित रह गये है। तीसरा आदमी जब चिल्लाता था तो मचान से ऊपर निकला बांस कस कर पकड लेता था।

□

जब वह बस्ती के नजदीक पहुचा, तब साझ पूरी तरह बैठ चुकी थी। कार्तिक पूर्णिमा थी। उन महानुभाव के द्वार पर, जो उसे अपने लिए शरण-आवरण लग रहे थे, अल्पनाएं बनी थी और दीपक जल रहे थे। वास्तव मे गृहिणी दिन भर व्रत किये थी। व्रत रखना उनके जीवन का अग बन चुका था। वह आस्थावान और एक धर्मभीरू महिला थी। दया-धर्म उनकी दो मुख्य स्तम्भो की भाति सम्भाले हुए थे। वह शान्तचित्त रहती थी। दूसरे का कष्ट देख कर तत्काल द्रवित हो उठती थी। रक्त की तो एक भी बूद देख सकना उनके लिए साक्षात काल के दर्शन की तरह था।

उसने रेंगने वाली स्थिति मे बने रह कर ही, चोट खाए अजदहा की भाति थोडा-सा उचक कर द्वार खटखटाया। गृहिणी ने ही द्वार खोला। उस समय वह किसी ऐसे अतिथि की प्रतीक्षा मे थी, जिसे भोजन करा कर स्वय फलाहार ग्रहण कर सकें। उसका द्वार खोलना उस आदमी को शकुन की भाति लगा। उसे लगा उनके दर्शनमात्र ने ही उसे सुरक्षा प्रदान कर दी। वह उसे अन्दर ले गई। हाथ-पाव धुलाए। बैठने के लिए आसन दिया, तथा उसकी क्लान्त अवस्था देख कर सहानुभूति और सम्वेदना प्रकट की। फिर अपने पति को सूचित करने तथा अथिति-सत्कार का समुचित प्रबन्ध करने के लिए चली गई।

पति शांत स्वभाव का था---मनीषी लगने वाले व्यक्तित्व का स्वामी। जब उन्होंने प्रवेश किया, तब वह श्रद्धापूर्वक खड़ा

हो गया। उनके चेहरे से लगा, अपने घर में इस समय उसकी उपस्थिति उन्हें रुचिकर नहीं लगी। आसन ग्रहण करने के पश्चात उन्होंने उसके क्लान्त, भयग्रस्त और असुरक्षा-भाव से सने चेहरे की ओर देखा और चुप्पी साध ली। वह अपनी फूली सास को सन्तुलित करने का प्रयास करता रहा। सांस के थोड़ा-बहुत सन्तुलित हो जाने पर उसने अपने माथे पर चुचुआते हुए पसीने को पोंछ डाला। जब उसने सुरक्षा पाने के लिए याचक-दृष्टि से उनकी ओर देखा तब वह आत्मस्थ हो चुके थे। उनकी आखें बद थीं। गृह-स्वामिनी अतिथि-सत्कार के प्रबन्ध में दत्तचित्त थी।

उसके अंदर हाके का कोलाहल अधिक तीव्रता के साथ उभर रहा था—उसे वह अन्दर-ही-अन्दर घोंटता जा रहा था। लेकिन बाहर उस अटूट चुप्पी ने उसके अन्दर घुसते उस कोलाहल को एकाएक उघाड दिया। उसके अन्तर में एक भवर-सा चक्कर काटने लगा। वह व्याकुल और भयभीत-सा हो कर एकाएक बोला, 'वे लोग मेरा वध करने के लिए हांका कर रहे है।'

गृह स्वामी, कुछ देर तक मौन बने रहे। जब बोलना प्रारभ किया, तब कुछ इस प्रकार बोले, 'मनुष्य का वध अपने कर्मों से होता है। वैसे वधिक के ऊपर उससे भी बड़ी शक्ति होती है, जो वधिक का भी रूप धारण करती है और रक्षक का भी!'

इन शब्दों ने उसके अन्दर एक प्रकार की आशा की किरण टिमटिमा दी। वह बोला, 'श्रीमान, उनके हाथों में बरछे और भाले है। वे हाथियों पर सवार होकर हाका कर रहे है। हमारे स्वामी मचान पर बैठे निशाना लगा रहे हैं। उनका नया मन्त्री उनके पीछे खड़ा मेरी चुगली खा रहा है। उसने बिना हथियार उठाये मेरा वध करने का प्रण किया है।'

वे हसे और बोले, 'कृष्ण ही कृष्ण की भूमिका निबाह सकता है!' इस वाक्य ने उस आदमी के आत्मविश्वास को उलट-पुलट कर दिया।

'लेकिन वे कृष्ण नहीं, काल है। वे मुझसे मेरी जिह्वा और मस्तक-मणि मागते है। मैं आपके पास मार्गदर्शन के लिए उपस्थित हुआ हू !'

'धैर्य' और 'उस' पर विश्वास, बस। फिर रुक कर बोले, 'यदि प्राण बचते हो तो उस नश्वर शरीर के अग का अश दे देना ही नीति है। हम जाति से चाहे जो भी हो परन्तु कर्म से ब्राह्मण है। महाभारत में द्रोपदी युधिष्ठिर की अव्यावहारिकता से दुखी होकर ही उनके लिए *ब्राह्मण शब्द का प्रयोग किया* करती थी।' वे खुल कर हसे फिर बोले, 'हम प्रार्थना ही कर सकते हैं, सो कर देंगे।'

'तब तक वे लोग घेर लेंगे। देखिए, आवाजें निरन्तर बढती जा रही हैं।'

उनकी पत्नी के चिल्लाने का भयभीत स्वर एकाएक सुनाई पड़ा 'हाय चूहा-अ-ा-।'

गृह स्वामी एकाएक चौक कर बोले, 'चूहा···।'

फिर तेजी से उठ पडे, 'हा यह चूहा ही तो है।'

कूलर के लिए बने उस मोघे से एक चूहा अन्दर कूद आया था। कमरे में उसकी स्थिति, सब कुछ अस्त-व्यस्त किए दे रही थी। पत्नी नाराज हो रही थी, 'आपसे कई बार कहा इस मोघे को बन्द करादो। ये चूहे-बिल्ली आ-आ कर मेरी गृहस्थी को तहस-नहस कर डालेंगे।' कहते-कहते वह रुआसी हो गई।

पति ने पुत्र को पुकारा, 'राम, तुरत !'

पत्नी ने नौकरानी को पुकारा, 'राधा, तुरत !'

सब लोग तुरत आ जुटे। पुत्र के हाथ में डण्डा ! नौकरानी के हाथों में झाड़ू ! पति के हाथ में पटरा ! चूहे के मार्ग अवरुद्ध करने के लिए पत्नी एक ओर, पति दूसरी ओर ! बाकी दोनो बीच में !

पत्नी ने धीमे स्वर में कहा, 'आज पूर्णिमा है। चूहे को

मारना अधर्म होगा।'

पति भी धीरे-से बोले, 'मारना तो होगा ही। वैसे हम कौन होते हैं मारने वाले ! जो इसकी मृत्यु चाहता है, उसी ने इसे इस घर में आने की प्रेरणा दी है। वैसे भी ये जीवन-मुक्त प्राणी हैं। जिन्हें जीवन से लगाव नहीं, उन्हें मारना पाप का भागी नहीं बनता !'

चूहा कहीं छिपा था।

वह आदमी भी चुपचाप कोने में दबा खड़ा था।

उसके अन्दर और बाहर का शोर कई गुना हो गया था। पत्नी उन सबको कार्यरत देख थोड़ा आश्वस्त होती जा रही थी। वह अतिथि-सत्कार के लिए, जलपान-सामग्री उठाने हेतु उस पर झुकी थी।

चूहे ने खतरे को समझ लिया था—वह निरन्तर दौड़ रहा था। वे लोग डण्डे और झाड़ू जमीन पर बार-बार पटक रहे थे। जहां पर भी चूहा जा कर अपने को छिपाता था, वहीं पर डण्ड और झाड़ू की आवाज उसका पीछा करने पहुंच जाती थी। वह फिर दौड़ने लगता था।

एक-दो बार तो वह सुरक्षित स्थान की खोज में चूहेदान तक पर जा चढ़ा, लेकिन उसकी अप्रत्याशित सूझ उसे लौटा ले गई। इस बात ने उन सबको और अधिक रुष्ट और उत्तेजित कर दिया। वे चूहे से इस प्रकार की आशा नहीं करते थे कि वह चूहेदान तक जा कर बिना उसके अन्दर प्रविष्ट हुए लौट जाएगा। चूहा है तो उसे बिना किसी हील-हुज्जत के चूहेदान में जाना ही चाहिए।

जैसे ही चूहा चूहेदान के पास पहुंचता था, उसका कलेजा मुंह को आ जाता था। वह भी अन्दर-ही-अन्दर तेजी से दौड़ना आरम्भ कर देता था।

चूहा अपनी फुर्ती और अक्ल के अनुसार बच निकलने के

लिए पूरा संघर्ष कर रहा था। सब द्वार पूरी तरह बन्द थे। पत्नी अतिथि-सत्कार की सामग्री हाथ में लिए चूहे की गतिविधियों से उन लोगों को निरन्तर अवगत कर रही थी।

शेष तीनों पूरा मोर्चा बन्दी किए थे।

एकाएक बेटे ने चूहे पर पहला वार किया। चूहा साफ बच निकला। उस अन्दर-ही-अन्दर दौडते आदमी के होंठ रबर की तरह एकाएक फैले और यथावत हो गए। लडके की मा तत्काल बोली, 'मारना ही है तो राधा मारेगी। पूर्णिमा का दिन है।'

दूसरा वार नौकरानी ने किया। चूहा शायद चोट खा गया। उस हांके के कारण क्लान्त आदमी के मुह से एकाएक हल्की-सी-सी निकल गई। उसके भाग कर पुनः छिप जाने से उसे थोड़ा-सा ठीक अनुभव हुआ, पर गृह-स्वामी ने उसे छिपे नही रहने दिया। उसके निकलते ही नौकरानी ने दूसरा वार किया। इस वार का वार काफी जोरदार था। लेकिन नौकरानी अपने ही अतिरिक्त जोर के कारण फिसल गई। उस आदमी को लगा नौकरानी के गिरते ही उसके अपने पैरों मे स्फूर्ति आ गई हो। चूहा हालाकि काफी चोट खा गया था, पर जान बचा कर भाग निकला था।

इस बार गृह-स्वामी ने उस आदमी की ओर भी नजर उठा कर देखा। उनके देखने से लगा वे उतने शात नही, जितने साधारणतया दीखते थे। उन्होंने अत्यधिक उत्तेजना के साथ कहा, 'सब कुछ हो सकता है, पर चूहों का उत्पात सहन नहीं हो सकता। चूहा ऐसी कौम है जो जड़ को खोखला करती है। जहा मिले, वहीं मार डालना धर्म है।' इतना कह कर वे फिर मूषक-वध के अनुष्ठान में लग गए।

उसकी समझ में उनकी नाराजगी का कारण नही आ रहा था। न वह यह समझ पाया था कि क्या उसे उनकी बात का

जवाब देना है ? वह कहना चाहता था कि श्रीमन, उसका उत्पात करने का कोई इरादा नहीं था। वह तो रोटी और सुरक्षा के लालच में घुस आया था।

वह पजों के बल खड़ा होकर चूहे का हाल लेने लगा। वह इस बात को जानने के प्रति उतावला था कि वह बचेगा या मार डाला जाएगा ! मार डाला जाएगा···तो क्या वाकई मार डाला जाएगा ?

चूहा अधिक सुरक्षित स्थान की खोज में फिर निकल कर भागा। अधिक सुरक्षा की खोज उसके लिए काल बन गई। जैसे ही निकला, वह नौकरानी जो पहली बार अपने को नहीं सम्भाल पाई थी और मालिक के सामने दो बार असफल- हो जाने की कुण्ठा से ग्रस्त थी उसे ले बैठी।

वे सब लोग इस बार एक साथ चिल्लाए 'मारा गया···मारा गया !'

पिता अपने बेटे की पीठ ठोकने लगे कि उसने अच्छी मोर्चे-बन्दी की। वरना वह चूहा राधा के हाथों तो आता ही नहीं। राधा ने भी 'हा-में-हा' मिलाई, 'हा, भैयाजी ने उसे भागने ही नहीं दिया।'

और फिस्स-से हस दी।

पत्नी अतिथि-सत्कार के कार्य में पुन: सलग्न हो गई। उन्हे अतिथि-पूजा करके अपना दिन भर का व्रत खोलना था। बेटा मृतक को डण्डे पर टाग कर ले जाने की लगन में लगा था। उसकी आकाक्षा थी कि वह मृतक को आधा डण्डे के इधर लटका ले और आधा उधर, जिससे सब चूहे देख लें कि उत्पात का क्या फल होता है। नौकरानी राधा उस स्थान को धो-धा कर पवित्र कर देना चाहती थी, जहां पर उस चूहे का वध हुआ था।

पत्नी ने सामग्री मेज पर लगाते हुए प्रस्ताव रखा, 'मोघा बन्द करा दो और कूलर ऊपर लगवा दो। थोड़ी गर्मी ही सहन

कर लेंगे। इन चूहे-बिल्लियों से तो जान बचेगी।'

'ये तो दरवाजे से भी आते है !'

पत्नी ने कोई जवाब नही दिया। पति का भाग पति के हाथ में देकर अतिथि का भाग उसकी ओर सरका दिया।

अतिथि पसरा हुआ पड़ा था। उसकी खुली आखें उसी स्थान पर थी, जहा चूहा वीरगति को प्राप्त हुआ था।

दामोदर सरन

O

देशभक्त

"थिम्मी ! थिम्मी ! थिम्मी ! बी ऑन द राइट साइड···यस, यस, यस।"

थिम्मी समझ गया है। वह साधारण कुत्ता नहीं है। साधारण हो भी नही सकता, क्योंकि वह एस० के० कार्नवालिस आई० सी० एस० का कुत्ता है। इसे बड़नगर के एक्स प्रिंस जनाब शिवपालसिंह बम्बई से लाये थे। कोई क्रॉस-ब्रीड था···मां इंग्लिश थी और बाप ऑस्ट्रेलियन।

प्रिंस ने बताया था, "सर, मैं आपके लिए एक ऐसी ब्रीड चाहता था, जिसमें इंग्लैंड की नस्ल की लोमड़ीनुमा चालाकी और ऑस्ट्रेलिया के कंगारू जानवर की मोबिलिटी हो। इसलिए हमने बम्बई के कुत्ता-फार्म में दोनो नस्लों को कहीं किसी से मिक्स नही होने दिया और दोनों के लिए वही टैंपरेचर मुहैया करा दिया, जो उन्हें अपने-अपने देशों से मिल जाता। उनका मिक्स भी किसी खास मौसम में कराया गया, ताकि देसी टैंपरेचर अगली नस्ल पर असर न डाल सके। उसी एक्सपेरीमेंट का नतीजा यह है, थिम्मी।"

प्रिंस उस समय बंगले पर बैठा था। बंगले के अहाते में उसकी फीएट खड़ी थी। वह उसके शानदार ड्राइंगरूम में बैठा था।

"सर, आपका ड्राइंगरूम बहुत ही खूबसूरत है। मैं फ्रांस, इंग्लैंड, जर्मनी और अमरीका···करीब-करीब सभी मुल्कों में गया हूं, लेकिन इतना अच्छा ड्राइंगरूम···वल्लाह, किसी का नहीं है। यह ओरिएंटल सजावट बहुत उम्दा लगती है सर। हिरण के सींग, भैंसे-अरणे की खाल, सेंडेलियर्स। ऐसी तबीयत करती है सर···कि मैं दिन-रात इस ड्राइंगरूम में ही बैठा रहूं। फर्नीशिंग भी बिल्कुल ए-वन है—न्यूयॉर्क का बड़ा से बड़ा फर्नीशर या डिजाइनर इतनी अच्छी ले-आउटिंग नहीं कर सकता।"

"थैंक यू प्रिंस। थैंक यू···एनीथिंग दैट आय केन डू फार यू।" उनके होंठों पर हल्की-सी उत्तेजना थी, शायद कोई थ्रिल था।

"नथिंग सर। बस आपकी नजरे-इनायत चाहिए।"

और प्रिंस ने वह कुत्ता काफी नीचे झुककर उन्हें पेश किया था। वह कुत्ता देने के लिए अपने सोफे से बड़े आलीशान ढंग से उठकर खड़ा हो गया था और वो भी कुत्ता लेने के लिए अपनी कुर्सी से उसी शान के साथ खड़े हो गये थे। निजाम और भारत सरकार के बीच हैदराबाद पुलिस ऐक्शन के बाद रियासत के विलीनीकरण के डॉक्युमेंटस के आदान-प्रदान जैसा महत्त्वपूर्ण सीन था।

उसके बाद उन दोनों ने चाय सिप की थी। शायद वह नवंबर का महीना था···शाम के छ बजे का वक्त था। सर्द हवाएं थीं। जाड़े का दिन होने के कारण अंधेरे के साये गहराते जा रहे थे। उस वक्त ये चौहत्तर बंगले नये-नये ही बने थे। पहले साउथ टी० टी० नगर बना था। लोगों की जबान पर तात्याटोपे नहीं चढ़ सका तो नहीं ही चढ़ा। उसके साथ यह चोर इमली भी

आबाद हो गयी'''बड़ा सन्नाटा-सा लगता था'''पुराने भोपाल का यहां कोई नामोनिशान नहीं था'''अफसरान कमलापार्क और हमीदिया-अस्पताल होकर लालघाटी के पास वाले सेक्रेटेरिएट पहुंचते थे, कुछ अफसरान वहां आसपास बने पुराने बंगलों में भी रहते थे।

□

वक्त गुजरते देर नहीं लगती। कितनी शामें आयीं और गुजर गयीं। गर्मियों की, बारिश की और शील-पाले की। उस वक्त हेयरडाई की जरूरत नहीं थी। बढ़िया, सजा-सजाया कमरा, बेहतरीन सोफा और टेबुल के स्वामी थे। सामने स्टूल पर चपरासी बैठा रहता था। टेलीफोन की घंटियां घनन-घनन बज उठती थीं। '''हैलो हैलो हैलो'''यस'''यस'''कार्नवालिस स्पीकिंग। हम बोल रहे हैं'''कार्नवालिस।

बड़ा रोब-दाब था। राइट ऑन टेबल मिनिस्टर साहब भी उनकी नोटिंग को काट नहीं सकते थे। नीचे से ऊपर तक सबको मालूम था—यहां तक कि ड्राइवर और चपरासियों को भी अच्छी तरह मालूम था—उनके साहब को कोई मुगालता नहीं दे सकता। गलत नोटिंग पर कभी भी कार्नवालिस साहब से 'आय एग्री' की साइन नहीं लिखाई जा सकती। उस वक्त बाबुओं की इतनी बड़ी फौज भी नहीं थी। वह क्या जमाना था'''गर्मियां शिमला में बीतती थीं, इतवार को पोलो होता था। नाश्ते की टेबल पर वर्दीधारी चपरासी और अंग्रेज बड़े साहब के आलीशान फैले हुए बंगले में 'जिन' और 'बिटर्स'। सब कुछ कितना अद्भुत था! उफ! दोपहर में नींबू-सोड़ा लेते थे'''बरामदे से दोपहर को टेनिस ताका करते थे। राजा-महाराजा भी क्या थे उनके सामने। हफ्ते के आखिरी दिन वे लोग शिकार या पोलो पर आने का इनविटेशन दे जाते थे। —मसूरी की ब्लडी 'नेशनल एकेडमी ऑव एडमिनिस्ट्रेशन' में क्या रखा है'''कार्नवालिस इंग्लैंड

हैं।—टॉप-हैड कब लगाना है, सोलो-हैट कब लगाना है, कब कौन-सा ड्रेस पहनना है—टेबल और ड्राइंगरूम के एटीकेट्स क्या है, इन सबकी तमीज उन्हें है। उनकी वाइफ 'ब्रिटिश इंडस्ट्रीयल रेवोल्यूशन' और 'गोल्डस्मिथ' की पोइट्री पर चर्चा करती थी। बढ़िया टेनिस खेलती थी। क्लबों की प्रेसीडेंट थी। आज के कलक्टर की लाइफ भी क्या है! बरामदे की खुशनुमा शामें नहीं हैं, हाथों में सनडाउनर और दिमाग में शानदार जिंदगी बिताने का खुशनुमा अहसास नहीं है! क्या है अब उनकी जिंदगी में··· खानसामा, बेयरा, आया, मेहतर, धोबी, माली, चौकीदार, पंखामैन, साईस, हिल-स्टेशन—कुछ भी तो नहीं है। हम पिरामिड थे, ये लोग मामूली ईंटें भर हैं।

थिम्मी! थिम्मी! थिम्मी! बी ऑन द राइट साइड! तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता···यस, यस, यस।

और थिम्मी जमीन सूंघना छोड़कर उनके पीछे आ गया। सामने पहाड़ी दिखाई दे रही है। न्यू-मार्केट जाने वाली सड़क को दो हिस्सों में बाटा गया है। बीचमें हरियाली के द्वीप बना दिये गये हैं···खूबसूरत ट्री-गार्डेंस में बोगनवेलिया लहलहा रहा है। फ्लडलाइट्स हैं, ऊपर पहाड़ी के भीतर पेड़ों का झुरमुट है। चिनार, नीलगिरी और गुलमोहर···गुलमोहर, चिनार और नीलगिरी। पट्ठों ने भोपाल को शिमला बना दिया है। पहाड़ी पर वल्लभ भवन है, जिसमें नौकरी के आखिरी दो साल गुजरे हैं। तब भी कोई नहीं जानता था कि नौकरी के आखिरी दो साल बचे हैं। हेयर-डाई करके पहुंचते थे।

भोपाल को शिमला किसने बनाया, किसने बनाया वल्लभ भवन! इन नये आई० ए० एस अफसरों के बस की बात थोड़े है। ओल्ड सेक्रेटेरिएट में बहुत दमघोटू एटमॉसफियर था। उन दिनों सभी अफसरों में बड़ा भाई-चारा था—क्लबों और डिनर-पार्टियों में अक्सर मुलाकात हो जाया करती थी। सेक्रेटेरिएट

की भीड़भाड़ सबको शूल की तरह गड़ रही थी। करीब-करीब सभी अफसर विदेशों से लौट चुके थे। उन्होंने पहल की और कार्नवालिस की पहल कोई मामूली आदमी की पहल नहीं मानी जाती थी। सभी लोगों की यह पक्की राय बन गयी कि ओल्ड सेक्रेटेरिएट में काम का एटमॉसफियर कभी नहीं बन सकता··· आबादी के साथ-साथ अमला बढ़ेगा—रेजीडेंस और दफ्तर का फासला ज्यादा होने से एफीशियसी और जिंदगी दोनों कम होती हैं—फिर जहा नया भोपाल बसेगा-बढ़ेगा, वहीं तो नया सेक्रेटेरिएट होना चाहिए। आपस की कानाफूसी को एक शक्ल मिल गयी—उस जमाने में आज के पिद्दीनुमा अफसर नहीं थे। मिनिस्टरों की इतनी बड़ी फौज भी नहीं थी···बस फिर क्या था! इमेजिनेटिव अफसर थे···फाइलें चलीं, नोटिंग पर नोटिंग और चिड़िया पर चिड़िया बनती चली गयी—ऑनरेबुल मिनिस्टर साहब भी कनविंस हो गये—दरअसल उन्हें भोपाल की नयी पीढ़ी की, बढ़ती हुई आबादी की, खुले-खुले एटमॉसफियर की बड़ी फिक्र थी। और सचमुच अलाउद्दीन का चिराग घिसने पर जैसे कोई जिन्न खड़ा होकर पूछने लगे, 'हुकुम मेरे आका··· और आका का हुकुम हुआ, 'जाओ, वहां उस पहाड़ी पर ऐसा महल खड़ा कर दो, जो कबूतरखानों की तरह दिखे और जिसमें ऐशो-आराम का हर सामान मौजूद हो।'

□

और यह वल्लभ भवन खड़ा हो गया···अमला बढ़ने पर बारह सौ पचास क्वार्टर्स बन गये। अब अफसरों के बंगले वीरान नहीं थे, चोरी-उठाईगिरी या हत्या की संभावनाएं भी घट गयी थीं। ·· वैसे भी उस जमाने में इतने क्राइम्स कहां होते थे···

इतने में ही उन्होंने देखा कि सामने के बंगले से एक अलसेशियन, एक पोमेरिनियन और एक मिनी-ब्रीड का ग्रेगाउंड निकले। अलसेशियन पहले तो पोमेरिनियन के साथ खेलने लगा···

वह छोटे पप उसके पेट के नीचे घुसकर उसे अपनी लात भी जमा रहा था, लेकिन थिम्मी को देखकर उसने पोमेरिनियन के साथ खेलना बंद कर दिया और गुर्राकर झपटा।

"ए···ए ईडिएट···नो···नो···" उन्होंने अलसेशियन को फटकारा और थिम्मी से कहा, "थिम्मी, थिम्मी, थिम्मी, वी ऑन द राइट साइड।"

वह अलसेशियन भौंकता ही रहा। यह तो अच्छा ही हुआ कि उस ऊंघते बगले से स्वेटर बुनती जीन्स पहने एक अप-टू-डेट लडकी आयी और उसने आवाज दी, "ए लॉयन, कम हीयर। किसी भी स्ट्रीट-डॉग पर नही भौंका जाता।"

वह लॉयन को घर ले गयी। एक ट्रेजडी बचा ली गयी। लेकिन उन्हे उस लडकी की टोन अच्छी नही लगी। मेरा कुत्ता स्ट्रीट डॉग और उसका कुत्ता खानदानी! हूं! आजकल की लडकियों को जरा भी तमीज नही है। उन्होंने बगले के सामने जाकर बोर्ड पढा—विजयनाथ, आई० ए० एस० ···ईडियट कही का। साले जाने कैसे-कैसे लोग आजकल 'इ डियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस में आ जाते हैं। उस लडकी के कल्चर को देखकर ही लगता है कि साला ऊंचे खानदान का नही है। पेडिग्री इज इ पॉर्टेंट !··· कुत्ते की नस्ल होती है, घोडे की नस्ल होती है, आदमी की नस्ल होती है।

४७-एवेन्यू पर बगले ही बगले थे। ऊंचे नीलगिरी और सरो के पेड थे। गमलों में बोनसाई के पेड़ थे। खिड़कियों पर खूबसूरत पर्दे टंगे थे। सर्वेंट्स क्वार्टरों में हलचल थी···शायद वहा के मर्द और औरत उठ गये है। मेम साहब ने रात को ही दूध की बोतलें इन्हे दे दी होगी, ताकि सुबह नींद में खलल न हो। लॉन के बीचों-बीच कही-कही फिसलन-पट्टी और कही-कही खूबसूरत पोल-लैंप खड़े हैं। गैरेज में गाड़िया दिखाई दे रही है। चमकदार नेम-प्लेट है, सब कुछ चमकदार है। लेकिन कल्चर

नही है। एवेन्यू के सामने भी ट्री-गार्डेस मे ऊचे पेड़ खडे है, के एक खंभे पर ५७-एवेन्यू लिखा हुआ है, एक बहुत बड़ी सामट की लाल-हरी-नीली धारियोंवाली गोल कोठी है···डस्टविन, उस डस्टविन मे जाने कौन-कौन-सा कचरा इकट्ठा है, गोबर भी, जिसके कारण वहा मच्छर भिनभिना रहे है, इल्लिया रेंग रही है।

माई गॉड ! हमारे जमाने मे यह सोचा भी नही जा सकता था कि आला दर्जे के अफसरो के यहा गायें या भैंसें भी पाली जाती हैं। इम्पासिवल कल्चर नही है, लो-ब्रीड है।

ये सब गावदियो के काम है। वैतूल मे कलक्टर थे तो जीप मे इंस्पेक्शन पर निकले। देखते क्या है कि रात के दस बजे बहुत से गावदी वैलगाडियो के भीतर घास-फूस पर बड़े आराम से सो रहे है और बैल चले जा रहे हैं। गाड़ियों, ट्रको और कार-वालो के हार्न का उन पर कोई असर नही था। उन्हें गावदीपन बिलकुल पसन्द नही था। "नानसेंस ! नानसेंस !" कहते हुए उन्होंने गाडी मे ब्रेक लगाया, सड़क के एक कोने मे गाड़ी खड़ी की और अपने ड्राइवर के साथ मिलकर सभी बैलगाड़ियों की दिशा बदल दी। साले सुबह पता नही कौन से शहर पहुंच गये होंगे !···इट वॉज ए लेसन टू देम···यस। ए लेसन।

गावदियो के गाय-बैल अब इन बगलो मे आ गये। ऑल नकली। क्रॉसब्रीड।

सुनते हैं आजकल हिंदुस्तान मे सारा मामला ही क्रास-ब्रीड हो गया है। खेतो और सब्जियो के बीजो, साड़ों-गायों और पेड़-पौधों···सबको क्रॉस कर दिया गया है। सालो ने छतों पर गोभी और मिर्चें लगा रखी है, जरमियां पाल रखी है, आमो और झर-बेरी को भी क्रॉस करा रखा है, डेशाउड के पप्स रखे हैं, ऑल नकली। यदि इन बंगलों मे चोर घुस जायें तो ये डेशाउंड क्या करेंगे। इनके मुह में कपड़ा ठूसकर चोर इन्हे अपनी गोद में उठा

लेंगे। इनके हाथ-पैर बाध देंगे, सारा सामान उन्ही की आखो के सामने ले जायेंगे और पप्स इनके ऊपर फेंककर चल देंगे। सालो में दम ही कितना है! सब्जीवालो के यहा और मकेनिको के यहा घटों खडे रहते है ···मकेनिक की आरजू-मिन्नत करते रहते है। जाने साला कब उनकी गाड़ी की टकी मे कोई बोनसाई पत्थर घुसेड दे। कोई डिसिप्लिन नही। बस, बाबू और छोटे अफसरो के सामने बब्बर शेर बन जाओ और ऊपर बकरी बन जाओ। कोई प्रिसीपल नही है सालो का! हिम्मत के धनी भी नही हैं। तभी न सब जगह रेप, लूटमार, ट्रेन-डकैती और जाने क्या-क्या हो रहा है! 'लॉ एड आर्डर' का क्या तमाशा बन गया है आजकल!

उनके हाथ की जजीर कुछ कस गयी थी। पीछे मुडकर देखा, थिम्मी कचरे में कुछ सूघ रहा था।

"थिम्मी! थिम्मी! थिम्मी! नो, नो, नो! बी ऑन द राइट साइड।" उन्होने जंजीर खीचते हुए कहा, "वह रविश, इन बगलों के डेशाउड्स के लिए है। यू अडरस्टैंड।"

५७-एवेन्यू के उस पारवाली सडक को मेहतर अपने बड़े बांसवाले झाड़ू से साफ कर रहा था। साला बुश्शर्ट और गले में रूमाल डाले है। नेकटाई ही पहनना बाकी रह गया है। साला कैसा जमाना आ गया! सुबह सात बजे साफ कर रहा है—साफ हवा में पोल्युशन फैला रहा है। आज ही 'लोकल सेल्फ गवर्नमेंट के सेक्रेटरी को फोन करूंगा···यह सब क्या हो रहा है! इट्स ऑल हमवर्ग! और उन्होने नाक पर एक रूमाल रख दिया और थिम्मी को खीचते हुए दूर तक ले गये। यदि जर्म्स उसके पेट मे चले गये तो, यहां तो अच्छे वेटरनरी सर्जन तक नही मिलते।

☐

क्या जमाना था! गोल्डन डेज, ऑलवेज ऑन द राइट

साइड। हमेशा राइट ओपिनियन देते थे। कोई नाराज नही होता था। उन दिनो लोग उन चीजो को स्पोटिव स्पिरिट मे लेना जानते थे···स्ट्रेट-फारवर्ड आदमी पसद करते थे। उस दिन टोयो का एक विज्ञापन पढा था— वी वाट ए यग मैन हू केन से नो टू अस·· कितना अच्छा लगा था·· और यहा—वी वाट ए स्लेव हू केन आलवेज से यस टू अस। यानी गलत वात पर भी 'यस' कहो, वर्ना हम नाराज हो जायेंगे।

एकाएक उनकी नजर ऊपर वडे पोल पर लगे बोर्ड पर गयी। क्रमाक वी १०···यानी करीव चार फर्लांग जमीन पर फैले ये टेढे-मेढे वंगलो·· वीच-वीच मे लेंस, वच्चों के पार्क्स और पुलिया। पी० डब्ल्यू० डी० की हिंदी वहुत वदवू देती है·· साले विल्कुल ही अनइमेजिनेटिव हैं। सीधे-सीधे यदि नंवर लिख देते तो उनके खानदान का क्या विगड़ जाता!·· खैर इन ईट-गारो से खेलने वालो को छोड दीजिए। इन वगलो मे रहने वाले ये पेपर-टायगर तो कह सकते है कि भाई यहा तो कम से कम वदवू न फैलाओ!

उस जमाने में अफसरो की इतनी ज्यादा भीड़ नही थी। 'वावू, वावू' की आवाज लगायी कि फाइल हाजिर हो जाती। आजकल तो वावू भी वेचारे थक गये हैं। उनसे कहिए कि खडे हो आइये तो वे सीधे मडे को हो आते है···अव साहव आपको वैठना है खडे को, तो वैठिए, उन्हे कुछ नही करना।

अव फाइल एक वावू से दूसरे वावू तक और एक छोटे अफसर से दूसरे अफसर तक आने मे ही महीनों लग जाते हैं। किसी को गरज है तो निकलवा ले फाइल, वर्ना ठेंगे से।

उस वक्त ये हेल्थ-सेक्रेटरी थे। इन्दौर के एक वड़े अस्पताल के सिविल सर्जन का कमाल था। कलकत्ता की एक वडी फर्म से पाच लाख की दवा का आना दिखाया गया। मामला वड़ा मजेदार था। पाच लाख रुपयों की दवाइया नही आयी। [illegible]

आ गये, पेमेंट हो गया, रजिस्टर पर दवाइयां चढ़ गयीं। दवा जिन ट्रकों पर ढोयी गयी थीं, उनका बिल भी चुकता कर दिया गया, यानी सरकार को और मरीजों को बाकायदा चूना लगा दिया गया।

केस उनके पास आया, उन्होंने मामले की जांच-पड़ताल करवायी। प्राइमाफेसी केस बन गया। उन्होंने फाइल पर सिविल-सर्जन को सस्पेंड करने का आर्डर दिया…वह सिविल-सर्जन भी बड़ा धाकड़ आदमी था। उसे मालूम हो गया। उसने ऑन टेबल मिनिस्टर तक पव्वा लगाया…लेकिन वे टस से मस नहीं हुए।

□

उन्हें अच्छी तरह याद है। पूरी घटना याद है। जैसे वह अभी घटी हो। वक्त जैसे ठहर गया है।

चपरासी ने उनके कमरे में आकर कहा, "सर, आपको मंत्री जी याद कर रहे हैं।"

वे मंत्री जी के पास गये। फाइल उनके सामने थी।

"मिस्टर कार्नवालिस, आपने इस केस को अच्छी तरह स्टडी कर ली?"

"यस सर।"

"आपने सस्पेंड करने की सिफ़ारिश की है…यदि सी० एस० कोर्ट में गये और चार-पांच साल में मामला जीत गये, तो गवर्नमेंट को पूरे एक-दो लाख के तनखाह के एरीयर्स उन्हें देने पड़ेंगे। आपने शायद इस पर नहीं सोचा।"

"मैं जानता हूं, लेकिन यह एक इतना बड़ा क्राइम है, जिसके लिए सी० एस० को सीधे-सीधे डिसमिस करने की जरूरत है। एक बार नहीं, बल्कि दो बार! लेकिन रूल्स इसकी इजाजत नहीं देते। इसलिए मैंने सस्पेंशन के लिए लिखा है।"

"क्या आप जानते हैं, इसमें डायरेक्टर्स ऑव हेल्थ सर्विसेज

भी शामिल है।"

"सर, किसी बाजारू अफवाह को लेकर डायरेक्टर पर कोई कार्रवाई नहीं हो सकती, लेकिन यदि कहीं उनके खिलाफ ठोस सबूत मिल जाये तो मैं उन्हें भी सस्पेंड कर दूंगा।"

"आप क्या सस्पेंड करेंगे ! मैं करूंगा !"

"ऑफकोर्स। आपके आर्डर्स से आपके कॉनकरंस जरूरी होगी।"

"सोच लीजिए।"

"सोच लिया है सर।"

"ठीक है, आप जाइये।"

और उस दिन वे अपने कमरे में चले गये थे।

सस्पेंशन का आर्डर नहीं निकला था। अखबारों में हडकंप मचा हुआ था। बहुत कुछ लिखा जा रहा था। सर्जन की रिश्तेदारियां निकाली जा रही थीं…कहा जा रहा था कि वह एक पॉवरफुल आदमी है। उसके हाथ लंबे है। उन्हें नोट चेंज करने के लिए कहा गया तो उन्होंने एक ही जवाब दिया, 'आय एम नॉट गिविंग टू यू माई हेट। और उन्हें हेल्थ-सेक्रेटरी से हटाकर फूड-सेक्रेटरी बना दिया गया था। पता नहीं बाद में उस फाइल का क्या हुआ ! सिविल-सर्जन का तबादला भर हुआ। इतनी सजा काफी समझी गयी। होशियार सर्जन ने शायद यह साबित कर दिया कि हेल्थ-सेक्रेटरी से उनको किसी बात पर रंजिश हो गयी थी, इसलिए उन्होंने यह सारा प्लान तैयार किया था।'

और उन्हें इसी सिलसिले में ब्रिटिश राज के अनेक ऐसे केस याद आ गये, जिसमें अंग्रेज अफसर फंसे थे और उनके सीनियर अफसरों ने उन्हें सख्त से सख्त सजा दी थी। सीनियर अंग्रेज अफसर कहते थे, 'यदि हम किसी ज्यादती के लिए जिम्मेदार अंग्रेज अफसर को छोड़ देते है, तो लोगों का ब्रिटिश सरकार के न्याय पर भरोसा नहीं रह जायेगा और उसी दिन ब्रिटिश सरकार का

पतन शुरू हो जाएगा। शायद उन्ही दिनो की बात है। अखबार रंगे हुए थे। गोरे फौजियो ने अलस्सुबह लखनऊ में घोड़े पर हवाखोरी के लिए निकली एक रेप्युटेड घराने की महिला को रेप करने की कोशिश की। पूरी टुकड़ी का कोर्ट-मार्शल कर दिया गया और उनके तमगे छीन लिये गये·· रिश्वतखोरी के लिए भी कड़ी से कड़ी सजा दी जाती थी। यदि अंग्रेज सिविल-सर्जन दवा के मामले में अमानत में खयानत करता तो उसे हैवानियत समझ-कर कडी से कडी सजा दी जाती।

उनका ध्यान एकाएक भंग हो गया। थिम्मी जोरो से भौंक रहा था। और लोग भी अपने कुत्तो को लेकर हवाखोरी के लिए आये हुए थे।

कुछ लोग हवाखोरी से लौट रहे थे। दो आदमी आपस में बातें कर रहे थे, "साले ये हरामखोर अंग्रेजो की औलाद हमसे चाहते क्या है ?·· अभी मैंने इंडस्ट्री की फाइल पर ऐसा नोट लगा दिया है कि उसके बाप की हिम्मत नही है कि उस नोट को इधर-उधर से कही काट दे। सालो ने सभी पोस्टो पर अपना कब्जा जमा रखा है। बडी चालाक कौम है। अब भी उन्ही अंग्रेज बाल-बच्चो का राज चल रहा है। भाई, हम डिप्टी कलक्टर के पोस्ट पर ही कब तक सड़ते रहेंगे !"

"अरे भाई, वही हालत हमारी भी है। प्रमोशन का कोई चैनल है ही नही। जब आदमी मैक्सिमम पर पहुंचा और मर्जी हुई तो एक छोटा-सा टुकडा फेंक दिया, नही तो वह भी हजम!"

"हां यार, मछली भी तीन दिनो के बाद बदबू मारने लगती है। साली नाक फटने लगती है। उन लोगो का तो ठीक है जो नायब-तहसीलदारी के चैनल में आकर डिप्टी कलक्टर बने है, लेकिन जो आदमी एक बार डिप्टी कलक्टर बन जाये और फिर ताजिंदगी वही सडता रहे, यह कितनी शर्मनाक बात है·· दर-असल होना यह चाहिए कि एक पोस्ट पर आदमी पांच-छ साल

के बाद काम ही न करे। वर्ना वह एक तरह से चपरासी मेंटा-लिटी का शिकार हो जाता है। यानी न ऊपर जाना है, न नीचे आना है।"

कार्नवालिस ने उन लोगों की ओर देखा। डिप्टी कलक्टर्स थे। कुछ याद आया···कुछ नया नहीं है···कुछ वही जो जिंदगी में घट चुका है। उस जमाने में वे सिवनी में कलक्टर थे···सर-कारी अफसरों में इतनी पस्तहिम्मती नहीं थी। ऊपर से प्रोटेक्शन था। काटा चुभोने वाले नेताओं का आलजाल भी नहीं था। उन दिनों डिप्टी कलक्टरों को एक्सट्रा असिस्टेंट कमिश्नर या ई० ए० सी० कहा जाता था। मैंने मिश्रा, ई० ए० सी० का इन्स्पेक्शन किया। फाइलें नख से लेकर शिख तक दुरुस्त थीं। स्मार्ट ई० ए० सी० था। मैं कॉरीडोर से गाड़ी की ओर बढ़ने लगा तो मिश्रा भी मुझे छोड़ने आया।

मैंने उससे पूछा, "मिस्टर मिश्रा ?"

"यस सर।"

"आपके पास पी०यू०डी० कितने है, मुझे बताया ही नहीं।"

"मैं समझा नहीं सर।"

"अरे, कैसे ई० ए० सी० हो···पी० यू० डी० नहीं जानते। पेपर अंडर डिस्पोजल।"

"सर, आपने एच० डी० एम० के बारे में कुछ नहीं पूछा?"

मैं समझ गया। मिश्रा ने मुझे नीचे फेंक दिया है। वह आज-कल के लौंडों की तरह पेपर टाइगर नहीं था···मुझे उसका रौबीला तौर-तरीका पसंद आया। मुझे ऐसे ही शेरदिल अफसर पसंद थे। आजकल खानदानी लोग डिप्टी कलक्टरी में नहीं आते। जब खानदानी गट्स नहीं हैं, तो सिवाय 'यस सर' के और क्या कहेंगे !

☐

खानदान या पेडिग्री की बात अब तो भूल ही जानी चाहिए।

अब तो कोई भी राह चलता आदमी बड़ी से बड़ी पोस्ट पर बैठ सकता है। पहले के जमाने में मिनिस्टर भी कितने कम थे···सर ई० राघवेन्द्र राव और डॉ० खरे···उनका आई० क्यू० भी बहुत बड़ा था, इसलिए उनसे आई० सी० एस० भी डरता था। लेकिन आजकल ! माई गॉड···आई० ए० एस० की हालत भी बहुत खस्ता है। मिनिस्टर खुलेआम जलील करता है। जिस रोज चार्ज लेता है, उसी दिन उसके मुंह पर कहता है, "मिस्टर···लोगों ने मुझे आपके बारे में सब कुछ बता दिया है। जब तक आप इस डिपार्टमेंट के सेक्रेटरी हैं तब तक यहा कुछ भी होना-जाना नही है।"···यानी वह पहले ही दिन अपने सेक्रेटरी पर निकम्मेपन का चार्ज लगा देता है, साथ में वह यह भी जोड देता है, "हो सकता है, वे लोग गलत हों। आपने उनका कोई काम नही किया हो। इसीलिए मैं आपको नहीं हटाऊंगा।" और सेक्रेटरी बेचारा सब कुछ खामोशी से सहता है···कितना सर्द हो गया है यह आई० ए० एस०···चुपचाप इस ब्लैकमेल को, इस अपमानजनक अहसान को पी जाने का मतलब !

मतलब सिर्फ एक ही निकलता है। साले सब के सब पिगमी हैं। उस पिगमी डेसाउंड की तरह। नवाब साहब ने मुझे जो कुत्ता दिया था, वह भी साला कितना ऊंचा-पूरा था···थिम्मी की ऊंचाई भी फाइन है। अलसेशियन और मादा लियों का क्रॉस जो है। साला जंजीर में बधे-बधे इतने जोर-जोर से भौंकता है कि बगलों में आने वालों का कलेजा दहल जाये।

थिम्मी बहादुर है। कम से कम जोर-जोर से गुर्राना तो जानता है। अपने कैरियर के आखिरी दौर में, यानी एक खुश-नुमा सुबह चीफ सेक्रेटरी साहब का सरकुलर आया। लिखा था—'कमरे से बाहर जनता से मिलने का टाइम मुकर्रर कीजिए।' गवर्नमेंट का अर्डर था। अरे वाह रे जनता। फाइलों को निपटायें, कि जनता से मिलते रहें···वॉट ए बोरिंग जॉब। भाई, यदि

एडमिनिस्ट्रेटर दिनभर जनता से ही मिलता रहे तो वह रंडी का पेशा नहीं हो जायेगा। अंग्रेज बहादुर के जमाने में अफसर सात कमरे के भीतर बैठता था...छ. कमरे पार करते-करते जनता का दम उखड़ जाता था। फिर ऊपर से कहा जाता है कि 'ला एण्ड ऑर्डर' ठीक नहीं है।

ओ डैमिट...पिगमी-पिगमी-पिगमी !

उस जमाने में अपने बंगलों के लान पर बैठे-बैठे जिलों के कलक्टरों को फोन कर देते थे और वहा से 'यस सर' होता था, और काम भी हो जाता था।

क्या जमाना था ! गवर्नर कैनिंगहैम और लेडी कैनिंगहैम की ड्रिंक पार्टी में कितने लोग जा पाते थे। सदर में टाकली रोड पर कैनिंगहैम की कितनी बड़ी कोठी थी ! जब कैनिंगहैम रीजेंट टाकिज जाते तो सदर से लेकर सीताबर्डी तक की सारी सड़क बंद कर दी जाती थी। क्या आलीशान दावतें होती थीं उन दिनों। शैंपेन, वैट सिक्सटी-नाइन, स्कॉच ! वेज, नानवेज का इन्तजाम।

"हैलो यू।" एक बार गवर्नर साहब ने मीठी डाट पिलाते हुए कहा था और हम निहाल हो गये।

"कार्नवालिस, डू यू वाट टू गो टू इंग्लैंड ऑन ए फोर मंथ्स स्टडी टूर (कार्नवालिस, क्या तुम चार महीने के स्टडी टूर पर इंग्लैंड जाना चाहोगे ?) गवर्नर साहब ने पूछा और मेरा मन बल्लियों उछल गया था।

मैंने बस इतना ही कहा था, "सर।"

और उस दिन मैंने मारे खुशी के कुछ ज्यादा ही चढा ली थी।

रात में मैं अपनी आखों के सामने इंग्लैंड को, अपने ड्रीम-लैंड को देख रहा था। क्वीन से बरमिंघम पैलेस में मुलाकात कर रहा था। टेन डाउनिंग स्ट्रीट में प्राइम मिनिस्टर से मिल रहा था। हर पल बदलता मौसम था...टेम्स नदी में तेज पानी

का बहाव था···हाइड पार्क था···और रात गहरी है। हवा का एक तेज झोंका आता है। झाड़िया फुहारे बन जाती है। मेंडोलिन और गिटार की धुनें बज रही हैं···हर पाच-सात मिनट बाद गाडिया आ-जा रही है। मई तक सारी बर्फ पिघल चुकी है। मोटरो के काफिले हैं, गोरी चमडी के दर्प और अभिमान से माथा ऊपर उठाए मर्द-औरतें ओवरकोट मे घूम रहे है। वेस्टमिनिस्टर एबे है···आलीशान फ्लैट्स हैं। इग्लैड के एप्रिल शॉवर्स। उफ, मुट्ठीभर अग्रेजो का देश·· पूरी दुनिया पर हुकूमत कर रहा है साहब ! आक्सफोर्ड का कमाल है। आक्सफोर्ड का !

एण्ड दोज ब्लडी इ डियस। एक सुब्रमनियम साहब है। अपनी औरत का खून करके छिपाना भी नही आया। अरे 'बिलसया काड' के मशहूर अफसर कुलभूषण आई० सी० एस० से सबक लेना था। साले कुछ नही तो आया या सरकिट हाउस के खानसामा की बीबी के पीछे शराब मे धुत होकर दौडते दिखाई दे रहे है। पिगमी! ऑल आर पिगमीज !

आजकल साला टेक्नोक्रेट और एडमिनिस्ट्रेटर का झगड़ा चल रहा है। बाबू और चपरासी भी नही सुनता। कितना डिमॉरलायजेशन हुआ है···कुत्ते की तरह लड़ रहे है···कुछ पर्क्स के लिए साले सबके सब सर्कस के जोकर की तरह हो गये है !

"थिम्मी ! थिम्मी ! थिम्मी ! बी ऑन दी राइट साइड। कम अलाग ब्वाय। ऑलवेज ऑन द राइट साइड।"

घास से उछले और हाथों मे पड़ी थिम्मी की जजीर और कड़ी लगने लगी। कमबख्त घास से उछले मेढक पर झपट्टा मार रहा है। हाथ की नसें तनी जा रही है।

उन्होने अपनी घड़ी की ओर देखा। पहाड़ के ऊपर से वापस होने का फैसला किया। क्योकि ऊपर चिनार का जगल है। एसफाल्ट की बड़ी खूबसूरत सड़क है। ऊपर से धुध मे डूबे हुए

बंगलों की कतारें बड़ी अच्छी लगती हैं। सामने रेलवे क्रासिंग के उस पार सूरज लाल गोल निकलता हुआ दिखाई दे रहा है। लेकिन फिर उन्होंने अपनी पुरानी आदत के मुताबिक उस फैसले को मुश्किल फाइल समझकर पेंडिंग में डाल दिया…पी.यू.डी.… वह सूरज का गोला भी क्या है! बस एक ट्रे ही तो है ना, जिसे उठाकर चपरासी ले जाया करता था। और वे ५७-एवेन्यू से ही वापस हो गये। बंगलों के लोग अपने बिस्तरों पर ही पड़े हुए थे। हां, अलबत्ता सर्वेंट क्वार्टर के लोग उठ गये थे। सुबह-सुबह स्कूल-बस का इन्तजार करती हुई नन्ही-नन्ही लड़कियां अपने-अपने स्कूली यूनीफॉर्म में 'ट्री गार्ड' पर अपने बस्ते और टिफिन-कैरियर लटकाए दीख रही थीं। उनके साथ या तो आया थीं या उनकी सूखी छातीवाली मम्मियां। कमबख्त कोई खेल भी तो नहीं खेलतीं, तंदुरुस्ती कैसे अच्छी रहेगी!

उन्होंने सड़क की ओर देखा। वैसे ही उनींदी सड़कें थीं, लॅंस थे। कहीं-कहीं नौकर बंगले के सामने वाली पुलिया पर बैठकर बीड़ी धौंक रहे थे। इक्का-दुक्का लोग लौट भी रहे थे। इनमें से उन्हें कोई भी नहीं पहचान रहा था। वे घमंडी नहीं हैं। उनके एक हाथ में जंजीर है, लेकिन फिर भी एक हाथ खुला हुआ है। यदि कोई उन्हें पहचानकर 'गुडमॉर्निंग' भी कहे तो वे फौरन मुस्कराकर 'गुडमॉर्निंग' कहने के लिए तत्पर थे। लेकिन, शायद लोगों को इतनी फुर्सत नहीं है। खैर, उन्हें शुरू से ही यह चोचलेबाजी अच्छी नहीं लगती है। लोग उन्हें घमंडी न समझें, इसलिए वे गुडमॉर्निंग या गुडनाइट कहते रहे हैं। एका-एक उन्होंने यह महसूस किया कि एक अफसरनुमा आदमी अपने दूसरे साथी से कह रहा है, "देखो, वह जा रहा है टाइगर… टाइगर कार्नवालिस। अपने वक्त का सबसे जल्लाद आई. सी. एस अफसर।"

उन्हें खुशी हुई। लेकिन यह खुशी कुछ ज्यादा वक्त तक न

टिक सकी। उन्होंने सडक पर कुछ लोगों को स्कूल-बस का इंत-जार करती हुई कुछ लड़कियों की ओर ताने उछलते सुना,'चलिए हम छोड दें स्कूल आपको'···हरामजादे सडक के कुत्ते यहां भी पहुंच गये। क्या हो गया है 'ला एण्ड आर्डर' को···अंग्रेजो का राज होता तो सालो को भून देता। कल ही होम सेक्रेटरी से फोन पर बात करूंगा·· लेकिन···लेकिन ये तो सब निकम्मे हैं···ठीक है, सालों की बहन-बेटियो के साथ ऐसा ही होना चाहिए। उन्होंने एक हाथ की उंगलियों से अपने गालो की झुरियों पर हाथ फेरा। और तभी उन्हें एकाएक लगा जैसे सिविल लाइंस के उस इलाके में बलात्कार, लूट और अगजनी का नगा खेल हो रहा है और लोग अपने-अपने गाउन पहने चिल्ला रहे हैं। कुत्ते भौंकने लगे है। "थिम्मी! थिम्मी! थिम्मी! गो! चीरकर रख दे इन गुडो को।" लेकिन तभी उनमें एक अजीब तरह की पाशविक हिंसा जाग उठी। "थिम्मी डोंट गो।"···उनके मुंह से आवाज निकली···जब ये साले उनकी परवाह नहीं करते, उन्हें इस सडक पर कोई भी नही पहचानता, तो उन्हें इन बंगलों में सुख की नींद सोनेवाले लोगों से क्या मतलब! वे किसी बढ़ते हुए सैलाब की तरह कठोर और बेरहम हो गये।

एकाएक उन्हें थिम्मी के कारण रुकना पड़ा। वह पेशाब करने के लिए रुका था और उनके दिमाग की ट्रेन भी कुछ देर के लिए रुकी थी···बाहर कोई नही था। लूटमार, हत्या, बला-त्कार कहीं कुछ भी नहीं था। सामने जलने वाले फ्लडलाइट की कतारों में से एक बल्ब भर फ्यूज हो गया था। उन्होंने जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाये।

□

पन्द्रह मिनट में ही वे अपने बंगले की लान पर थे। उस लान में नीलगिरी और सरो के पेड़ थे। नवम्बर की खुशनुमा धूप का

टुकड़ा चमक रहा था।

उन्होंने थोड़ी ही देर में दो अंडों का आमलेट और ट्रे में से तीन प्यालियां चाय सिप की और फिर थोड़ा-सा किताब को उलट-पुलटकर सोफे पर ही सो गये···सोने के पहले उन्होंने नौकर को ताकीद कर दी, "देखो, कोई भी आये, मुझे जगाना नहीं।" करीब ग्यारह बजे दोपहर को उन्हें कॉलबेल की कर्कश आवाज ने जगाया। डाकिया रजिस्टर्ड लेटर लेकर आया था। उसने सलाम किया। उन्होंने लिफाफा लिया। विदेशी टिकट थे। समझ गये विलियम का लेटर है। स्टेट्स से आया है। उन्होंने बड़ी हसरत से उसे खोला। लेकिन लेटर पढ़ने के बाद उनका चेहरा बड़ा सख्त हो गया।

"हू, गधे का बच्चा। कहता है, मैं अब स्टेट्स से वापस नहीं आ सकूंगा। हिंदुस्तान में कुछ नहीं रखा है। लोग सब-स्टैंडर्ड है। मिस फॉकनर से शादी कर ली है। बंगले में कुछ एक्सटेंशन करवाना हो तो मैं उसे लिखूं, वह पैसे भेज देगा।"

"हूं! एक्सटेंशन। क्या मैं भिखारी हूं! एम आय ए बेगर!" वे बुदबुदाये और उनके चेहरे की हर झुरिया सख्त हो उठीं।

वे सोफे से उठे। अपनी छड़ी उठायी, चिट्ठी और लिफाफा उठाया और अपनी शानदार चाल से सीढ़िया उतरते हुए बंगले के लान पार आये। वहा उन्होंने उस खत और लिफाफे के टुकड़े-टुकड़े बिखेर दिये और उसे डस्टबिन मे फेंक दिया। उस वक्त उनके चेहरे पर एक अजीब-सी हिकारत का भाव था। फिर उन्होंने अपनी छड़ी से नीलगिरी पर चार-पांच बार चोट की।

"पिगमी! पिगमी! ···बास्टर्ड कहता है इस हिंदुस्तान मे कुछ नही रखा है···अबे हरामखोर, इस कंट्री मे क्या नहीं रखा है! यह एक ब्यूटीफुल कंट्री है समझा! —यहां की हवा, यहा की जमीन, यहा की औरतें, सब ब्यूटीफुल हैं। तू क्या समझेगा

पिगमी !"

फिर उन्होंने दर्द और दर्प से भरी एक अवाज लगायी, "थिम्मो! थिम्मो! थिम्मी माई सन, माई ब्वॉय, कम हीयर!" और वह उसी आन-बान से बेडरूम की ओर बढ़ गये।

प्रभु जोशी

○

नंदी-न्याय

इस समय वे दो थे। और, एक-दूसरे के सामने न पड़ने की असली कसम खा चुकने के बावजूद भी वे मिल गये थे। ये दो नव-सुलगित क्रांतिपुंजों का आकस्मिक भरत-मिलाप था। और, पादुका लेन-देन के नाम पर केवल एक जोड़ी शब्द थे—प्रगतिशील—प्रतिक्रियावाद ! कभी-कभी बीच में बुर्जुवा या रिएक्शनरी भी टपक पड़ते थे।

पारस्परिक प्रेम भाव के वशीभूत होकर वे आपस में इन शब्दों को एक-दूसरे पर प्रयोग उदारता से करते जा रहे थे, जिससे एट ए ग्लास लगता था, भाषा यदि भैंस होती तो शब्दों की खाल से कई शैली के सिर भंजन पदत्राण बना लिये जाते। जिनका चलन और बिक्री साहित्यिक-सेमिनारों में काफी होती। विश्व साम्यवाद की व्यापक धारणा की तरह पहले के चेहरे का भूगोल काफी चौड़ा था जो नीचे से हिन्दुस्तान के पायतानें की तरह तिकोना था। निचले जबड़े जिस सीमांत पर खत्म होते थे, वहां शिशु मधुमक्खियों का मुन्ना-सा छत्ता था। ताना-वाला श्रीलंका की तरह, आकार और प्रकार में। जो देखने में

छायावादी, छूने में वामपंथी तथा चुभने में नक्सलाइट लगता था। यह उसकी दाढ़ी थी, जिसमें दूसरा तिनका खोसने का सास्कृतिक मौका तलाश रहा था।

बाप का दिया हुआ नाम कातिलाल था। पर परिवर्तन, शब्द के साथ 'रेफ़े' करने से नहीं, 'रेफ' लगाने से हो गया था। काति को मोहित करने वाला नाम—क्रातिलाल बन गया था। और, ऐसा बनते ही वह सोलह आना प्रगतिशील हो गया था।

दूसरे के भी दाढ़ी थी। पर, पहले की अपेक्षा अधिक तरक्की पसन्द थी। इतनी कि क्रातिलाल का छल्ला, इसकी प्रगतिशील दाढ़ी के सामने ठीक वैसा लगता था जैसे मूलधन के सामने ब्याज। दाढ़ी के विकास की ये मजाल थी कि उसने ऊपर बढ़ कर उसके कान व नीचे बढ़कर गला दबा रखा था। और दोनों ऊपरी व निचली वृद्धियों को देखकर उसका चेहरा एक ट्रांस-मीटर लगता था, जिसका आर्थिंग व एरियल समानुपात मे हों। मजेदार बात ये थी कि उससे दो शब्द ही प्रसारित होते थे, वे भी 'फीड-बैक' करते हुए—प्रगतिशील और प्रतिक्रियावाद। वह बार-बार दाढ़ी सहलाता था, और सहलाने की अदा से लगता था, ये ट्रेनी है—अगली सहलाई प्रक्रिया के पूर्व का उसको जैनु-इन गुस्सा अपने बाप पर आया करता था कि उसने उसका नाम ऐसे शब्दों का क्यों नही रखा, जिनसे वह भी 'रेफ़े' करके प्रगति-शील बन जाता, मूल नाम बब्बन था तथा जो बढ़ी हुई दाढ़ी वाली शक्ल की वजह से बब्बन कम—बब्बर अधिक लगता था।

कुल मिला कर यह बब्बर—प्रगतिशील था।

वे दोनों इस समय चल रहे थे। और इन दोनों के साथ अब तीसरी वो भी चलने लगी थी—जिसे कहते हैं, जिरह। जिरह की अदा इस तरह थी—

—'तुम मुझ पर हमेशा से आक्षेप लगाते रहे हो, मगर

दोस्त असलियत ये है कि प्रतिक्रियावादी तुम हो।

—'होल्ड योर टंग ! मैं तुम्हारा दोस्त इस जनम में तो हो ही नहीं सकता। तुम समझते हो कि एक प्रतिक्रियावादी व एक प्रगतिशील के बीच दोस्ती जैसी चीज सम्भव भी है ? साफ सुन लो, प्रतिक्रियावादी तुम हो, समझे ?'

—'तो लो तुम भी सुन लो, मैं प्रतिक्रियावादी हूं, तो केवल तुम्हारे कहने से, पर तुम प्रगतिशील किसी भी कोने से नहीं हो —(इसके बाद उसने एक घटिया क्लाइमैक्स तैयार करने के लिए कुछ क्षणों का पाज दिया)। फिर बोला—

—'तुमने कहा, 'इस जनम में, मैं तुम्हारा दोस्त हो ही नहीं सकता' —इसका मतलब है कि तुम आदमी के 'दूसरे जनम' में भी विश्वास करते हो। और, यह धारणा सिद्ध करती है कि तुम प्रतिक्रियावादी तो हो ही, पर घोर अन्धविश्वासी भी हो।'

दूसरे ने पहले देखा। फिर घूर कर पलकें सिकोड़ीं। इस तरह कि यदि थूक जबान के बजाय आंख में होता तो उसका भूगोल लिप गया होता। फिर उसने आसमान की ओर देखा गो कि वहां लिखा हो और रिएक्शनरी आदमी की आदत होती है कि वह चीजों को बीच में से तोड़कर खींचता है।'

—'आत्म स्वीकृति कर रहे हो।'

—'चोप साले, मैं तुम्हारी कह रहा हूं—सुनो अन्धा प्रेम होता है, विश्वास नहीं। विश्वास हमेशा आंख खोलकर किया है। और जब तक विश्वास का कोई ठोस कारण नहीं मिलता, मैं बराबर शक करता रहता हूं, पर तुम मेरे तर्क को काटने के लिए भाषा से खेल रहे हो—एण्ड ए बुर्जुआजी हैज आलवेज बोन।'

—'यस, आई एम प्लेइंग विद दा लैंगवेज, बट यू आर डूइंग बुचरी विद द लैंगवेज—और प्रतिक्रियावादी का ऐसा ही गन्दा चरित्र होता है।'

—'तुम्हारा भी तो गन्दा है, तत्परता से आरोपित हुआ।
—'क्या ?'
—'चरित्र !'
—'मैं सिद्धात की बात कर रहा हू। फण्डामेंटल की, समझे! और तुम उसे पर्सनलाइज कर रहे हो। पर मत भूलो, तुम्हारे अतर्विरोध पकड लिये गये है।'
—'तो क्या तुम में अतर्विरोध नही है ?'
—'हा, बिल्कुल नही है।'
—'तो फिर मेरा अनुमान ठीक है कि तुम आखिर वही हो।'
—'तुम फिर भाषा से खेल रहे हो, साफ कहो, कहना क्या चाहते हो ?'
—*'यही कि तुम गधे हो। और, अन्तर्विरोध गधे में ही* बिल्कुल नहीं होते, क्योंकि वो चादनी को भी बोझा समझकर ढोता है।'
—'तुम आखिर आ गये न अपनी वाली पर (क्रुद्ध कर) तुम्हे चादनी को चादनी न समझे जाने की चिन्ता है, पर तुमने कभी गधे के बारे में सोचा, जो धोबीघाट से घर के अपनी जिंदगी खत्म कर देता है, (फिर आक्सीजन का लम्बा सुटका खीच कर) आगे बोला—'पर ये तुम्हारी समझ का 'कच्चापन' नही, बल्कि समझ का 'वर्ग चरित्र' है, एक बुर्जुवा भाव प्रवण लेखक की चिन्ता चाद, चादनी, फूल और पत्ती की होती है— जीवित प्राणी की नही। सुन लो, ये तुम्हारी भावुक मूर्खता है।'
—'मुझ पर भाषा से खेलने का आरोप लगाते हो, पर तुम फिर खुल्लम-खुल्ला कसाईपन कर रहे हो—बूचरी।'
—'बूचरी नहीं बेटे, ये वैज्ञानिक व ऐतिहासिक सत्य है कि भावुकता से लिए गये निर्णय हमेशा प्रतिक्रान्तिकारी साबित होकर निरर्थ हो गये हैं सच्चे मार्क्सवादी के लिए भावुकता अप्रासगिक

है। उसे तमाम निर्णय दिल से नही, दिमाग से लेना चाहिए, बुद्धि से समझे।'

—'पर तुम्हें यह मालूम होना चाहिए कि बुद्धि से लिये गये निर्णयों पर अमल सिर्फ भावुकता की वजह से ही हुआ है—इसलिये भावुकता का होना अप्रासंगिक नही, बल्कि जरूरी है।'

—'मैं जानता हू।'

—'क्या जानते हो ?'

—'यही कि बुर्जवा और रिएक्शनरी आदमी भाववादी विकृतियों के साथ अक्सर 'जरूरी' विशेष जोड़कर उसे इलूजन मे डाल देता है। समझे।'

—'मै समझा नहीं।'

—'वाह सच्चाई को न नकारपाने की कमजोरी को छुपा ले जाने के लिए ये जुमला अच्छा है। स्त्रिया इसको अच्छी तरह वापरती है।',

—'देखो मैं पुरुष हूं।'

—'मुझे शक है, तुम पुरुष हो। पर पुरुष के आगे का एक अक्षर तुम खा गए। वो है—'का' जल्दीसे लगालो, ताकि गलत-फहमी शीघ्र दूर हो जाएगी।'

—'तुम गाली गलौज कर रहे हो, 'का'—पुरुष तुम होगे।'

—'चुप रहो—सच्चाई को गाली गलौज नहीं कहा करते। और जो ऐसा करता है, उनकी प्रगतिशीलता पर मुझे अक्सर शक रहा है और तुममें तो शक सिद्ध होता है।'

—'आज फैसला हो जाना चाहिए !'

—'किस बात का ?'

—'असलियत का कि कौन प्रगतिशील है, कौन प्रतिक्रिया-वादी।'

—'तो, ये फैसला क्या तुम करोगे ?'

—'तो क्या तू करेगा ?'

—'इसका फैसला हम तुम पर नही, इस बात पर निर्भर होता है कि आम आदमी से कौन कितना जुड़ा है ?' और मैं दावे के साथ कहता हू कि मै अधिक जुडा हूं।

—'साबित कैसे कर सकते हो ?'

—'साबित करने के लिए ज्यादा जहमत नही उठानी पडेगी। मेरे घर चलो। तुम देखो, बगल में नाई रहता है, सामने धोबी, बाई तरफ मोची तथा दाई तरफ पनिहार—और ये सब कामनमेन है। मैं इनके एकदम नजदीक रहता हू। मैं इनकी मदद करता हूं।

(जोर का ठहाका—'क्या खाक करीब हो ? ज्यादा करीब तो मै रहता हूं। इन सभी को हमने अपने घर पर लगा रखे हैं और आर्थिक मदद देते है। यहा तक कि पीछे कम्पाउण्ड में क्वार्टर तक दिये है।

—'यह मदद और इन्वाल्वमेंट नही, बल्कि दासप्रथा का एक रूप है। तुम सामंतवादी हो—समाजवादी तो रत्ती भर नही हो सकते।' उसने मिनक कर वार पूरा किया और एक सिगरेट सुलगा ली।

दूसरे ने पहले सुलगी सिगरेट को देखा। फिर, उसके भरे पैकेट को। फिर तमक कर पूछा—

दूसरे ने पहली सिगरेट को देखा, फिर उसके भरे पैकेट को। फिर तमककर पूछा—'क्या तुम अपने को साम्यवादी समझते हो ?'

—'समझता नही, हू भी।'

—'हूंह ! तभी अकेले सिगरेट पी रहे हो, क्या एक सिगरेट मुझे नही बाट सकते थे ! सच तो ये है कि तुम स्वार्थी और व्यक्तिवादी हो—और सिगरेट की घटना ने यह साबित कर दिया है।'

क्योंकि बांट कर खाने की आदत तुम्हारी अंतराज्या में ही नहीं है।'

—'बात सिगरेट की नहीं, सिद्धांत की है। पीना है तो साफ बोलो—लो मैं पूरा पैकेट दे देता हूं !" और उसने पूरा पैकेट उसके आगे कर दिया।

'उसने पैकेट ले लिया और अपने जेब में सरकाते हुए उवाच हुआ—

—'मुझे सिगरेट चाहिए थी, पैकेट, नहीं, और तुम पैकेट का पैकेट देकर अपनी दानशीला सामंतवादी मनोवृत्ति उजागर कर गये। और, अभी बड़े साम्यवादी बन रहे थे, जब कि तुम अर्ध-सामंती, अर्ध-पूंजीवादी हो। और ऐसे लोग दान देकर त्याग का प्रोपेगेंडा करते हैं। तुम अव्वल दर्जे के प्रोपेगेंडिस्ट हो, समझे।'

—'प्रोपेगेंडिस्ट तुम हो। देखो तुमने अपने आपको उस दिन क्रांतिकारी साबित करने के लिए लाल रंग की बुशशर्ट पहन रखी थी—इससे कोई प्रगतिशील नहीं बन जाता। बल्कि, वह केवल मात्र एडजस्टमेंट का है। और उससे भी दुखद ये कि एक क्रांतिकारी प्रतीक को 'कमोडिटी' बना कर अपने निजी हितों के लिए साधन की तरह तुमने इस्तेमाल किया। क्या क्रांति, कमीज जैसी व्यक्तिगत चीज है ? यदि दम है तो पार्टी का कार्ड-होल्डर बनो। संगठन तैयार करो।'

—'तुम बड़ा संगठन तैयार कर रहे हो ? सिर्फ अपने गुट को एक झण्डे के नीचे स्वार्थ सिद्ध करते हो, और स्वार्थ की हद है कि तुमने झण्डे को छतरी में तब्दील कर लिया है, जबकि उस छाते के नीचे पूंजीवादी इराइया है।'

—'तुम मेरा और मेरी पार्टी का अपमान कर रहे हो, याद रखो बुरी बात है।'

—'मान-अपमान तो मध्यमवर्गीय संवेदना है। और तुम,

यदि खुद को सर्व-हारा के मानते हो तो तुम्हें ऐसा भाव-बोध महसूस नहीं होना चाहिए।

—'हां, मैं 'सर्वहारा' का हूं, पर सर्वहारा वर्ग का आदमी अपमान करे तो वह अपमान नहीं होता, पर तुम तो साले प्रतिक्रियावादी हो—और तुमने अपमान किया है।'

—'तो आज फैसला होकर रहेगा, इस बात का कि कौन प्रगतिशील है और कौन प्रतिक्रियावादी।'

—'पर फैसला कौन करेगा ?'

—'आम आदमी।'

—'पर वो है कहा ?'

—'वो देखो, वहा बैठा हुआ है।' उसने एक दूर बैठे भिखारी की ओर इशारा करते हुए कहा।

—'चलो, चलते है।'

वे दोनों तेजी से मुड़कर उधर लपके। भिखारी ने उनकी लपक को मार्क किया और पहले सम्भला। फिर शक की निगाह से दोनों को घूरा और अपना भीख का कटोरा उठा कर वहा से भाग गया।

—देखा वह तुमसे डर कर भाग गया।

—'नहीं तुमसे डर कर भागा है, दाढी मे तुम स्मगलर लगते हो।'

—'तुम दाडी में गुण्डे लगते हो। तुम्हारी दाढ़ी उलूल-जलूल और असभ्य लगती है।'

—'असभ्य आदमी क्या गुण्डा होता है।'

—'गुण्डों की कई किस्में होती हैं।'

—'उनकी अच्छी किस्म में तुम हो।'

—'चुप रहो।'

—'फैसले चुपा कर नहीं किये जा सकते। तुम मेरी जीभ नहीं रोक सकते।'

—'तो फैसला कर लो।'

—'करते हैं।' फिर उसने दूर इशारा किया, जहां एक मजमा लगा हुआ था।

वे लपक कर पहुच गये। वैसा तो वहां मदारी नहीं, एक पण्डा था। अर्धगंजा और जिसकी मूछें झबरीली इतनी कि लगने लगता था उसने सिर के आगे के बाल उखाड़ कर नाक के नीचे लगा लिए हैं। इसी जगह से वे चमत्कारिक रूप से झबरीली है।

मजमे के बीचो-बीच एक बैल खडा था, जो अपनी बैलयोचित गम्भीरता में अक्ल का बैल दीखता था। पंडा डमरू व जीभ एक साथ घुमाता हुआ कुछ बोले जा रहा था।

—'यहा फैसला कौन करेगा ? आदमी कि बैल ?'

—'बैल भी कर सकता है।'

—'यह मूर्खतापूर्ण बात है।

—'बैल के लिए।'

—'नहीं, फैसले के लिए, एक जानवर आदमी की चिंतन-धारा के सही या गलत का फैसला नही कर सकता।'

—'तुम्हें पता होना चाहिए, इस देश के बड़े-बड़े फैसले बैल ने ही किये हैं।'

—'पर बैल धर्म का प्रतीक है और हम एक राजनीतिक दर्शन के फैसले वाले लोग हैं।'

—'तो क्या हुआ, धर्म पहले दीर्घकालीन राजनीति था और आज राजनीति अल्पकालीन धर्म और बैल दोनो में मौजूद रहा है। कभी अकेला, कभी जोड़ीदार। बहरहाल, तुमको मानना होगा कि हिन्दुस्तान का बैल एक ऊंचे राजनीतिज्ञ का पक्का मगज रखता है।'

—'ठीक है।'

पण्डे ने डमरू बजाया। ऊंची आवाज में बोला—

—ऐ नंदी महाराज ! बताओ ये बाबू लोग क्या चाहते

है ?' इनका फैसला करो।'

बैल बढ़ा और उसी शैली में जिस तरह बैलों की जोड़ी देश को रौंद कर बढ़ी थी। सींग से सिगनल, पूछ से फटकार देकर बैल उन दोनों के सामने रुक गया।

—'छुओ, हम दोनों में कौन प्रगतिशील है ?' एक ने कहा।

बैल, बैल ही था। और जिस तरह ये दोनों अपने वर्ग के प्रति प्रतिबद्ध थे, बैल अपनी जाति के प्रति। उसने अपनी नाड़ ऊंची की, उसे दूर घेरे से बाहर एक गाय दृष्टिगोचर हो गयी। उसने इन दोनों में किसी को भी नहीं छुआ और डकार का एक नारा आसमान में लगा कर गाय की ओर बढ़ गया।

दोनों क्रांतिधर्मी बैल की इस औचक उपेक्षा से सन्न से रह कर बगलें झांकने लगे। उनकी झांकती पलकों से एक सफेद टोपधारी महापुरुष मुखातिब हुआ और बोला—'बेटा घर जाओ, पानी पियो और सोओ। तुम दोनों ही प्रतिक्रियावादी हो। प्रगतिशील तो बैल है क्योंकि इस समय जो गाय के पीछे है, वही प्रगतिशील है, बाकी प्रतिक्रियावादी, समझे।'

इसके बाद वो अपने सफेद वस्त्रों में झुके और पेट पर हाथ फेरकर ऐसी डकार ली कि लगने लगा था, अगले क्षण वे भी सांड की तरह नारा लगाते हुए चौपाये की स्टाइल में गाय की ओर बढ़े बिना नहीं रहेंगे।

महीप सिंह

○

समयबोध

मैं कानपुर में दो-एक दिन रहूं, तो जगमोहन को पता लग ही जाता है। फिर वह मुझसे मिलने आता है। बचपन का साथी है, परन्तु दसवीं कक्षा के बाद से ही हमारी दिशाएं अलग-अलग हो गई थीं। मैं डिग्रियों पर डिग्रियां लेता गया और वह 'गुडई-कैरियर' में एक के बाद दूसरा सर्टिफिकेट जीतता चला गया। मैंने कहानियां लिखनी शुरू कीं, उसने सर्राफे और बजाजे से माहवारी वसूल करनी शुरू की। मैं अध्यापक बनकर लड़के-लड़कियों को पढ़ाने लगा, वह 'गुरु' बनकर नये 'टेलेंट' को अपना शागिर्द बनाने लगा। गरज यह कि हम दोनों अपने-अपने क्षेत्रों में लगातार आगे बढ़ते चले गये।

वैसे उसका पेशा एवं व्यक्तित्व मुझसे ज्यादा प्रभावशाली है; उसकी आमदनी सदा मुझसे कई गुना ज्यादा रही है, परन्तु पता नहीं क्यों वह सदैव मेरा प्रभाव स्वीकार करता रहा है। बस यहीं मैं भारतीय संस्कृति की महानता का कायल हो जाता हूं। नहीं तो कहां जगमोहन उर्फ 'जग्गू' और कहां मैं उर्फ 'मास्साब।'

हैं ?' इनका फैसला करो।'

बैल बढ़ा और उसी शैली में जिस तरह बैलों की जोड़ी देश को रौंद कर बढ़ी थी। सींग से सिगनल, पूंछ से फटकार देकर बैल उन दोनों के सामने रुक गया।

—'छुओ, हम दोनों में कौन प्रगतिशील है ?' एक ने कहा।

बैल, बैल ही था। और जिस तरह ये दोनों अपने वर्ग के प्रति प्रतिबद्ध थे, बैल अपनी जाति के प्रति। उसने अपनी नाड़ ऊंची की, उसे दूर घेरे से बाहर एक गाय दृष्टिगोचर हो गयी। उसने इन दोनों में किसी को भी नहीं छुआ और डकार का एक नारा आसमान में लगा कर गाय की ओर बढ़ गया।

दोनों क्रांतिधर्मी बैल की इस औचक उपेक्षा से सन्न से रह कर बगलें झाकने लगे। उनकी झाकती पलको से एक सफेद टोपधारी महापुरुष मुखातिब हुआ और बोला—'बेटा घर जाओ, पानी पियो और सोओ। तुम दोनों ही प्रतिक्रियावादी हो। प्रगतिशील तो बैल है क्योंकि इस समय जो गाय के पीछे है, वही प्रगतीशील है, बाकी प्रतिक्रियावादी, समझे।'

इसके बाद वो अपने सफेद वस्त्रों में झुके और पेट पर हाथ फेरकर ऐसी डकार ली कि लगने लगा था, अगले क्षण वे भी साड की तरह नारा लगाते हुए चौपाये की स्टाइल में गाय की ओर बढ़े बिना नहीं रहेंगे।

महीप सिंह

○

समयबोध

मैं कानपुर में दो-एक दिन रहूं, तो जगमोहन को पता लग ही जाता है। फिर वह मुझसे मिलने आता है। बचपन का साथी है, परन्तु दसवीं कक्षा के बाद से ही हमारी दिशाएं अलग-अलग हो गई थीं। मैं डिग्रियों पर डिग्रियां लेता गया और वह 'गुंडई-कैरियर' में एक के बाद दूसरा सर्टिफिकेट जीतता चला गया। मैंने कहानियां लिखनी शुरू कीं, उसने सर्राफे और बजाजे से माहवारी वसूल करनी शुरू की। मैं अध्यापक बनकर लड़के-लड़कियों को पढ़ाने लगा, वह 'गुरु' बनकर नये 'टैलेंट' को अपना शागिर्द बनाने लगा। गरज यह कि हम दोनों अपने-अपने क्षेत्रों में लगातार आगे बढ़ते चले गये।

वैसे उसका पेशा एवं व्यक्तित्व मुझसे ज्यादा प्रभावशाली है; उसकी आमदनी सदा मुझसे कई गुना ज्यादा रही है, परन्तु पता नहीं क्यों वह सदैव मेरा प्रभाव स्वीकार करता रहा है। बस यहीं मैं भारतीय संस्कृति की महानता का कायल हो जाता हूं। नहीं तो कहां जगमोहन उर्फ 'जग्गू' और कहां मैं उर्फ 'मास्साब।'

इस बार जब वह कानपुर में मिला, तब मैंने देखा, वह कुछ उदास है।

पूछा, "क्यों जग्गू गुरु, क्या बात है ?"

वह बोला, "कुछौ नही भइया। आजकल हमारा धंधा कुछ ठीक-ठीक चलि नही रहा।"

"आखिर बात क्या है ?" मैंने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा, "मैं समझता हूं कि अब तुम्हारे धंधे का 'स्कोप' बहुत बढ़ गया है। राजनीति में तुम्हारे पेशे की आजकल तूती बोल रही है और अब तो साहित्य में भी लोग इसका महत्व समझने लगे हैं।"

वह और उदास हो गया। उसके चेहरे पर आई हुई उदासी को किसी साहित्यिक शब्द से अलंकृत करने के लिए मैं अन्दर ही अन्दर तड़फड़ाने लगा।

जग्गू बहुत धीरे-धीरे बोल रहा था, "यह तो बड़ी मुसिकिल हुइ गई है भइया। पहिले हमार धंधा बहुत सीधा-साधा रहे। सरीफ आदमी सकल से सरीफ लगत रहे, गुंडा सकल से गुंडा लगत रहे। अब पतै नाहि लगत कि ससुर कउन गुंडा है, और कउन सरीफ।"

मुझे लगा, जग्गू ठीक कह रहा है। हमारे देश का सामाजिक जीवन आजकल बिलकुल गड्ड-मड्ड होता जा रहा है। यहां फिर प्राचीन भारतीय संस्कृति की महानता के संमुख मेरा सिर झुकने को हुआ। सामने जग्गू बैठा था, इसलिए मैंने झुकने नहीं दिया। हमारे यहां कैसी बढ़िया व्यवस्था बनी हुई थी। समाज में बहुत से काम थे। हर काम के लिए एक जाति बनी थी, और हर जाति के लिए एक विशेष प्रकार की शक्ल भी बन गई थी। परन्तु अब…? क्या कहा जाए अब की। दूकानों पर नाम-पट्ट है—'वाजपेयी बूट हाउस, यहां पर पुराने जूतों की मरम्मत होती है; सिसोदिया वाशिंग कंपनी, कपड़ों की रंगाई-

धुलाई का उत्तम प्रबंध—जग्गू की परेशानी बड़ी अजीब थी। शराफत का रूप धरे एक नई किस्म की गुडई सभी ओर पनप रही है, परन्तु गुडई का रूप धरे शराफत के पनपने की कहा संभावना है ?

मैंने कहा, "जग्गू गुरु, समय बड़ी तेजी से बदल रहा है। पुराने धधे भी नये परिवेश और युग-बोध के अनुरूप नया सदर्भ ग्रहण कर रहे है। जो व्यक्ति जीवन की इस सश्लिष्टता के विविध आयामों में व्याप्त विसंगति को झेलता और भोगता नही है, वह उसे रूपायित भी नही कर सकता।"

मैं बीच में ही रुक गया। जग्गू मुझे टुकुर-टुकुर देख रहा था। मैंने अपने आप से कहा, 'यह क्या बदतमीजी है। बेवकूफ कही के, *तुम जग्गू से बातचीत कर रहे हो या किसी कहानी-गोष्ठी में भाषण दे रहे हो।'* मैंने अपने आप को संभाला और कहा, "जग्गू गुरु ! मेरा मतलब है कि समय के हिसाब से अपने आपको थोडा बदलना होगा। देखो, सुनारी का काम 'ओर्नामेंट हाउस' में बदल चुका है, सूदखोर अब 'फाईनेंसर' कहलाते हे, नाचने-गानेवाले मिरासी अब सांस्कृतिक कार्यक्रमों के महान कलाकर बन गये हैं। तुम्हे भी अपने काम का रंग-ढंग कुछ बदलना चाहिए।"

जग्गू कुछ देर सोचता रहा, फिर बोला, "अच्छा भइया ! तुम तो दुई-चार दिन हिआ रहिहो ? हम तुमका कल मिलब। अब हम अपन आज की कमाई करे जात हन।"

मैंने ऐसे ही पूछ लिया, "कहा जा रहे हो ?"

वह बोला, अइसे है, एक छोटा-सा काम है। अब पहिले जइसन धंधा तो रहा नहीं, जब बड़े लोग हजार-दुइ-हजार मे अपने दुश्मन की हड्डी-पसली तुड़वा देत रहें; अब तो बहुत छोटा-मोटा काम मिलत है। एक मकान-मालिक हैं, उइ हमका पचास रुपया देवे का कहिन है कि उनके एक किरायेदार का हम दस-

पाच जूता लगाइ देइ।"

जग्गू अपनी रोजी कमाने चला गया। परन्तु दूसरे ही दिन वह सुबह-सुबह फिर आ गया। आते ही बोला, "भइया! हमने रातभर आपकी बात पर बहुत विचार किया है। अब हम अपने धंधे के रंग-ढंग को जरूर बदलेंगे।"

मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने उसे कभी खडी बोली मे बातचीत करते नही सुना था। उसमे यह परिवर्तन देखकर मुझे लगा, सचमुच वह अपने काम-धंधे को बदलना चाहता है।

वह बोला, "भइया! अब आप मुझे समझाइए कि मै अपनी 'गुडालत' को नये तरीके से कैसे जमाऊ?"

"गुडालत!" मैं हस पडा, "यह बात हुई न। जैसे वकालत वैसे गुडालत। और वैसे भी इन दोनो पेशों का आधारभूत सिद्धात एक ही है—दूसरो के लडाई-झगडे से अपनी जेब भरो। फिर मैने कहा, "मैं देख रहा हू कि एक परिवर्तन तो तुमने कर ही लिया है। अवधी की जगह खडी बोली बोलने लगे हो। थोडा परिवर्तन तुम्हे अपनी वेश-भूषा और शक्ल-सूरत मे भी करना होगा।"

वह कुछ महीनो बाद मुझे मिला। उस दिन भी काफी उदास था। उसकी शक्ल-सूरत देखकर मैंने अदाजा लगाया कि उसने मेरे सुझावो पर पूरी तरह अमल करने की कोशिश की है। मैंने पूछा, "कहो, क्या हाल है?"

वह बोला, "क्या बताऊ भैया! आप मुझे बडे मुश्किल रास्ते पर डाल गये। आपने कहा कि मै राजनीति मे घुमू, क्योकि वहा मेरे-जैसो की बडी पूछ है। पर वहा तो 'कापटीशन' बहुत ज्यादा है। मैंने जिंदगी मे बड़े-बड़े गुडे देखे है। बड़े-बड़े गुडों को अपना शागिर्द बनाया है। पर भैया, ऐसे लोग मैंने कही नही देखे।"

मैंने पूछा, "क्यो, आखिर हुआ क्या?"

"पूछो मत।" वह बोला, "वहा तो समझ में ही नहीं आता कि कौन क्या है। हर आदमी इस गुताड़े में है कि दूसरों को लंगड़ी लगा दे। हम गुंडो में इतनी ईमानदारी तो हमेशा रही है कि अपने गुरु और साथियों से दगा न करें। अलग होना ही है तो ताल ठोककर, लड-झगडकर अलग हो जाए। परन्तु वहा तो यही समझ मे नही आता कि गुरु कौन है और चेला कौन है ? हर चेला गुरु को गुड बनाकर खुद शक्कर बनने की कोशिश करता है। कभी-कभी सोचता हू कि पुराना धधा ही अच्छा था, 'न लेनी एक, न देनी दो' बडे आराम से गुजर-बसर हो रही थी।"

मैंने कहा, "जग्गू गुरु ! ना-उम्मीद मत हो। नये क्षेत्र में नये रोजगार को जमने में कुछ समय लग ही जाता है। पजाबी मे एक कहावत है—'पहिले साल चट्टी, दूजे साल हट्टी, तीजे साल खट्टी; मतलब यह कि पहले साल नुकसान उठाना पडता है, दूसरे साल दूकान बनती है और तीसरे साल फायदा होता है। थोड़े दिन और कोशिश करके देखो।"

इसके बाद मैंने सुना, जग्गू आम चुनाव में विधान सभा की सीट पर लड़ने के लिए किसी भी पार्टी का टिकट पाने की कोशिश कर रहा है। फिर सुना कि वह निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में ही चुनाव लड़ रहा है।

चुनाव सपन्न हो गये। मैंने अखबार में देखा—जमानत जब्त हो जानेवाले उम्मीदवारो में जग्गू का नाम भी था। मुझे बड़ा अफसोस हुआ···बेचारा जग्गू न गुडा ही रह सका, न नेता ही बन सका।

पर अभी पिछले महीने जब मैंने सुबह-सुबह उसे दरवाजे पर देखा, तो भौचक्का रह गया। जग्गू खादी सिल्क के कपड़े और चूड़ीदार पायजामे में बहुत जंच रहा था।

मैंने पूछा, "जग्गू गुरु ! दिल्ली कैसे आना हुआ ?"

पांच जूता लगाइ देइ।"

जग्गू अपनी रोजी कमाने चला गया। परन्तु दूसरे ही दिन वह सुबह-सुबह फिर आ गया। आते ही बोला, "भइया! हमने रातभर आपकी बात पर बहुत विचार किया है। अब हम अपने धधे के रग-ढग को जरूर बदलेंगे।"

मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने उसे कभी खड़ी बोली मे बातचीत करते नही सुना था। उसमे यह परिवर्तन देखकर मुझे लगा, सचमुच वह अपने काम-धधे को बदलना चाहता है।

वह बोला, "भइया! अब आप मुझे समझाइए कि मै अपनी 'गुडालत' को नये तरीके से कैसे जमाऊ?"

"गुडालत!" मैं हस पडा, "यह बात हुई न। जैसे वकालत वैसे गुडालत। और वैसे भी इन दोनो पेशो का आधारभूत सिद्धात एक ही है—दूसरो के लडाई-झगडे से अपनी जेब भरो।" फिर मैंने कहा, "मैं देख रहा हू कि एक परिवर्तन तो तुमने कर ही लिया है। अवधी की जगह खडी बोली बोलने लगे हो। थोडा परिवर्तन तुम्हे अपनी वेश-भूषा और शक्ल-सूरत मे भी करना होगा।"

वह कुछ महीनो बाद मुझे मिला। उस दिन भी काफी उदास था। उसकी शक्ल-सूरत देखकर मैने अदाजा लगाया कि उसने मेरे सुझावो पर पूरी तरह अमल करने की कोशिश की है। मैने पूछा, "कहो, क्या हाल है?"

वह बोला, "क्या बताऊ भैया! आप मुझे बड़े मुश्किल रास्ते पर डाल गये। आपने कहा कि मैं राजनीति मे घुसू, क्योकि वहा मेरे-जैसो की बड़ी पूछ है। पर वहा तो 'कापटीशन' बहुत ज्यादा है। मैने जिदगी मे बड़े-बड़े गुडे देखे है। बड़े-बड़े गुडों को अपना शागिर्द बनाया है। पर भैया, ऐसे लोग मैने कही नही देखे।"

मैंने पूछा, "क्यो, आखिर हुआ क्या?"

"पूछो मत।" वह बोला, "यहां तो समझ में ही नहीं आता कि कौन क्या है। हर आदमी इस गुताड़े में है कि दूसरों को लंगड़ी लगा दे। हम गुंडों में इतनी ईमानदारी तो हमेशा रही है कि अपने गुरु और साथियों से दगा न करें। अलग होना हो है तो ताल ठोककर, लड-झगडकर अलग हो जाए। परन्तु वहा तो यही समझ में नही आता कि गुरु कौन है और चेला कौन है ? हर चेला गुरु को गुड़ बनाकर खुद शक्कर बनने की कोशिश करता है। कभी-कभी सोचता हूं कि पुराना धंधा ही अच्छा था, 'न लेनी एक, न देनी दो' बडे आराम से गुजर-बसर हो रही थी।"

मैंने कहा, "जग्गू गुरु ! ना-उम्मीद मत हो। नये क्षेत्र में नये रोजगार को जमने में कुछ समय लग ही जाता है। पंजाबी में एक कहावत है—'पहिले साल चट्टी, दूजे साल हट्टी, तीजे साल खट्टी; मतलब यह कि पहले साल नुकसान उठाना पडता है, दूसरे साल दूकान बनती है और तीसरे साल फायदा होता है। थोडे दिन और कोशिश करके देखो।"

इसके बाद मैंने सुना, जग्गू आम चुनाव में विधान सभा की सीट पर लड़ने के लिए किसी भी पार्टी का टिकट पाने की कोशिश कर रहा है। फिर सुना कि वह निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में ही चुनाव लड़ रहा है।

चुनाव संपन्न हो गये। मैंने अखबार में देखा—जमानत जब्त हो जानेवाले उम्मीदवारों में जग्गू का नाम भी था। मुझे बड़ा अफसोस हुआ···बेचारा जग्गू न गुंडा ही रह सका, न नेता ही बन सका।

पर अभी पिछले महीने जब मैंने सुबह-सुबह उसे दरवाजे पर देखा, तो भौंचक्का रह गया। जग्गू खादी सिल्क के कपड़े और चूड़ीदार पायजामे में बहुत जंच रहा था।

मैंने पूछा, "जग्गू गुरु ! दिल्ली कैसे आना हुआ ?"

परन्तु जग्गू के मुंह से तो खुशी के फव्वारे छूट रहे थे। बोला, "भैया ! दिल्ली तो अब मैं हर महीने-दो महीने बाद आता हूं। यहा मैं इतना बिजी रहता हूं कि आपसे मिलने का मौका ही नही मिल पाता। इस बार थोडा समय मिला, तो सोचा आपसे मिल लू।"

मैं मुह बायें उसे देख रहा था।

वह बोला, "पिछले चुनाव मे मैं हार जरूर गया। आठ-दस हजार की चपत लग गई। पहले तो मैं बहुत पछताया, पर भगवान तो बडा दयालु है। हाथी से लेकर चीटी तक वह सभी का पेट पालता है। मेरे लिए उसने एक दरवाजा बद किया, तो सौ खोल दिये। बस आजकल बडे मजे मे हू।".

"आजकल क्या कर रहे हो ?" मैने पूछा।

"पूछो मत।" वह बोला, "अब तो गुडालत के धधे मे बड़ी जान आ गई है। पिछले कुछ समय मे विभिन्न पार्टियो के सासदो और विधायकों ने जगह-जगह जो कारनामे किये है, वह तो आपने देखे है। विधायक दल बदलते है, और अपनी चादी हो रही है।"

मैं और असमजस मे पड़ गया। विधायकों के दल बदलने से भला जग्गू को क्या लेना-देना है।

पर जग्गू ने मेरी असमंजस की स्थिति से कोई सरोकार नहीं दिखाया। वह बड़े मजे से बता रहा था, "किसी पार्टी के नेता के इशारे पर किसी विधायक को दो-तीन दिन के लिए गायब कर दो, और पाच-दस हजार रुपये ले लो। दल-बदलू विधायक की रक्षा करो, और उसे उसकी पहली पार्टी के लोगो से बचाओ, फिर मजे से पाच-दस हजार पर हाथ साफ कर लो। इसी तरह के सैकड़ो धंधे है अपने पास।"

मैंने कहा, "जग्गू गुरु ! ऐसी स्थिति तो अधिक समय तक नही रहेगी। फिर···?"

तब जग्गू ने यह बात कही, जो समय-बोध को पहचानने वाला कोई जागरूक चिंतक ही कह सकता था। वह बोला, "जो चीज लम्बे समय तक रहती है, वह बेजान होती है। जिंदगी की सच्ची हकीकत उस चीज में है, जिसके बारे में यह भी भरोसा न हो कि अगले पल में वह हमारे हाथ में होगी या नहीं। इसीलिए अपने देश का राजनीतिक जीवन इतनी हरकत से भरा हुआ है। राजनीतिज्ञों से ही मुझे एक बड़े 'गुरु' का ज्ञान हुआ है—वह 'गुर' है—समय थोड़ा है, इसलिए 'एल० एम० बी०' फंड का समय रहते भरपूर इस्तेमाल कर लो।"

मुझे लगा जगमोहन के सामने मैं एकदम बुद्धू हूं। मैं अपने को समझदार व्यक्ति समझता हूं, परन्तु मेरी सारी समझदारी किताबी है। जगमोहन मुझसे कहीं ज्यादा समझदार है। उसने जो कुछ भी सीखा है, सीधा जीवन से सीखा है।

"यह 'एल० एम० बी०' फंड क्या है?"

"तुम नहीं जानते?" उसने आश्चर्य से मेरी ओर देखा, "लूटे मेरे भाई फंड। इतना कहकर वह सोफे पर अधलेटा होकर सिगरेट सुलगाने लगा।"

मृणाल पाण्डे

○

खेल

'धीरे-धीरे बोलो, अम्मा जग जाएगी तो डाट पिटेगी।'

'धीरे तो बोल रहा हूं, तुम सुनती नही हो।'

फिर जोर से ? बोलो क्या—?'

'घर-घर खेलेगी ?'

'खेलूगी, चल प्रताप को भी बुला लाए।'

'परताप कहो, प्रताप थोडेई है, उसका नाम !'

'उहुक्, असली मे तो प्रताप है, परताप तो गलत है।'

'पर उसकी मा तो बुलाती है उसे परताप—!'

'उसकी मा तो नौकर है, नौकर लोग ऐसेई बोलते हैं पर-ताप, परदीप—!'

'नौकरो को कुछ नही आता।'

'अच्छा छवि, नौकर लोग गदे होते है ना ?'

'हा, बहुत। कितनी बास आती है उनसे ना ? एक् छी-छी वाली !'

'पर परताप तो गदा नही है न !'

'है तो, पर वो तो अपना दोस्त भी है न ?'

'दोस्त लोग गंदे नहीं होते ?'

'नहीं। और फिर अगर उसको नहीं बुलाएंगे तो घर-घर खेलते समय नौकर कौन बनेगा ?'

'मैं बुलाऊं ? एकदम धीमे-से जाऊंगा, अम्मा को पता भी नहीं चलेगा।'

'नहीं, तू हल्ला मचा देता है, पिछली बार गमला गिराया था तो डांट पिटी थी कि नहीं ?'

'अच्छा, ऐसा करते हैं, दोनों जाते हैं धीरे-से। अरे ! परताप तो यह बैठा है आंगन के पास ! ओए परताप ! इधर आ—।'

'श्शऽ बबलू ! तू डांट पिटवाएगा हम सबको ! ओ परताप, घर-घर खेलेगा ? देख, हमारे कमरे में पंखा भी चला हुआ है।'

'बीबीजी ?'

'अम्मा सो रही हैं अभी। आजा न !'

'चलो, क्या-क्या निकालें छवि ?'

'ऐसा करते हैं कि ये पलंगपोश इन दोनों कुर्सियों पर बांध देते हैं, छत बन जाएगी अपनी। ऐ परताप ! बांध तो जरा ! बबलू, तू इधर से पकड़ ले ठीक से, ठीक से, बस ठीक है। अब बबलू तू बन जा पापा और मैं अम्मा।'

'बीबीजी मैं ?'

'तू नौकर हुआ न—?'

'बीबीजी, मैं हर बार नौकर नईं बनगा। कल भी बबलू भैया साहब बना था, उससे पहले भी।'

'छवि, इस बार परताप को पोस्टमैन बना दें ?'

'उहुंक, पोस्टमैन तो एक ही बार आता है··· बाकी टाइम ये क्या करेगा, खड़ा खड़ा ?'

'अच्छा ? तो फिर माली—?'

'माली बनेगा परताप ?'

'नहीं, मैं तो कोई बड़ा आदमी बनूंगा। मालो भी तो नौकर होता है।'

'पर, तेरे कपडे तो फटे हैं, तू कैसे बनेगा ?'

'अच्छा, बब्लू छोड़ भी, चल तू डाक्टर साहब बन जाना।'

'ठीक है।'

'पर, छवि डाक्टर तो मैं बनूगा।'

'पर तू तो पापा है न ?'

'नहीं, मुझे नहीं बनना पापा-वापा। बस, घर आ कर सोफे पर बैठना भर होता है। बाकी सब काम तो तुम करती हो। तुम हमेशा अच्छी चीज खुद ले लेती हो।'

'अहाआ, जैसे तुम तो कुछ मजे करतेई नई। जेब से रुपया निकाल-निकाल कर कौन ले जाता है ? मोटर में आगे-आगे आफिस कौन जाता है ?'

'तो आफिस जा कर कोई मजे थोड़े ना होते हैं ? दरवाजे के पीछे बैठे रहना तो होता है बस, जब तक तुम बुलाती नहीं। और तुम कितने मजे से खाना भी पकाती हो, घर भी बनाती हो, अम्मा की धोती भी लपेट लेती हो मजे से।'

'तो तुम भी लपेट लो ना, मना कौन करता है ?'

'आहा जी, मैं कोई लड़की हूं क्या ? चल यार परताप, अपन कचे खेलें ! ये लडकिया तो बस सबका मजा बिगाड़ देती हैं।'

'जरा ले जा के देखो परताप को, मैं अभी जाके अम्मा से कह दूगी कि बब्लू परताप के साथ बाहर धूप मे कचे खेल रहा है।'

'आहा-हा —'

'आहा, आहा क्या ? खूब कहूंगी, और परताप तू इसके साथ गया तो तेरी भी शिकायत कर दूगी।'

'बीबीजी, मैंने तो खेलने को मनाई नई किया न ? मै तो

डाक्टर बनूंगा।'

'आहाहा, डाक्टर बनूंगा! बड़े आए हैं! मुह देखा है अपना? डाक्टर बनने के लिए पता है पहले इंगलिश सीखनी होती है। तुझे आती है? बोल, आती है अंग्रेजी तुझे? बता कप की स्पेलिंग क्या होती है?'

'मैं बताऊं, छवि, तुझे आती है—सी-यू—

'तू चुप कर। बता आती है तुझे?'

'तो क्या हुआ? मुझे छह तक के पहाड़े तो आते हैं। मास्टरजी ने शाबाश कहा था मुझसे! मैं भी तो इस्कूल जाता हूं!'

'पहाड़े से क्या होता है? इंगलिश आनी चाहिए। हम लोग तो स्कूल में इंगलिश पढते हैं। तेरा स्कूल तो फटीचर है हिंदी वाला। पहले अंग्रेजी सीखते हैं, फिर बनते हैं डाक्टर जैसे—!'

'जैसे अपने जयन्त मामा है ना?'

'मालूम है, हमारे जयन्त मामा सिर्फ इंगलिश बोलते हैं। वो इंग्लैण्ड गए थे पूरे दस साल के लिए। इंग्लैण्ड मालूम है, विलायत!'

'और क्या? मालूम परताप, छवि के और मेरे लिए वहां से एक-एक खिलौना भी लाए थे।'

'पर अम्मा देती कहां हैं?

'हां, मालूम परताप, अम्मा ने उन्हे अपनी इलमारी में ऊपर बंद कर दिया है। कहती हैं मंहगे खिलौने हैं—, टूट जाएंगे। देसी नही, इम —!'

'इम-इम क्या?'

'इम्पोर्टेड।'

'हां, इम्पोर्टेड हैं। यहा तो मिलेंगे भी नहीं, बहोत महंगे हैं।

'अच्छा?'

'और क्या ? बहोत-सी चीजें लाए थे जयंत मामा अम्मा के लिए, पापा के लिए—सब के लिए।'

'पर पापा तो कहते हैं कि उनकी कमीज बडी घटिया है, है न छवि ?'

'पापा तो वैसे ही कहते है लड़ाई करने को। अम्मा रोती है न फिर।'

'पापा गन्दी बातें कहते है।'

'मेरा बाप भी कहता है, जब दारू पीके आता है न, बौत गन्दी बातें कहता है, मारता भी है हम लोगो को।'

'तेरा बाप गन्दा है, रे ?'

'बौत गन्दा है साला !'

'ही-ही-ही-ही-ही।'

'तुझे अपना बाप अच्छा लगता है रे ?'

'नहीं भैया, जब मैं बडा हो जाऊंगा न, खूब बड़ा, तो मालूम है क्या करूंगा ?'

'क्या ?'

'बताऊं ? उहूं, तुम लोग कह दोगे सबसे। उहुंक, नई बताता, तुम बडे लोगों का क्या भरोसा ?'

'बता न — हम किसी से कहने थोड़ेई जा रहे हैं ! क्यों बबलू ?'

'नही, एकदम नही। बता न यार ! देख, फिर चाकलेट भी देंगे तुझे।'

'मैं घर से भाग जाऊंगा।'

'सच्ची ?'

'सच्चीई।'

'पर, कहा जाएगा ?'

'बस, भाग जाऊंगा कही भी, दिल्ली, मंबई, किलकत्ता—।'

'दिल्ली में तो हमारे जयन्त मामा भी रहते हैं त्ये बड़ी गाड़ी

है उनकी !'

'तो ठीक है, मैं उनका डरेवर वन जाऊंगा।'

'फिर जब हम आएंगे तो हमें गाड़ी में दिल्ली घुमाएगा न, डर्र-र्र-र्र-र्र—।'

'अरे बबलू हल्ला नईं, अम्मा जग जाएगी, धीरे-धीरे बोल—।'

उह, जग, जाएगी, सोई थोड़े ना है !'

'तो क्या कर रही है ?'

'आंख पर हाथ रख कर रो रही होगी, लेटे-लेटे।'

'धत्—!'

'धत्—क्या, रोती नहीं है जल्दी से ?' उसे ये जगह एकदम अच्छी नही लगती—'

'आहाआ, तुझे कैसे पता ?'

'पता कैसे नई, रात को पापा से कह रही थी—'

'अम्मा यहां आ कर हंसती भी नहीं, बस खाली-पोली डांटती है हरदम !'

'मैं बताऊं छवि, घर-घर में अम्मा को नहीं रखते इस वार्। तू पापा बन जा, मैं जयन्त मामा, और-और परताप—।'

'परताप ड्राइवर—। क्यो ?'

'ठीक है वी-वी-जी—।'

'पर छवि, विना अम्मा के घर-घर कैसे खेलेंगे ?'

'सोच लो—सोच लो कि, कि अम्मा मर गई—।'

'छि—'

'छि क्या ? सच्ची-मुच्ची थोड़े ही मरेगी, जैसे दादी मरी थी ! ऐसे ही झूठी-मूठी।'

'अच्छा ठीक है। चल, चल परताप, तू उधर खड़ा हो जा।'

'हलो, जीजाजी—!'

'कहिए जनाब ! कब आए ?'

'आज सुबह ही तो—पर छवि पापा तो खुद स्टेशन गए थे, मामा को लाने—।

'अच्छा, अच्छा, हम दिल्ली मे खेल रहे है ऐसा समझ, बस ?'

'क्या पीजिएगा जीजाजी ?'

'सिगरेट !'

'हट पागल, पीने वाली चीज, माने चाय-वाय मागो ।'

'हम तो सिगरेट पीएगे—।'

'अच्छा । अबे ओ, परताप ।'

'हा भैयाजी !'

'अबे, भैयाजी नही, सलूट करके बोलो—यस सर ! तुम ड्राइवर हो ना ।'

'यस सर ।'

'जाओ, एक पैकेट सिगरेट और चार कोका कोला और चार फैण्टा ले आओ । और सुनाइए जीजाजी, हाउ इज बिजनेस ?'

'टायरिंग, टायरिंग, बहुत काम है सुबह से शाम तक—।'

'ले आया सिगरेट ! शाबास, साहब को दे, और ये फैण्टा खोल कर दे, एक तू भी पी ले ।'

'अरे बबलू, फ्रीज मे अपनी हिस्से की चाकलेट पडी है न, चल खाते है, परताप को भी देंगे, अच्छा परताप ?'

'ये ले परताप—अच्छी है ?'

'बढिया ! ये विलायती मिठाई जो है न, इसकी पन्नी मेरे पास भी है ।'

'जयन्त मामा ने हमे चार-चार दी थी ना ? याद है छवि तुझे !'

'हां, पर अम्मा ने बाकी वाली ऊपर रख दी थी कि एक साथ खाओगे तो बीमार हो जाओगे।'

'अम्मा बड़ा बोर करती है।'

'पापा भी—।'

'मेरा बाप भी।'

'ही-ही-ही-ही'

'अरे परताप, बबलू देख, कित्ती बढ़िया तितली!'

'पकड़ लाऊं, बीवीजी ?'

'बैठने दो बस, अभ्भी देखना।'

'अरे बबलू, उसने सच्ची पकड़ ली। आहा हा, कित्ती सुन्दर है न बबलू!'

'देख छवि, हाथ-पैर भी हैं इसके।'

'आखें भी हैं भैयाजी।'

'इसका एक पैर नोचें छवि ? है ? नोचें ?'

'देखो-देखो, बाकी पैर कैसे हिलने लगे!'

'एक और—अरे, इसका पंख तो फट गया, अब तो इसे कापी में नहीं चिपका सकते।'

'छोड़ दें बीवीजी ? मर जाएगी।'

'तो क्या हुआ ? तितली ही तो है ना ? अरे गधे, छोड़ क्यों दी—!'

'पकड़, पकड़। बेवकूफ कहीं का।'

'बीवीजी, हमको गधा-वधा मत कहो।'

'वर्ना क्या ? हां, क्या है ?'

'वर्ना मैं नई खेलूंगा। तितली भी नई पकड़ूगा।'

'मत खेल! पहले तो चाकलेट हमारी खा गया, फिर रोब जमाता है। इत्ती बढ़िया हमारी तितली भी उड़ा दी! जा भाग!'

'जाता हूं, अब मत बुलाना खेलने को—।'

'बुलाएंगे, सौ वार बुलाएंगे, और तू सौ वार आएगा, नौकर है तू।'

'मैने कहा न कि मैं नौकर नही—।'

'क्यों नहीं ? आदमी का बच्चा आदमी और नौकर का बच्चा नौकर ! लालची कहीं का, चल बबलू, अपन दोनों खेलें।'

'परताप तो सच में चल गया छवि—।'

'जाने दे, वो गन्दे लोग हैं—अपन उनसे नहीं खेलते।'

'पर वो कचे देता है छवि, इमली तोडता है, पतंग को छुटैया देता है।'

'वो तो सब नौकर करते है।'

'तुम तो गन्दी हो, तुम सब को भगा देती हो।'

'आहा, तो वो लड़ता क्यों था हम से ?'

'तुमसे लडता था, मुझसे तो नही !'

'तो घर-घर खेलने को तुम्ही ने तो उसे बुलाया था !'

'तुमने भी तो !' मै नही खेलता तुम्हारे साथ घर-घर—।'

'क्यो ? अभी तो इत्ता अच्छा घर बनाया है···।'

'घर-घर में बहुत झगड़ा होता है।'

'तो अम्मा-पापा वाला घर-घर नही खेलेंगे—जयन्त मामा और पापा वाला खेलेंगे—।'

'नही, उसमें भी होगा, कैसाई घर-घर खेलो, झगडा तो ई है।'

'अच्छा तो चल स्कूल-स्कूल खेलें, बस ? उसमे तो नही होगा ?'

'नही, उसमें भी तुम हमेशा टीचर बनती हो, मुझे बच्चा बनाती हो और कोने मे खड़ा कर देती हो।'

'पर, तू कैसे बनेगा टीचर ? तुझे स्पेलिंग भी तो ठीक से नही आते।'

'तुम्हें भी तो नही आते।'

'मैं तुमसे एक क्लास ऊपर हूं, मुझे तो आते हैं, मैं तो 'काव' पर पांच सेण्टेन्स भी लिख सकती हूं।'

'हमें नही खेलना तुम्हारे साथ बस। गलत-सलत अंगरेजी बोलती हो तुम, तुम्हें भी कोई सही अंगरेजी थोड़े ही आती है। अम्मा कहती थी—।'

'क्या ?'

'मैंने सब सुना था रात को, अम्मा पापा को कह रही थीं कि यहां आ कर बच्चों की अंगरेजी खराब हो गई, स्कूल खराब है, टीचर भी। नाम को अंगरेजी स्कूल है, टीचर सब हिंदी बोलते हैं—सब छोटे लोगों के बच्चे भी जाते हैं वहा।'

'मुझे तो अपने टीचर अच्छे लगते है। यादव सर तो खुद चुटकुले सुनाते हैं, मालूम उन्हे गीदड़ और कुत्ते की बोली बोलना भी आता है, वहा तो मिस लोग बस अंग्रेजी बोलती थी और हंसती भी नही थी, और उन्हे चुटकुले भी नही आते थे।'

'मुझे तो यहा अच्छा लगता है —।'

'मुझे भी—।'

'पर अम्मा को तो नही लगता।'

'जयन्त मामा को भी नही। याद है, कहते थे कैसी फटीचर जगह है।'

'कोई नही, जयन्त मामा खुद फटीचर है।'

'हा-हा—।'

'चल अब, खेलना-वेलना मुझे है नही। चल, चीजें वापस रख दें, नहीं तो अम्मा उठेगी तो गुस्सा करेगी। उठा कुर्सी।'

'मैं नही रखता, तूने तो पलगपोश हमसे उठवाया था, अब तू रख वापस—।'

'ठीक है, अब आना मेरे पास खेलने घर-घर। दो घूसे

दूंगी। तुम लड़के लोग होते हो ऐसे हो। पहले सब सामान इधर-उधर करवा के घर-घर बनाते हो, फिर सम्भालते वक्त खुद बाहर भाग जाते हो—सब हमारे सिर छोड़ कर—।'

'तुम्ही तो बुलाती हो घर-घर खेलने।'

'तुम्ही तो आते हो, सब घर बरबाद कर दिया मेरा—।'

रामदरश मिश्र

○

घर लौटने के बाद

कालेज से लौट रहा था। आज नया इनक्रीमेंट मिला था, खुश था मैं। तनख्वाह की हल्की-हल्की आंच स्पष्ट रूप से अनुभव कर रहा था।

कांव···काव ··काव···

मेरी निगाह बाईं ओर घूम गई। एक गधा चुपचाप खड़ा था। और कौए उसका मास नोच-नोच कर भाग रहे थे। स्थितप्रज्ञ गधा कभी-कभी असह्य व्यथा से अपने कान फड़फड़ा देता था। इतना असहाय था कि अपना मास नोचते हुए कौओ से प्रतिवाद करने की भी शक्ति उसमें नही रह गई थी। गधावाला अपने बीस-पच्चीस गधे लिए धीरे से आगे निकल गया, उसने मुड़कर उधर देखा भी नही। मेरा मन क्रोध और घृणा से तिलमिला गया। मुझे नरक की सुनी-सुनाई कहानियां याद आ गई। खून और पीब की नदी मे फंसा हुआ आदमी, नीचे बिलबिलाते हुए बड़े-बड़े कीड़े काट रहे हैं और ऊपर से चील कौए मांस नोच-नोच कर भाग रहे है।

मैंने एक बार ढेला मारकर कौओं को भगाया। कौए कांव-

कांव करते झपाटे से भाग गए और फिर टूट पड़े। मुझे गधे वाले पर घृणा मिश्रित क्रोध आ रहा था। कितना कृतघ्न है यह आदमी ? जिन्दगी भर इससे काम लिया और बूढ़ा होने पर बेरुखी से छोड़ दिया चील कौओं के लिए। उसके सामने ही कौए इस जीवित गधे की बोटी-बोटी नोच रहे हैं और यह बेवफा आदमी एक बार मुड़कर देखता भी नहीं···।

और मैं अपने मौहल्ले में आ गया। अपने पड़ोसी मकान की ओर मेरी निगाहें आदत के अनुसार उठ गईं। एक मरियल बूढ़ा नीचे रखी हुई एक साइकिल लेकर सीढ़ियां चढ़ रहा था। अभी दो साइकिलें और रखी हुई थीं नीचे। बरामदे में वही अधेड़ मुटल्ली औरत, उसकी गुलाबी लड़की और सोने के फ्रेम का चश्मा लगाए हुए उसका कालेजियन बेटा निर्लिप्त भाव से बैठे रेडियो सुन रहे थे। बूढ़ा साइकिल लेकर सीढ़ी पर गिर पड़ा था। मुटल्ली औरत रह-रह कर गरगरा रही थी—क्यों रे कमीना, नखड़ा करता है। खाने को तीन सेर और एक साइकिल नहीं चढ़ती है।

गधे वाला दृश्य अभी मन में बास मार ही रहा था कि दूसरा दृश्य टूट पड़ा।

बूढ़ा गधा, बूढ़ा आदमी, क्या फर्क है दोनों में। दोनों अपनी अपनी लम्बी यात्राओं के बाद घर वापस आए हैं थके-हारे, परिवार के बीच विश्राम करने के लिए, लेकिन घर का कोई इन्हें पहचानता ही नहीं। इनके जिन अंगों की कमाई से घर महक रहा है, जिन मटमैली आंखों के आशीर्वाद की छांह में बच्चे बड़े हुए हैं उन पर कोई प्यार से हाथ नहीं फेरता। घाव कर रहे हैं लोग। इनकी हड्डियों में अभी भी थोड़ा रस है निचोड़ लो उसे।

वह बूढ़ा साइकिल लेकर जोर से गिर पड़ा। साइकिल झनझनाकर नीचे गिर पड़ी। अधेड़ औरत जोर से गरगराती

हुई उठी और बूढ़े को पांव से ठेलती हुई गरजी—हरामजादा साइकिल खा जाएगा। बूढ़ा अपना घाव ठंडी आंखों से सेंकता हुआ उठा और फिर साइकिल की ओर बढ़ा।

मुझे ऐसा लग रहा था कि मैं सह नहीं पा रहा हूं। इच्छा हुई कि जाकर तीनों साइकिलों को उठाकर बरामदे में बैठी तीनों जड़ मूर्तियों पर दे मारूं। मगर यह भी कोई बात हुई—दूसरे के काम में दखल देना कहां की इच्छा है? आधुनिक सभ्यता में दूसरों के काम को छेड़ना गंवारुपन का लक्षण है। यहां तक कि कोई अपने को मारे या स्त्री की आबरू उतारे तो भी उसे मारने की छूट नहीं। कचहरी में जाओ। सौ तरह के दाव-पेचों से अपराधी छूट जाता है और मार खाने वाला या आबरू खोने वाला अपना ठंडा घाव लिए न्याय को ओढ लेता है।

गधे वाला दृश्य फिर दिमाग में घूम गया। मुझे लगा कि मैं गधेवाला का अपमान कर रहा हूं। गधे वाले ने थके-हारे गधे को छोड़ दिया है, उससे अधिक पेरता तो नहीं, उसे खाने वाले चील कौए हैं। लेकिन यहां तो स्वयं इस बूढे आदमी के घर वाले इसकी बोटी-बोटी नोच रहे है। ये चील कौए नहीं, नायलोन टैरेलिन के कपड़े पहनने वाले, आंखों पर सोने के फ्रेम का चश्मा लगाने वाले, इत्र से देह की दुर्गंध दूर करने वाले, भूगोल-खगोल-अंतरिक्ष के समाचार सुनने वाले और रेडियो का संगीत पीने वाले शरीफ आदमी है। इन शरीफों के तन-मन में इस बूढे व्यक्तित्व का ऋण है। उसे चुकाने का शायद शरीफ तरीका यही हो।

मेरा इनक्रीमेंट मेरी मौत के पैगाम का सा लगा। हां, यह आखिरी इनक्रीमेंट है, ठीक इसी दिन साल भर बाद मैं भी घर वापस लौटूंगा लम्बी यात्रा की वापसी पर घर वाले मुझे भी पहचानेंगे कि नहीं कौन कहे?

मैं घर आकर कुर्सी पर बैठ गया। तनख्वाह के पैसे जेब

से निकाल कर बेरुखी से पत्तों की ओर फेंक दिए ।

जी नहीं लगा तो आज जल्दी ही घूमने निकल गया। मेरे आस-पास के अवकाश को उसी बूढ़े की तस्वीर तलवार की तरह काटती निकल जाती थी। मुझे बार-बार लग रहा था कि इस तस्वीर मे कही मैं भी हू और बहुत से लोग है तरह-तरह के लोग-यात्रा से लौटे हुए, थके हारे···

हम लोग इस मकान में नए-नए आए थे। मैं खिड़की खोल-कर सोगया हुआ था। चार बजे सुवह ही गड़गड़ाहट से मेरी नीद टूट गई। सुना पड़ोसी के घर से कोई भारी नारी-स्वर भद्दी ऊचाई से गालियां उगल रहा है। यह प्रभाती मेरे लिए नई थी। पता नही किस भाग्यवान को यह सुखद नारी कठ इतने प्यार से जगा रहा है। वह जगा हो या न जगा हो मुझे तो जागना ही पडा। पडोसी के घर मे फैले हुए प्रकाश को देखकर अनुमान लगाया कि शायद कोई अलख सुबह ड्यूटी पर जाता होगा, नौकर काम की आपाधापी मे कोई सामान तोड़ बैठा होगा, उसी के ऊपर यह सारा आशीर्वाद बरस रहा है। होगा कुछ, अपने को क्या इन पराई बातो से ? लेकिन रह-रह कर वह नारी कंठ अपनी गरगराहट से सावधान कर दे रहा था। मैं समझ नही पाता था कि माजरा क्या है।

मैं अपने अहाते मे ही घूम-घूमकर दातून कर रहा था। देखा एक पीला सूखा सा बूढ़ा शरीर एक बाल्टी उठाए घर में से डगमगाता निकल रहा है। बाल्टी मे घुले हुए कपड़े कसे थे। वह मरे मन से अहाते मे बधी हुई रस्सियो पर कपड़े फैलाने लगा। मैं उससे दो ही गज के फासले पर था और करीब बीस मिनट रहा लेकिन उसने एक बार भी आख उठाकर मुझे नही देखा, शायद यही उसके लिए सहज था।

'दीनू भाई।'

'आया बेन।'

'अरे बेन के बच्चे। चाय की जूठी प्यालियां कब से पड़ी हुई हैं, ठोकर से एक टूट भी गई। इन्हें तेरा बाप धोयेगा।'

वह कपड़े छोड़ कर चला गया। थोड़ी देर बाद लौट आया। फिर कपड़े झाड़-झाड़ कर अलगनी पर डालने लगा।

मैं बरामदे के आर्म चेयर पर फैला हुआ एक उपन्यास पढ रहा था, फिर चौका एक मधुर आवाज से। एक गुलाबी रंग वाली पतली सी जवान लड़की बूढ़े पर बरस रही थी। उसके पतले लाल-लाल होंठों से गालियां अनायास फिसल रही थी। उसकी हरिणी के समान चचल बड़ी कजरारी आखों से रोष का जल बिना कष्ट से झर रहा था। मैं सामने ही था लेकिन उसने भी मुझे नहीं देखा। एक अजीब परिवार है जो किसी की ओर देखता ही नही, बस अपनी ओर देखता है।

बूढ़ा कुछ बोला।

'चुप, एक चुप हजार चुप, शरम नहीं आती सटर-सटर जबान चलाते। अभी गिर गई होती तो सिर फट गया होता। चौके में पुचाए भी नही किया और बहस कर रहा है।'

वह बूढ़ा फिर चला गया। मैंने देखा कि खिड़की पर खड़ा होकर टाट का एक टुकडा निचोड़ रहा था शायद पुचाए करने के लिए ?

वह लड़की अनासक्त भाव से गुलाब के फूलो की ओर बढ गई, दो चार फूल तोड़े और कबूतर की चाल से मटकती अन्दर चली गई।

कौन है यह लड़की, यह गुलाब कन्या ? शायद इसकी लडकी हो, या भतीजी हो या पोती हो, कुछ तो होगी ही। शायद पढ़ती होगी किसी कालेज में।

'ओ दीनू भाई…।

'आया बेन।'

मेरा चित्त भिन्ना गया। धम-धम की आवाज आ रही थी

और साथ ही उस मुटल्ली की गरगराहट भी। शायद पीट रही है। बूढ़ा रो भी नहीं सकता।

इच्छा हुई कूद कर पैठ जाऊं घर में और···और···और क्या···मैं क्या-क्या सोच जाता हूं। कोई अपने घर में चाहे कुछ भी करे मुझे क्या ? मुझे लगा कि मेरे भीतर जवानी है तभी तो हर जगह कोई सरोकार न होने पर भी सरोकार जोड़ लेता हूं।

फिर तो मैं अभ्यस्त हो गया इन घटनाओं का। सुबह-सुबह बरसात से जाम हो गए किवाडों को ठक-ठक पीटने की आवाज आती, समझ जाता दीनू भाई हैं। आधी रात तक खट-खट खुट-खट काम चला करता। हर खट-खट खुट-खुट मे दीनू भाई की अंगुलियां जुडी हुई हैं। यह सत्यबोध मुझे प्राप्त हो गया था।

दीनू भाई अपने अहाते में बन्दी थे। किसी ने उन्हे बाहर निकलते नहीं देखा। वही फटा पायजामा और वही फटी कमीज पहने घर से अहाते में अहाते से घर में प्रेतात्मा की तरह भटकते रहते।

मेरे मन मे हमेशा एक जिज्ञासा अकुलाती रहती—कौन है यह बूढा ? धीरे-धीरे रेंग-रेंग कर आने वाले समाचारो को जोड़ा तो जो चित्र तैयार हुआ वह यह है—

यह बूढ़ा इस मोटी औरत का श्वसुर है। इसका अपना कहा जा सके, ऐसा कोई नहीं, यों इसने तो सबों को अपना ही समझा, तभी तो सन्तानहीन पत्नी के चल बसने के बाद इसने शादी नहीं की। अपने छोटे भाई और उसकी संतानों को ही अपना मान कर उन्हें जीवन-रस पिलाता रहा। सुनता हूं रेलवे मे कहीं हैड क्लर्क था। भाई को अपने पैसों से पढाया और उसकी संतानों को प्यार की छाह में बड़ा किया।

मैं कल्पना की आखों से देख रहा था कि यह गुलाबी लड़की जो अभी इस बूढ़े पर गाली की टोकरी उलट गई है, एक नन्ही

सी बालिका है, दीनू भाई की गोद में खेल-खेलकर बड़ी हो रही है। आफिस से आते ही दीनू भाई इसके लिए फल भी लाते हैं, कतरे काट-काटकर खिलाते है, त्यौहारों पर बढ़िया रंगीन कपड़ो में इसे गुड़िया की तरह सजाते हैं। ताऊ के गुलाबी प्यार में गुलाबी होती जा रही है यह बालिका। ''और यह मुटल्ली किसी दरिद्र घर से आई है चूसे हुए आम की तरह व्यक्तित्व लिए। दीनू भाई के पैसो में बड़ी शक्ति है। दिन-दिन मोटी हो रही है यह, अग-अंग उभर रहा है, आराम मे थुल-थुल होती जा रही है।'''और यह सोने के फ्रेम का चश्मा लगाए जो गोरा-गोरा लड़का स्कूटर से कालेज जाता है उसकी गोराई में दीनू भाई का व्यक्तित्व साफ झलक रहा है।

मगर आज दीनू भाई का अपना कोई नही है। छोटा भाई इनश्योरेन्स आफिस में कोई साहब है। उसका लडका (इस मोटी औरत का पति) वकील है। दीनू भाई अब नही कमाते, घर वापस आ गए हैं पचपन साल के बाद। दीनू भाई ने कुछ जमा नही किया। जमा किया तो इस परिवार के खून मे किन्तु यह खून इन्हें नही पहचानता। प्रावीडेन्ड फन्ड के रुपयों से यह बगला बना है लेकिन यह इनके लिये पराया घर है। क्या सच-मुच पैसा ही सारे सम्बन्धों का सूत्रधार है ?

मै सोच रहा हूं क्या मुझे भी नहीं पहचानेंगे लोग ? मैने भी तो कुछ नहीं बचाया है, घर के निर्माण में ही खपाता रहा अपने को। हा ये अपने बेटे हैं, अपनी बहुएं है, अलग-अलग जगहों पर रहते हैं। किसके यहा जाऊंगा ?

उदास-उदास सा कमन्टी बाग पहुंच गया। यह बड़ौदे का सबसे बड़ा बाग है। बीच में एक बड़ा सा मंडप, चारों ओर स्वस्थ प्रस्तर मूर्तियां, काफी विस्तृत हरी दूबों से भरा लान, मेंहदी की कटी-छटी रविशें, एक बनावटी तालाब और तमाम बेचें। मैं एक बेंच पर बैठ गया। कुछ बात-चीत के कोलाहल से

मेरा ध्यान टूटा। देखा बीस-बाईस बूढ़े आस-पास बैठे दांतहीन जबड़े चला रहे है। ओह ! मैं रिटायर्ड बेंच के पास आ गया हू। हां, लोग इन बेंचों को इसी नाम से पुकारते है। तिजहर होते ही बीस-पचीस रिटायर्ड जिन्दगियां इन बेंचों पर आ लुढ़कती है। मैंने आज तक इनकी ओर ध्यान नही दिया लेकिन आज तो ये ही ये मुझमें भर गए हैं, इन सारी आकृतियों मे अपने को देख रहा हू।

मैं चुपचाप इनकी बातें सुनने लगा लेकिन कोई सूत्र पकड़ मे नही आ रहा था। आपस मे इनकी बातें बजबजा रही थीं एक ऐसी भनभनाहट फैल रही थी जिसका अर्थ कुछ भी नही होता। शायद इसका एक ही अर्थ है सूत्रहीनता, भन्नाहट यहा से वहा तक···

काफी देर तक सुना तो लगा कि ये सबके सब भिन्न-भिन्न तरह से एक ही बात बक रहे है—दर्प भरे बीते दिनों की उदास यादें, वर्तमान पीढी की नागवार हरकतें, श्रद्धाहीनता और कभी-कभी अपने बेटो की तरक्की की खोखली आत्मतुष्टि।

मुझे लगा कि इस मंडली के सभी सदस्य ऊंचे ओहदों पर रह चुके है और इनके परिवार के लोग खुशहाल है। दीनू भाई के ठीक विपरीत ये लोग आराम से घर पर बिठाए गए हैं वक्त पर खाना खा लिया, अकेले कमरे मे बैठे-बैठे माला जप ली, गीता-रामायण का पाठ कर लिया, बीच-बीच में खांस दिया और छोटे-छोटे बच्चों को खेला दिया, कभी-कभी अपने बेटे या पोते को उसकी किसी हरकत पर डांट दिया। यहां दर्द का दूसरा पहलू है—समय नही कटता। पाकुर-पाकुर दंतहीन मुह चलाते ये कब तक बैठे रहेगे चुपचाप। चाहते हैं कुछ बोलना, कुछ दखल देना। किन्तु घर वालों ने बड़े सम्मान से इनसे प्रार्थना कर रखी है कि आप हरि स्मरण कीजिए आपको घर की परेशानियों से क्या वास्ता ? ये भगवान का भजन करते हैं।

मैं इनकी बातचीत अब कुछ-कुछ समझ रहा हूं और यह जानकर आश्चर्य हो रहा है कि इनका आराम इन्हें जीने नहीं देता। घर वालो ने इन्हें बन्द कर रखा है मन्दिर के देवता की तरह। लड़के वाले अच्छे पदों पर है। कोई इनसे राय नहीं लेता। ये किसी हरकत पर इन्हें टोकते हैं तो बड़े भक्ति-भाव से इनकी प्रार्थना करते है कि आपको इन सब पचडो में पड़ने की क्या आवश्यकता ? बच्चे, बच्चियां बहुएं सभी भक्ति-भाव से इनकी उपेक्षा कर जाती हैं और ये अपने सामने बहते हुए जीवन प्रवाह के तट पर पड़े-पड़े तुच्छ तिनके की तरह रह-रह कर कांप उठते है अपनी सारी संवेदनाओ को अपने मे बन्द कर। मन्दिर के देवता तो केवल प्रसाद और घटा ध्वनि पाने के अधिकारी होते हैं।

मैं देख रहा हूं इनके पोपले मुहो के हिलते होठों को, इनकी सूनी आखो में उठती-गिरती परछाइयो को।

यह भी कोई जिन्दगी है दोस्त। अपने घर में ही पराया, कोई कुछ सुनता ही नहीं। एक जमाना वह था कि एक आर्डर पर पूरा आफिस दहल जाता था—आंखों का तेवर देखते ही कर्मचारी कांपने लगते थे जिस रास्ते से गुजरा जनसमूह भय से सामने बिछ गया। गाव में गया तो जैसे आधी आ गई। क्या जमाना था वह जैसे धारा की तरह आते और बह जाते थे। कितने पैसे कमाए ? तब सारा परिवार मेरी इच्छा के एक संकेत पर उठता-गिरता था। मेरा एक-एक शब्द अमृत के समान पीते थे लोग। और अब भौंकते जाओ लेकिन सुनता है कोई ?'

'अरे भाई दुनिया ही पैसे की दोस्त है।' कह कर कोई बूढ़ा हंस पड़ता जैसे बहुत बड़ा सत्य कह दिया हो।

शाम काफी गहरा गई। वे धीरे-धीरे उठकर डगमगाते पैरों से चले गए। एक दर्द मेरे मन में रिस रहा था। आज मुझे क्या हो गया है ? सोच रहा था क्या ये लोग दीनू भाई से अधिक

सुखी हैं। शायद है, शायद नहीं है।

मुझे लगा कि उन बैंचों से निकल कर कुछ जवान छायाएं अंधकार भरे आकाश में फैल रही है। मैंने विजली के हल्के-हल्के प्रकाश में गौर से देखा इन जवान छायाओं की आकृतियां इन बूढ़ों से कुछ मिलती-जुलती है।

यह कलक्टर है दर्प उछाल रहा है···"मैं जिले का स्वामी हूं किसी को बना विगाड सकता हूं—' एक मिल मालिक एक बड़ा सा गड्डा (शायद नोटों का है) लिए सामने खड़े है। छाया मुस्कराती है।

यह पुलिस अफसर है कितने अपराधियो निरपराधियों को हांक रहा है रस्सियों में बाधे हुए। रुपयों की बड़ी-बड़ी थैलियां उछाल रहा है, अट्टहास करता है···।

यह मजिस्ट्रेट है इसकी कलम की नोक चमचम चमक रही है इस्पात के चाकू की तरह। इसके चोगे में बगल से कोई एक बडी सी थैली ठूस रहा है और यह लिखा हुआ फैसला काट रहा है जैसे तेज चाकू से फेफड़ा चीर रहा हो···

और···और···ये बहुत सी छायाएं है दर्प से गुर्रा रही हैं। अधिकारों की धधकती आंच में इनकी ही आंखें चौंधिया रही है।

ओह, लगता है कि ये छायाएं बैंचो में समा गई है ये बैंच धीरे-धीरे सिसक रहे है।

मैं पागल हो गया हू क्या? कही कुछ तो नही, न छायाएं न सिसकिया। हां शायद पागल हो गया हूं। इन रिटायर्ड बैंचों के पास बैठने से तो हो ही जाऊंगा।

मैं धीरे-धीरे घर वापस लौट रहा हूं। और सुन रहा हूं गरगराती आवाज—'दीनू भाई' 'हा बेन'। और खटखट-खुटखुट काम की गति की आवाज और हर आवाज में दीनू भाई की व्यथा जो मुझे अपनी लग रही है।

रमाकान्त

भय लौटा दो

उसे भय हो रहा था।

खौफनाक, मरणांतक भय।

उसका कोई कारण नहीं था, और न वह उसकी कोई परिभाषा ही कर सकता था। एक अस्पष्ट, अचीन्हा भय। उसे यह भी नही पता कि यह कब से शुरू हुआ? अगर कोई कारण था तो वह जानता नही था।

एक बार बहुत पहले उसने कुछ लोगों को डडों से किसी कुतिया को पीटते देखा था। उसका पिल्ला किसी घूरे के पीछे दुबका की···की···कर रहा था। लाठी लेकर चलने वालों को देखकर उसके आगे हमेशा यह दृश्य खिच उठता, पर कभी उसे भय नही लगा था। मारने वालो ने बताया था कि कुतिया पागल थी। मरने के पहले उस कुतिया ने एक बार सर उठा कर अपने की···की करते पिल्ले की ओर देखा था। वे आदमी उसे अधिक खूंखार लगे थे।

उसे पता था कि कुत्ते के काटने पर क्या होता है? पानी मे डर लगता है और एक खास तरह की सूइयां लगती हैं। पर

उसे ऐसी किसी चीज की जरूरत नही थी, क्योंकि वह जानता था कि उसे कुत्ते ने कही काटा है। इसलिए वह किसी डाक्टर के यहा भी नही गया। फिर उसे यह डर भी था कि डॉक्टर उसका मजाक उडाएगा।

ऐसा पहले कई बार हुआ था। उसे मौत का भय सताया करता था। उसे कोई भयानक बीमारी हो गयी है। तपेदिक, टिटनेस, कैंसर, दिल की धड़कन बन्द होना। वह दिन-रात हर मिनट मरता था और डॉक्टर बड़ी बेदर्द मुस्कराहट से कहता था—तुम इन रोगो का नही, अपने दिमाग का इलाज कराओ।

पर वह दिमाग का इलाज कराने भी कही नही गया। क्योंकि उसे यह भी पता था कि उसका दिमाग नही खराब है। फिर भी उसे लगता था कि उसमे एक जबर्दस्त कुत्तापन भर गया है। वह एक निरीह आदमी था जो किसी का कुछ बिगाड नही सकता था। वह किसी का विरोध भी नही कर सकता था। कही वहा कमजोर था और कही शरीफ। जहा शरीफ नहीं हो सकता था वह कमजोर था और जहा कमजोर नही था वहा शरीफ था और दोनो ही जगह वह लाठियों से पीटने वाले आदमियो के सामने घूरे मे दुबक कर की···की करते उसी पिल्ले की तरह निरीह था।

यह उपमा उठे लाठी लेकर जाते एक आदमी को देख कर सूझी थी। उस आदमी की बेल्ट का सिरा कुत्ते की दुम की तरह पीछे झूल रहा था और अनजाने ही वह अपने पीछे टटोल कर देखने की कोशिश करने लगा कि कही उसे भी तो दुम नही है। नही, उसे कोई दुम नही थी।

लेकिन रात भर उसके सामने बहुत से कुत्ते दुमें हिलाते रहे। घबरा कर वह आंखें खोल देता। पर कुत्तो से पीछा नही छूट पाया। आख खोलते ही उनकी याद में थर्रा उठा और आख मूदते ही वे सामने खड़े हो जाते। फिर रात के सन्नाटे मे सड़क

पर बहुत से कुत्तों का भौंकना। सहसा उसे भय हुआ कि उसके साथ वह भी न भौंकने लगे।

यह मूर्खता है—उसने अपने आप को समझाया था। वह पानी पी सकता था और बखूबी जानता था कि उसे कुत्ते ने कभी नहीं काटा। काटा होता तो वह इतने दिनों उसका दुख न भोगता। पर इस जानकारी के बावजूद उसका कुत्तापन जरा भी कम नहीं हुआ। इसके बदले आंखों के आगे इसके परिणाम का भयानक चित्र खिंचते रहे। उसे लगता कि उसे एक दुम उग आई है, उसके हाथ कुत्ते के अगले पजे है, उसका मुह कुत्ते जैसा है और आखें हर जगह पिटने और दुरदुराए जाने वाले कुत्ते की तरह डरी हुई हैं। तब उसे पहली बार भय हुआ कि वह पिट कर या दुरदुराया जाकर कहीं झपट कर किसी को काट न ले।

सबसे पहले यह उस आदमी के साथ हुआ जो उसका रिश्तेदार था। वह अपने आप को उसकी बीवी का भाई बताया करता, लेकिन वह जानता था कि उसकी नीयत क्या है? वह बहुत दिनों से उसे अपने यहां आने से मना करना चाहता था लेकिन उसे मालूम था कि ऐसा करने पर भाई-बहिन के पवित्र रिश्ते को लांछित करने का आरोप मढकर खुद उसे ही अपमानित किया जाएगा। फिर वह एक शरीफ आदमी था और किसी को बेइज्जत नहीं कर सकता था। इसलिए चुप लगा गया था। पर अब वह उसे काट सकता था, क्योंकि उसका चेहरा एक कुत्ते की तरह लगता था और अगर ऐसा कर, खुद ही कुत्ता बन जाने का भय न होता तो शायद उसे काट भी लेता…।

लेकिन इसके बाद उसे बहुतों के चेहरे एकदम कुत्तों जैसे लगने लगे। वह मन ही मन लोगों के चेहरों का कुत्तों से मिलन करने लगा—और जिसका चेहरा ऐसा लगता उस पर टूट पड़ने की तबीयत होती। उसमें एक वह आदमी भी था जो उसके

पड़ोस में रहता था।

उसे हर वक्त मुहल्ले के लड़के-लड़कियों के चरित्र का ख्याल रहता था। उसकी पोती ने जब एक नौजवान से प्रेम किया तो उसने उसे जेल भिजवा दिया और अपनी पोती की शादी एक बहुत ही पतित आदमी से कर दी क्योंकि इससे उसे शराब का ठेका मिलने की उम्मीद थी और शराब का ठेका ले कर भी लोगो के चरित्र की उसकी पहरेदारी मे जरा भी कमी नही आई। वह किसी दिन उसे फटकारना चाहता था। वहा उसकी शराफत आडे नही आ सकती थी पर वह उस आदमी के मुकाबले बहुत कमजोर था।

तीसरा आदमी एक नेता था।

वह देश और समाज की बहुत बातें किया करता था। उसमे गरीबो और दलितो के उद्धार की सच्ची लगन थी। लेकिन एक दिन जब एक अछूत कहा जाने वाला आदमी उसके बराबर बैठ गया तो वह दूसरे बहाने से (क्योंकि वह नेता था) उस पर नाराज हो गया और उसे अपने घर से निकलवा दिया था।

एक समाजवादी था जो बडे ठाट-बाट से रहता था और गरीबो की हमदर्दी मे बडे-बड़े होटलो मे बडी-बडी दावतो मे शरीक होता था, हमेशा विदेशो का सफर किया करता और मजदूर यूनियनो को उभाड़ कर मिल मालिको से पैसे ऐंठता था। उसके लड़के महगे पब्लिक स्कूलो में पढते थे जिसका खर्च वह गरीब बच्चो की मदद के नाम पर जमा चन्दे की रकम से देता था।

एक और आदमी था जो अफसर हो गया था। उसके बाद से ही वह सिर्फ अंग्रेजी बोलने लगा, यहां तक कि दोस्तों पर भी साहबी रोब गाठ ने लगा। उस पर उसे बेहद गुस्सा आता क्योंकि वह उसका भी दोस्त था, लेकिन तब उसका चेहरा उसे कुत्ते की तरह नही दिखाई देता था। तब वह बहुत बार उसे

बुरा-भला कहना चाहता था, पर कह नहीं सका था। क्योंकि वह इन सबके आगे एक कमजोर-निरीह आदमी था। अब इन सबका चेहरा बदल कर कुत्ते की तरह लगने लगा था। उसमें नेता का भी चेहरा था और उसके दोस्त का भी। उसकी कमीज का कालर उसके गले का पट्टा मालूम होता और टाई उसकी जंजीर।

ऐसा ही उसे उस चोर बाजारिए को देखकर होता जो कोयले और गल्ले का लैसंसदार था, लेकिन किसी को कोयला और गल्ला न देता था। गल्ले और कोयले का कोटा वह सरकारी गोदाम से ही ब्लैक में बेच कर रुपये सीधे कर लेता था। वह सरकारी मुलाजिम जो काम से जाने पर कभी अपने जगह पर न मिलता, वह दुकान जो नकली दवाएं बेचता, वह पुलिस का सिपाही जो गुंडा सरदारों के साथ मिलकर सीधे भले लोगों को तंग करता था—इन सब पर उसे गुस्सा आता था। लेकिन वह सिर्फ एक निरीह आगोश से मन ही मन कुछ कुढ़ कर रह जाता था। क्योंकि वह इन सबके सामने कमजोर था।

लेकिन अब वह एक बहुत बड़ी ताकत से लैस था— अब वह इन सबको कम से कम काट सकता था, और अपनी इस ताकत पर खुश हो सकता था। मानो उसे कोई गुप्त विद्या आती हो, जिससे वह सारी दुनिया के बुरे लोगों को सजा दे सकता था…।

लेकिन तब उसे याद आया कि वह अपनी इस ताकत का इस्तेमाल नहीं कर सकता, क्योंकि इस ताकत के इस्तेमाल का सबसे पहला असर खुद उसके ऊपर होगा—यानी वह कुत्ता बन जाएगा …पागल, दीवाना कुत्ता… और दिमाग के आगे फिर वही कुत्ता काटने से मरने वालों के खौफनाक चित्र। शायद उसे सचमुच कोई भयानक रोग हो ही गया है जिसका सम्बन्ध कुत्ता काटने में ही था। हो सकता है उसकी कल्पना हो, पर शायद बचपन

में कभी उसकी दादी ने उसे सात कुंए झंकाए थे। कुतिया को लाठियों से मारने वाला दृश्य उसे फिर याद आने लगा। उसका पिल्ला असहाय सा कू···कू कर रहा था···या वह कोई आदमी था जिसे लोग मार रहे थे, शायद उसी जैसा आदमी जो लोगों को काटता-फिरता था···मारने वालों के खंखार चेहरे उन लोगों से मिलते-जुलते थे जिन्हें वह काटना चाहता था। उनमें वह चोर बाजारिया भी था और उसका वह पड़ोसी भी जिसने शराब के ठेके के लिए अपनी पोती को बेच दिया था। उसमें नेता भी था और गुंडा सरदारों का साथी पुलिसमैन भी। वे कुत्तों को नहीं आदमी को मारते है और मार खाने वाला आदमी कुत्ता होता है।

उसे जबर्दस्त घबराहट होने लगी। वह अब भी पानी पी सकता था और तमाम दूसरे का काम कर सकता था, लेकिन उसका भय जैसे और बढ़ गया।

खौफनाक, मरणांतक भय।

आखिर एक दिन वह डॉक्टर के पास जा ही पहुंचा।

डॉक्टर ने उसे इस बार भी कोई दवा नहीं दी। आपको किसी दवा की जरूरत नहीं है—उसने फिर बड़ी बेरहम मुस्कराहट के साथ कहा। इस बार उसे यह मुस्कराहट अच्छी लगी, क्योंकि इससे वह अपने कुत्तेपन से मुक्त हो सकता था।

वह उसी दिन ठीक हो गया।

लेकिन तब सहसा वह किसी बात से और अधिक भयभीत हो उठा। वह कई दिनों तक भयंकर द्वंद्व में पड़ा रहा। यह पहले से भी नहीं अधिक बड़ा भय था।

चार-पांच दिन बाद वह फिर डॉक्टर के पास जा पहुंचा।

—अब क्या ? डॉक्टर ने कहा।

वह काफी देर तक सोचता रहा कि क्या कहे ? मन में जो

घुमड़ रहा था उसे कहते नहीं बन रहा था। डॉक्टर के फिर पूछने पर वह करीब-करीब चीख उठा।

—मेरा भय वापस दे दीजिए।

डॉक्टर भौंचक्क उसकी ओर देखने लगा। वह फिर चीखा—हां, भय वापस दीजिए, अब मुझे किसी बात पर गुस्सा नहीं आता। अब मैं सब कुछ बर्दाश्त करने लग गया हूं···।

राजी सेठ

○

अनावृत कौन

बातें तो सब इसी तरह शुरू होती हैं किसी एक कण से··· दूध में पड़ी जामन की एक बूंद की तरह, जो द्रव की सारी तासीर को आद्यात बदल देती है। पेड़ों पर इतना सघन अच्छादन देखकर क्या यह अनुमान हो पाता है कि इसके नीचे कहीं एक बीज-कण ही रहा होगा !

मैंने भी उस दिन इतना ही कहा था—एक वाक्य, मात्र एक छोटी-सी बात ! अधिक तो, अपने ही भीतर की बाधा को शब्द दिये थे। शिमला में कैबरे देखने जाते समय कैबरे देखते समय मुझे जैसा लगता है, उसे भूल पाना मुझे कठिन लगा था।

कहना मैंने नहीं चाहा था तब भी, इसीलिए प्रकाश से इतनी बहस की थी। बहस इसलिए नहीं की कि उन शब्दों का मतव्य कटु था, बल्कि इसलिए कि मैं जानती थी प्रकाश इसे सहज नहीं लेगा।

प्रकाश सदा चीजों को ऐसे ही क्यों लेता है, यह मेरी समझ में नहीं आता। क्यों सुख को छीन-झपट कर वह अपने अकेले के हवाले कर लेना चाहता है ! बांटने का सुख शायद वह नहीं

जानता। सब कुछ हड़प लेना चाहता है। हर चीज को तोड़-मोड़कर अपने सुख-साधन में बदल देना चाहता है परन्तु क्या ऐसा होता है…हो पाता है ?

सुख कितने अनजाने स्रोतों से, कितना अचानक, कितना दबे पांव आ निकलता है, वह नहीं पहचानता…कभी कविता की कोई एक पंक्ति, आंख में चमकता कोई अनकहा आग्रह, छोटी-सी कोई बात, पगडंडियों पर चुपचाप चलते होना… कितना सुख दे जाते है…और कभी सागर के सम्मुख सुख के स्वागत के लिए लैस बैठे होने पर भी कुछ भीतर नहीं जागता। मुंह और आंखों में रेत किरकिराती रहती है केवल…और सागर-मुद्राओं को देखने से असमर्थ कर देती है। तब वहां बैठे रहने की अपेक्षा चले आने का भाव अधिक होता है।

उस शाम भी होटल की ढलान से सड़क पर उतरने की उसकी मुद्रा ऐसी थी कि वह मुझे अत्याधिक उत्फुल्ल लगा था। सर्दी-सी उतर आई थी। मैंने अपने कोट की जेब में हाथ धंसा रखे थे। हाथ धंसाने से मेरी बांह का जो अर्द्धवृत्ताकार-सा बन गया था, उसी में अपनी बांह उलझा कर प्रकाश ने कहा था।

"तुम्हें मालूम है कैंवरे की यह टीम पेरिस तक हो आयी है… जस्ट सुपर्ब !"

एक दीर्घ 'हूंऽऽ' करके मैं चुप हो गई थी। उसक ध्यान इधर नहीं था।

"आज बड़ा मजा आ रहा है… नहीं ? कम से कम तुम पूरी की पूरी यहां तो हो… मेरे साथ !"

मैं डर गई थी। जितनी-सी उसकी पकड़ में थी वह भी नहीं रही। उनके अनचाहे मैं पीछे लौट गई थी, जहां से इस प्रकार के डर का बीजारोपण हुआ था—मेरे पूरी की पूरी उसके साथ न

होने का अहसास और लावा उगलती उसकी खीझ !

हमारी शादी हुए अभी कम ही समय हुआ था। प्रकाश की बड़ी दीदी न्यूयार्क से आई हुई थीं; आठ सप्ताह के लिए। उनके रहने तक शिमला जाने का अपना कार्यक्रम हम लोगों ने स्थगित-सा ही रख छोड़ा था।

इसके साथ ही घर मे एक बड़ी त्रासद घटना घटी थी। प्रकाश के बडे भैया भारत-पाक युद्ध मे वीरगति पा गये थे। सेना से संलग्न होने पर भी इस प्रकार की घटनाएं कितनी ही सभावित हो, हर किसी के मन में यह आशा रहती है कि अमंगल-अनिष्ट जो भी होगा, दूसरों का होगा, हमारा नही। सड़क पर होने वाली दुर्घटनाओं को हम सदा एक वाचक की तरह अखबारो में पढते रहेगे। व्यक्ति की अपने प्रति यह पक्षधरता ···पता नही क्यो ?

घर मे एक घटा-सी छा गई। मृत्यु के बाद के दिनों में तो एक तरह की भागम-भाग रही, व्यस्तता से रौदती कूटती—आवागमन, सदेशे, सबंधी, भैया के बच्चे, दुख-कातरता। बाद में एक अटूट सन्नाटा रह गया, जिसके केन्द्र में रह गई भाभी—अकेली घुटती हुई ! खुलती-बिलखती वह नही थी। शायद खुल पाने की जमीन का अभाव लगता हो यहा। जीया हुआ इतिहास एक सुने भविष्य के साथ होड लेता उनके चेहरे की करूणा में टूटता होता। छूना हुआ नही, कि फूट पड़ेंगी। ऐसी कच्ची-सी वस्तु लगने लगी थी वह। उनके दोनों बच्चे वापस शेरवुड चले गये तो वह भी पिता के घर चली गईं।

एक महीने के बाद वह आईं भी। ढाई महीने तक रही भी थी पापा को जब उन्होंने बताया कि उन्होने रायपुर (पितगृह) में गैस की एजेंसी के लिए अर्जी दी है और मिल जाने की संभावना भी है तो पापा अत्यत उलझे थे। छलक-छलक पड़ते थे, परन्तु उन्हें रोक नही सकते थे। संरक्षण का बरगदी आश्वासन

उनके भीतर ही कहीं अटक कर रह जाता, जब याद आ जाती आंखों की उत्तरोत्तर मंद पड़ती रोशनी और लपककर उठ पाने की असमर्थता। चेहरे पर जमे बूढ़े शैथिल्य के बीच अपनी कच्ची पनीली आंखें छिपाये वह भटका करते इधर-उधर।

घर मे वे बड़े कठिन से क्षण थे। कोरे कपडे-सा उठंग अकड़ा हुआ मेरा नयापन और घर में कुएं से बडे घाव को एक गहरे मुझे हुए आत्मीय स्पर्शों की आवश्यकता। मैं फूंक-फूककर कदम रखती। बड़ा क्रूर-सा लगता अपने भीतर को बाहर झलकाते होना। जीया हुआ भाभी की सदैव-सजल आखों मे झूलता होता एक तरफ और मैं अपने को यह सोचकर ढापती होती की जीये हुए की गंध यथार्थ की तरह चटक होती है, गहरे निशान छोड़ती है और मुझे तो अभी जीना है—उसकी स्थिति भी है, सामर्थ्य भी और सामने एक अदद भविष्य भी। उनके लिए तो खोये क्षणों का दशन ही दशन है।

मैं संकुचित ही हुई रहती—निरावेग चुप, अधिकतर सामान्य आंसू-सोख एकात मे वह यहा-तहां छूट न जाये, इसके लिए मैं सजग रहती। उन्हे लेकर एक अबोली सावधानी मेरे भीतर जागती रहती सतत।

प्रकाश कुछ घुटघुटा-सा रहता था। मेरे इस आरोपित सयम से पूरी तरह अप्रसन्न। आखों के आग्रह फेंकता रहता खुले-आम। इस आंख से उस आंख की यात्रा मे किसी दूसरे द्वारा झपट लिए जाने के अंदेशे से मैं उसके सदेश को अनदेखा कर देती। एक विश्वास कि अपने कमरे में जाकर उसे शात करने में कठिनाई न होगी। पर कठिनाई होती थी। रात को दरवाजा वंद कर लेने के बाद उसकी दवी हुई खीझ एकदम उद्दंड हो उठती।

☐

उस दिन दरवाजा बद करते ही वह बोला, "क्या तुम कभी-कभी भी इस सारी दुनिया को भूल नही सकती ?"

यह सारी दुनिया कौन है ? इस सारी दुनिया के घेरे में इस समय तो भाभी ही हैं, वह भी, मेरे नहीं, प्रकाश भाई की पत्नी। परन्तु उसे मैंने प्रकट में यह नहीं कहा। कहा यही, "भाभी को दिन भर यू, देखते अपनी शादी के नयेपन पर गिल्ट होने लगता है।"

सयम की कमान मे कसी, सारे दिन की तैनात सतर्कता से अचानक मुक्त-सा महसूस करते हुए मैं बिना कपड़े बदले हाथ-पैर फैलाकर पलंग पर पसर गई। यह पसर जाना मुक्ति के क्षणों को जीने-समेटने की तैयारी-सा हो जैसे।

प्रकाश ने तेजी से गर्दन घुमाई। "नाइटी पहनना जरूरी नहीं है क्या ? तुम इस वक्त कमरे मे हो, क्या यह भी बताना पड़ेगा तुम्हें ?"

वार था, हथियार चाहे उसके हाथ मे कोई भी नही था।

"जानती हूं" मैं झटके से उठ बैठी। जाने कैसा-सा पंखो पर ले उड़ने वाला झोका मेरे अस्तित्व के स्पर्श को भूल कर एक वात्याचक्र की गति मे ऐन मेरे सिर पर मडराने लगा।

उसे झटक पाने के लिए मैं तुरन्त उठ खड़ी हुई। फिर भी लगा रुई के पोले-पोले फाहो की तरह उदासी मेरे मन की धरती पर बैठने लगी। मैंने तौलिया उठाया और सहज होने के लिए किसी भूली-सी धुन को मन मे बटोरने और स्वर के हवाले कर डालने का यत्न किया।

पर प्रकाश को गुनगुनाहट से सहज हो सकने की मेरी घोषणा अच्छी नही लगी, यह झट ही मेरी समझ मे आ गई—वह शायद इसे मेरा फिर से अपने मन मे निमग्न हो जाना समझ रहा था। मेरा स्वर अचानक और अपने आप में गुम हो गया। वॉश-बेसिन पर पड़ती धारको मैंने पूरा खोल दिया। प्रकाश की घूरती आंखों के मौन से यह तरल शोर मुझे अच्छा लगा।

मुह-हाथ धोकर, शरीर पर नाइटी सरका कर मैं प्रकाश को

कुर्सी के हत्थे पर बैठ गई। चाहती थी, प्रकाश महसूस कर सके मैं उसके साथ हूं, भाभी के साथ नहीं, इस संसार के साथ नहीं। इस क्षण तो अपने मन के साथ बलात्कार करती उदासी के साथ भी नहीं।

परन्तु प्रकाश मुक्ति के क्षण को कैद की सजा सुना चुका था। स्वयं मुख को मलिन कर देने वाली झल्लाहट को उसने ओढ़ रखा था पूरी तरह।

मैं झट सुलह करवाने वाले वकील की भूमिका में आ गई। मेरे अपने ही दो भाग हो गये!

ऐसे में क्या भूलना हो पाता है जैसा प्रकाश चाहता है? क्या वह स्वयं ही सदा अपनी चाह के विरुद्ध नहीं चलता?

मैंने उसके बालों में उंगलियां उलझा ली, "नाराज हो क्या?"

"नहीं!" दो टूक झूठ।

"हो तो!"

"नही! नाराज क्यों होने लगा?"

"यही तो मैं भी कह रही हू···असल मे तुम्हें लगता रहता है, मैं तुम्हारे साथ नही औरों के साथ हूं।"

"लग सकता है" स्वर रूठा हुआ और तेवर चुप्पी में लौट जाने का-सा।

"भाभी की बात और है प्रकाश······वह दुख मे है······ जब···"

"तुमने कैसे समझा कि मैं भाभी के विरुद्ध हू?"

"विरुद्ध नही हो पर वह कारण तो बन जाती है।"

"कारण वह नहीं,···तुम हो तुम···तुम्हारा रुख···"·वह फिर तेजी मे आने लगा था।

"मुमकिन है" मैंने एकदम हथियार डाल दिये।

उसे अच्छा-सा लगा। परन्तु दूसरे ही क्षण सहज हो जाने

में संभवतः उसे अपने पौरुष की हानि लगी, अतः वह निर्विकार सिगरेट पीता रहा···

उस क्षण, अचानक, मेरा वहां से उठ जाने का जी चाहा, परन्तु एक बार उसके इतना निकट बैठ गई तो अपनी क्रिया और मुद्रा बदल देने का कोई कारण उसके हाथ सौंप देने को तैयार न हुई। वहीं बैठे मैंने अपना हाथ उसके कंधे पर सरका लिया।

□

इस स्पर्श को वह अधिकार की तरह भोगता रहा—लगभग एक तरफा। ऐसे अधिकार-भोग को मात्र सहना ही होता है। वहां से कुछ लौट कर नहीं आता। अपने पास से जाता ही जाता है।

प्रकाश को यह रात जितनी मधुर और अधिकारपूर्ण लगी थी, मुझे उतनी ही वाणीपंगु और क्रूर। हाथ प्यार के लिए उठते हों परन्तु स्पर्श इतने फ़ौलादी-इस्पाती स्वामित्व भोग का हिंसक अहसास ही दे पाते हों। अधिकार की हिंसा को प्यार के चोले में आवृत्त, मैंने पहली बार देखा।

डर की नींव शायद उसी रात पड़ी थी। उस हिंसा से न केवल डर ही लगा था, मेरा यह विश्वास कि मैं कुछ भी करती रहकर, अपने कमरे में, अपनी बाहों में घेरकर उसे मना लूंगी, चकनाचूर हो गया।

भाभी के जाने के बाद घर में कुछ सामान्यता-सी आई। प्रकाश ने शिमला जाने का कार्यक्रम बना लिया। अनुमति लेने की अपेक्षा पापा को सूचित करने की औपचारिकता उसने अधिक निभाई थी।

पापा वैसे भी कुछ न कहते, बोले, "जरूर जाओ, बेटा··· मेरी फिकर न करना, मुझे कुछ नहीं होने वाला···तब नहीं हुआ तो···"

· -मेजर भैया के निधन के बाद वह बहुत विखर गये थे। कपड़ों में डालने वाले, नील में मिली काच की किरचों से मेरे हाथ जख्मी होते देख वह बेहद फडफड़ाये थे "ओह ! क्या इसी देश के लिए मेरा वेटा मारा गया !"

तब पापा की आखों के सफेद पनीले कोए फडफड़ाने लगते थे और उनके होठ नियंत्रण की कमान के नीचे काप-काप उठते थे···वह कमजोरी का क्षण। पापा को विखर पाने की कितनी कठिनाइयां थी। मम्मी होतीं तो···

कितना धीरज देने वाली होती है कटीले रास्तों मे चार कदमों की साथ-साथ यात्रा। मेरे मन में कहीं कुछ अचानक उमड़ आया। मेरा जी चाहा मैं प्रकाश से लिपट जाऊं। "प्रकाश! इस सहयात्रा के आश्वासन के बिना जीवन कितना अधूरा है।" परन्तु बात शुरू करती हू, "प्रकाश, पापा बेचारे कितने आकुल हैं·· एकदम अकेले भी तो पड़ जाते है।"

प्रकाश ने कुछ क्षण रुककर उत्तर दिया। "हां, पड तो जाते हैं। कल से मंगल कोठी के अदर रहेगा।"

"वह तो है, परन्तु मगल कितना भी घरेलू क्यों न हो, है तो नौकर ही···"

"तुम कहीं शिमला न चलने का केस तो तैयार नहीं कर रही हो ?" एक तलखी उसकी आवाज में पारे के स्वभाव की तरह चमकी।

"नही भई" मै भी चिढ गई, "पर पापा के इस दुख में बिल्कुल अकेले भी तो पड़ जाते है।"

"ठीक है पर किया क्या जा सकता है···हम लोग दस-बारह दिन मे तो आ ही जायेंगे···यों सोचो तो यह सयोग की बात है कि हम यहा है···मेरी पोस्टिंग कहीं और भी तो हो सकती थी।"

"होती तो पापा हमारे साथ रहते।"

"ओह नो ! वह यह भी पसंद नही करते। उन्हें निर्भरता पसद नही और वह इस घर को जी-जान से प्यार करते हैं।"

"तब की बात छोड़ो प्रकाश। इस तरह की ठोकरों से आदमी की जीवन टूट जाता है। पापा ने जवानी मे ऐसा बुढ़ापा क्या कल्पित किया होगा…और फिर यह घर रह ही कहा गया है…?"

"यू आर इनकारिजिबल !" प्रकाश ने हाथ की पत्रिका मेज पर पटक कर कहा, "तुम्हें तो कही सोशल वर्कर होना चाहिए था…"

इतने गहरे आवेश का कारण न समझ पाने के कारण स्तब्ध हो जाना ही अधिक हुआ। 'सहयात्रा के आह्वानन' का नन्हा-सा आवेग जो पापा की यातना के शुरू होकर प्रकाश के कधों पर बिखर लेने के लिए ललक उठा था, वही फ्रीज हो गया।

किस सूत्र से प्रकाश को पाना होगा, यह सोच मेरे मन मे कही कुलबुलाता रहा।

◘

शिमला आ जाने पर तीन-चार दिन खूब अच्छे बीते थे। स्वामित्व और एकात अधिकार की धूप मे सिके हुए—कुरकुरे ! भीतर तक सीलन का कोई निशान बाकी नही। प्रकाश बहुत-बहुत खुश था। उदार भी हो लेता था। अच्छा लगता था। उसे झेलने पाने कि आकाक्षा जागती थी। जीने का क्रम ऐसा ही रहे… धूप से सिका, सीलन-रहित…पर जीवन मे, पहाड़ो की एकात उपत्यकाओं मे धन देकर खरीदी हुई होटली सुविधाएं ही तो नही है…उसमे केवल मैं ही नही, केवल प्रकाश ही नही, जराग्रस्त पापा भी हैं, दुख से टूटी हुई भाभी भी है, उनके पितृहीन बच्चे भी है, रास्तो पर अचानक साथ चल निकलने वाले जाने-

अनजाने उत्तरदायित्व भी है, चिंताएं भी है। कोई सड़क ऐसी नही है जहा दो व्यक्ति अबाध चलते रह सकते हो···!

क्षण भर को लगा, यह सुख एकदम भुलावा है, छलना है।

कमीज के बटन बद करता हुआ प्रकाश बोला, "किस सोच मे पडी हो ?"

"कुछ नही···सच में कुछ भी नही।"

"कुछ तो !"

"कुछ नहीं। यू ही क्या कभी कोई चुप नही हो जाता ?"

मन पर आया हल्का-सा बादल मैने सयत्न समेट लिया। प्रकाश आज कुछ अतिरिक्त रूप से उत्साहित था। 'सेसिल' मे कॅबरे देखने का कार्यक्रम बनाया था उसने। अपना परिधाद तक चुनने की स्वतंत्रता उसने मुझे नहीं दी थी। मैने उसे छेड़ते हुए कहा भी था, "वहा मुझे देख पाने का समय कहा होगा तुम्हे···?"

"ओह ! आय शैल गेट मोर वाइल्ड···फॉर यू···फॉर यू··· फॉर यू, ओनली !" जैसे किसी धुन पर नाच रहा हो।

होटल की ढलान पर उतरते समय वह मुझे लगभग खींचता हुआ ही सड़क पर लाया, बार-बार कॅबरे की टीम का बखान करता। मैंने अपने हाथ ओवरकोट की जेब में धसा रखे थे। मेरी बाह के अर्द्धवृत्ताकार मे अपनी बाह उलझाकर वह उत्साह से बोला, "आज बडा मजा आ रहा है···नही ? कम से कम तुम पूरी की पूरी यहां तो हो मेरे साथ।"

□

मैं डर गई थी। छिटक गई थी। पूर्व-स्मरण का एक बोझिल खेप जब तक मेरी चेतना से होकर गुजरा, उतने क्षण मैं शायद चुप रही होऊंगी।

अपने उत्साह के अनुपात से मेरा मौन शायद उसे भला न

लगा होगा, तभी तो उसने पूछा, "क्या बात है, तुम कुछ मूड मे नही लगती ?"

"कोई बात नही·· यू ही।"

"बताओ न !" उसने मुझे एक लडियाता हुआ आश्वासन सौंपा।

"यूं ही···मुझे डर-सा लग रहा है।"

"डर ?···कैसा डर ?" उसने ठहका मारा, "इस सडक पर हम अकेले चल रहे हैं क्या ?"

मैंने कुछ क्षण उसे तौला फिर उसकी जिद से अघा कर कह दिया "मुझे कैबरे मे जाने से डर लगता है·· घबराहट भी···"

"डर !···घबराहट !···" जैसे उसने आकाश मे सडक पर अपने पाव चलते देख लिया हो, "इसमें डरने की क्या बात है ? पहले कभी देखा है तुमने ?"

"हा, एक बार !"

"तो क्या दिक्कत है ?"

"देखा है तभी तो दिक्कत है···मुझे लगता है, मैं ही अनावृत्त हुई जा रही हूं !" यह वाक्य···यही वाक्य उसे लगा था जैसे आग का तीर !

"वॉट नानसेंस !" प्रकाश छिटककर सडक के किनारे खड़ा हो गया था, "वहा जाने से पहले तुम्हारे दिमाग की धुलाई जरूरी है।"

आक्रामक तेवर मे वह आये, मेरी कोई इच्छा नही थी। मैंने उसे धीरे से कहा, "यह कुछ ऐसा है जिसे मैं, समझा नही सकती। कैबरे देखते हुए मुझे लगता है कि केवल मैं ही नही·· आस-पास की···संसार की सभी स्त्रियां अनावृत्त होती जा रही है···एक-एक करके उनके कपडे झरते जा रहे है···और·· और तुम सब उन्हे देख रहे हो, आखें गड़ाये···वहशियो की तरह !

कितना घृणित लगता है मुझे···यह सब। शेमफुल···! डिस्ग-रिंटग !"

"फुलिश ! फुलिश ! ! फुलिश ! ! ! तुम बेवकूफ़ हो निरी···उसके नंगे होने से तुम कैसे नंगी हो जाती हो ?"

"मै नही समझा सकती प्रकाश···सबकी देह, सबकी अनाटमी···सब उघड जाता है मेरे सामने।"

"वैसे कौन नहीं इसे जानता ?"

"जानते है सब। फिर भी बाप बैंड-बाजे बजाकर अपनी बेटी को दामाद के हाथ सौंपता है · जानते हुए कि सारे हिसाब मे अनाटमी का भी एक हिसाब होगा···फिर भी कोई पर्दा···"

यह कहते हुए मुझे इस बात का एहसास पूरा था कि मेरी आवाज मे एक पैनी तलखी काप रही है और उसकी प्रतिक्रिया प्रकाश पर अपने स्वभाव के अनुसार चौगुनी होगी। वह यों भी किसी चीज को सहज नही लेता, अत: मैंने तर्क की अगली कडी को असहायता मे तोड़ते हुए नरमाई से कहा, "मैं मूर्ख हू प्रकाश डर लगता है मुझे···सारी दुनिया···"

प्रकाश का कठिन होता चेहरा देख मैं अचानक चुप हो गई। वह चाहता तो थोडा आश्वासन-दिलासा देकर मुझे ले चलता परन्तु वह एकदम मेरी बाह पकडकर बोला, "तो चलो, वापस चलो।" कड़वी कठिन आवाज !

"क्यों, वापस क्यों ?···इसका मतलब यह तो नही कि हम देखने न जायें ?···तुमने इतना पूछा तो मैंने तुम्हें मन की बात बता दी।"

"और मैं भी तो तुम्हे मन की बात बता रहा हू कि हम नहीं जायेंगे !" इन तीनो शब्दो को वह अलग-अलग जोर दे-दे कर बोला था।

बिना रुके वह मुड़ा। पास से गुजरता रिक्शा (जैसे पहाड़ों मे होते हैं) को उसने रोका और मेरी बांह घसीट कर मुझे उस

पर सवार कराया। यदि हम पैदल जाते, तो वह लपककर गजों आगे चला होता···मेरे साथ-साथ चलता उसे असह्य लगा होता···

एक तीखा-सा खेद मन में जागा, अपने को कोसा भी—प्लेजर-किलर ! कहना क्या जरूरी था ? फिर यह अप्रसन्नता क्षोभ में बदलती गई—ऐसा भी क्या कि मन की कोई बात उससे नहीं कही जा सके।

खीझ तब और भी बढ़ी जब उसने सधि के हर यत्न को ठोकर से उछाल दिया। उसे शायद हर आवेग से निकलने में समय लगता था।

मैंने उसे यहा तक कहा कि मुझे बहुत भूख लगी है, क्योंकि खाना हम होटल में ही खाने वाले थे परन्तु वह उदासीन रहा। रात भर वह भी करवटें बदलता रहा, मैं भी !

सुबह ही आख लगी थी अत: दिन चढे खुली और वह भी खटपट-धरपटक की ध्वनि के कारण। वह सामान बाध रहा था···

"तुम्हे क्या हो गया है, प्रकाश···! क्या हम वापस जा रहे हैं ?"

"हा !" कहकर वह काम मे लगा रहा। चीज, जाम, क्रेकर्स, ब्रेड·· यह सब चीजें वह एक असहज उतावली में साथ वाले कमरे में टिके मेहता दपति को दे आया, जैसे जाने के निर्णय को बार-बार रेखांकित कर रहा हो। अमंगल की आशंका से वह कुछ घबराये भी परन्तु 'जरूरी काम पड गया है' कहकर प्रकाश ने उन्हे चुप कर दिया।

प्रकाश ऐसा करके मुझे दंड दे रहा है, स्पष्ट था। एक निर्मम फैसला···सुलह से इनकार करके···समझने-समझाने का कोई मौका न देकर।

रास्ता एक बोझिल खामोशी में कटा। वह दिखाता रहा

कि उसे नींद आ रही है, और मैं दिखाती रही कि मुझे नींद तक नहीं आ रही।

घर में पापा पर विचित्र-सी प्रतिक्रिया हुई, जैसे समझ न पा रहे हों कि खुश है या आशंकित। अनिर्णय के इस क्षण को झेलते वह कुछ कातर ही अधिक हुए "मन नहीं लगा क्या ?" उन्होंने सहमते-सहमते पूछा, फिर याद-सा करके, "कहीं मेरी चिन्ता से तो जल्दी नहीं चले आये तुम लोग ?"

उत्तर के दायित्व के सम्मुख मुझे अकेला छोड़कर प्रकाश जल्दी से 'अभी आया' कहकर सीढ़ियां चढ गया।

"क्या प्रकाश की तबीयत ठीक नहीं ?" पापा की अनुभवी आखों में कुछ चुभने लगा था।

"नहीं···हाऽऽ। थोडी ढीली है।"

"डॉक्टर को बुलवा लो।"

"जरूरत होगी तो बुलवा लेंगे·· थोड़े आराम से ठीक भी हो सकता है।"

पापा आश्वस्त नहीं हुए। यह उनके चेहरे से उसी समय स्पष्ट था।

परन्तु अततः मुझे पापा के मुख पर खेलती इन चिंताओं की अवहेलना करनी पड़ी···जब लगा कि एक दूसरी प्रकार का सकट सम्मुख है।

प्रकाश की चुप्पी अटूट थी। वह घर में उतना रहता जितना आवश्यक होता। बातचीत जितनी होती खाने की मेज पर··· यह जताते हुए कि यह कृपा पापा की उपस्थिति के कारण मुझे दी जा रही है।

दो चार दिन ऐसे ही चला। मेरे मन को यह बात दिलासा दिये रही कि कोई भी बात अपनी आवेगात्मकता के अनुपात मे समय के साथ मद्धिम पड जाती है। भीतर एक सहज विश्वास भी था कि कभी, किन्ही शात क्षणों में समझाया जा सकेगा कि

मेरा दृष्टिकोण,उसका दृष्टिकोण या किसी का भी दृष्टिकोण मान लेना आवश्यक नही है, पर समझना आवश्यक है । अपना नही तो दूसरे का मानकर उसे समझाया जा सकता है और दूसरे के व्यक्तित्व के साथ उसकी एक ससिद्धि भी देखी जा सकती है ।

प्रकाश के भीतर एक दृष्टिहीन क्रोध था जिसे जमता देख कर अपने भीतर आकर लेती गाठ मे मै अपनी उगलिया धसाये रखने का यत्न करती रही ।

कडवाहट मेरे मन मे थी तो प्रकाश की ओर से शीतयुद्ध की स्थिति बनाये रखने के कारण । उस दिन नहीं रहा गया तो मैंने आखो पर ढकी उसकी बाह को बलात् हटाने की कोशिश करते हुए कहा, "तुम थक नही गये प्रकाश ?" उसने अपना हाथ छुडाकर करवट बदल ली ।

"ऐसे रह पाना कितना मुश्किल है·· आखिर यह कब तक चलेगा ?"

"तुम्हारी मेहरबानी रही तो इस बात पर नही तो किसी दूसरी बात पर चलेगा ।"

चुभा तो सही, फिर भी उस अतराल के बाद उसके कुछ भी बोलने की स्थिति सुखकर लगी ।

"समझ जायेगें तो किसी बात पर नही चलेगा । समय तो *लगता ही नही है···"*

"नही ! या तो पूरा समझा जा सकता है या बिल्कुल भी नहीं ।"

"तो पूरा समझ लो या समझा दो ।" न जाने कहा से आमोद का भाव मेरी जुबान पर चढ बैठा ।

"नामुमकिन ! तुम्हारे साथ एकदम नामुमकिन ! यू आल-वेज मेक मी फील स्माल । तुम्हारे आतक मे मै नही रह सकता ·· हर वक्त यह समझाया जाना कि मै गलत हू···सिर्फ मैं ही गलत हू । तुम्हारे सो-कॉल्ड सिद्धातो की मुझे परवाह नही । तुम

…तुम…यू कैन टेक दैम अवे विद यू…आय डैम केयर…"

आहत हुई थी, तो भी हाथ आये सिरे को छोड़ देना मैं नही चाहती थी, "मेरे उस दिन के कहने से तुम यही समझे हो ?" मैंने प्रश्न ही किया।

वह भड़क उठा, "हां, तुम्हारी समझ मेरी नहीं हो सकती। भगवान न करे कभी हो…होटल में नाच करती जूली मेरे लिए तुम नही हो सकती। इट्स एब्सर्ड…! मैं नही सह सकूगा यह सब वेतुकी वातें। सारा ट्रिप चौपट कर दिया है।"

□

किसी अप्रत्याशित कुठा ने मुझे समूचा जकड़ लिया…आगे बढकर प्रकाश को छेड सकने का साहस टूट-सा गया लगा। विश्वास यदि नही टूटा तो शायद अपने स्वभाव के कारण। अति, किसी भी बात की मुझे कभी नही पचती।

एक वेगानापन घर करने लगा। दो दिन, तीन दिन… प्रकाश फिर भी जैसे एक बंद ज्वालामुखी !

मैंने एक दिन अघा कर कहा, "मै घर जाऊंगी।"

"जाओ !"

"मैंने कहा", मै घर जाऊगी…

"मै कह रहा हू जाओ। मुझसे नही, पापा से पूछो।"

मैंने अपनी अटैची भरनी शुरू की। प्रकाश ने लौटकर देख तो लिया पर कुछ न बोला। पहला जोड़ा रखते समय कोई निरीह अनचीन्ही प्रत्याशा मन मे थी…पर वह बनी नही रही। एक के बाद एक रखे जाने वाले जोड़ो के ढेर में उसकी कब्र बनती गयी। उसके घुट जाने पर एक ठडा क्रूर साहस जाग गया और चुनौती बन गया। अटैची का कवर बंद करते सभी प्रत्याशाओं के मुह ढक गये…जिन्हे किसी तेज नोकीली आवाज के बिना अनावृत करना कठिन होता है…

मा-बाबूजी को समझाने मे मुझे कठिनाई नही हुई थी, कि

पूर्व-सूचना क्यों नही दी। "सरप्राईज" देकर खुश करना चाहती थी" सुनकर वह सतुष्ट हो गये थे। बल्कि पूछा भी "इस चुहल से ससुराल मे कैसा काम चलता है ?"

"वहा चुहल है कहा ?" मैं कह तो गयी पर झट जोड़ दिया, "असल में मेजर भैया के कारण वहा सब ठडा पडा रहता है।" मा जाने क्या-क्या, कब-कब की, किस-किस की बातें सुनाती रही।

दो-एक दिन तो मै जी भर कर सोयी जैसे अचानक वर्षो बाद राहत मिली हो। बाद में उस राहत मे फास लगने लगी। कोई पत्र नहीं, पैगाम नही। मा ने पूछा तो कह दिया, "प्रकाश मे शर्त लगाकर आयी हू कि कितने दिन पत्र के बिना रहा जा सकता है।"

मा उस समय गभीर नहीं थी, फिर भी उन्होंने बहुत गहरी आखो से मुझे भीतर तक देखा था।

"मा, असल मे हुआ ऐसा···" और कुछ न कुछ आय-बाय !

उस रात डर लगा था कि यदि यह स्थिति यू ही बनी रही तो···! कल्पना आतंकित करने लगी। मैंने उसी दिन प्रकाश को एक पत्र लिखा·· फिर एक-एक, दो-दो दिन के अन्तराल में लिखती रही, परन्तु कोई उत्तर न आया।

☐

और एक दिन अचानक सुबह-सुबह पापा आ पहुचे। मा-बाबूजी एकदम अचम्भे में आ गये और एकदम व्यस्त से हो उठे। पापा ने भीतर तक मुझे देखा—शायद मेरी आखो मे फडकती याचना-कातरता भी।

झट बोले, "जब से गोविंद गुजरा है···मैं घर से नहीं निकला···सोचा मैं ही बहू को लिवा लाऊ।"

मैं भीतर तक छलछला गयी, "ओह पापा···पापा।" मैं पैर छूते-छूते उनके साथ सट गयी और बेतहाशा रो पड़ी।

तीर-सा वाक्य मेरे मुंह में छटपटाया, "मुझे आपके साथ तो नहीं रहना है जन्म भर !"

परन्तु वैसा वाक्य ऐसे पापा से नही कहा जा सकता था। खिसियाकर मैंने कहा, "आपको कुछ पता भी है पापा···कितनी छोटी-सी···कितनी सडी-गली बात पर···" मैं फूट पडी।

पापा जैसे वात्सल्य का स्तूप ! उन्होंने मुझे झट अपने कंधे से लगा लिया। हाथों की थपथपाहट में अपना हृदय उडेलते हुए बोले, "जानता हू बेटी···जानता हूं···ऐसी-वैसी किसी भी बात पर वह भड़क जाता है और महीनों मुह फुलाये रहता है। बिना मा के पला है।"

"पर ··पर···पापा···!"

"हा जानता हू···अच्छी तरह। तू घबरा रही है ? ऐसे गुजर कैसे होगी···आ मेरे पास बैठ ! अंग्रेजी में एक शब्द है 'रेजिलियम' यानि 'लचक'। वह उसमें नही है, उसे वह ही सिखाना है तो रेजिलियंस होकर दिखाना तो पडेगा·· चल बेटी, चल, मान न कर···जिस दिन से तू गयी है·· "

किसी तेजस्वी लीनता में चमकता पापा का विचारशील चेहरा अचानक पानी की पर्तों के किनारे आकर खड़ा हो गया।

"नहीं, पापा नही" मैं वैसा कुछ नही सह सकती थी। पापा की वैसी आंखें·· मेरे कबूतरों के पनीले कोए की याद दिलाने वाली · कच्ची मटमैली !

पापा ने मुझे घेर लिया, "चल बेटी, चल। घर खाने को दौडता है · घर में सिर्फ प्रकाश ही तो नही है न !"

मैं कहना जरूर चाहती हूं कि उस घर में मेरा रिश्ता प्रकाश के कारण ही तो है, किन्तु पापा को देखते हुए यह बात मुझे झूठ लगती है···एकदम झूठ !

मुझे सचमुच लगता है—मैं पापा के कारण वापिस जा रही हूं···पापा के ही कारण एक दीवार से सर फोड़ने को कृतसंकल्प

होकर···!

और मुझे अचानक लगा···पापा, प्रकाश के तीरों की नोकीली चोटों और मेरे बीच खड़े हैं, मुझे ढंके हुए, पूरी तरह··· सुरक्षित किये हुए !

अनावृत्त अकेला कोई है तो प्रकाश ! धुन्नाता, भुनभुनाता, सुख के लिए हाथ-पैर पटकता···और पा सकने के कौशल और चतुरायी से पूरी तरह अपरिचित···अकेला ! पागल !! जिद्दी बच्चा !!!

क्या हुआ है मुझे अचानक कि मै फुर्ती से सामान बांधने लग गयी हू !

रमेश उपाध्याय

○

परथम श्रेणी, सबको दो

उप-कुलपति के कार्यालय के बाहर नारे लग रहे थे—छात्रो के भविष्य मे खिलवाड, बन्द करो ! बंद करो !! बिना परीक्षा, पास करो ! पास करो !! प्रथम श्रेणी, सबको दो ! सबको दो !!

'प्रथम' का 'परथम' नारे का वजन पूरा करने के लिए हुआ था या उच्चारण-क्षमता के अभाव मे, कहना मुश्किल है, लेकिन जोर सबसे ज्यादा इसी पर दिया जा रहा था। शायद इसलिए कि छात्रों की मुख्य माग यही थी। आंदोलन प्रथम श्रेणी के लिए ही शुरू हुआ था और समाचारपत्र आदि मे उसे 'प्रथम श्रेणी आदोलन' ही कहा जाता था।

यह आदोलन इस वर्ष जुलाई मे शुरू हुआ। वजह यह थी कि इस वर्ष परीक्षा-परिणामों मे हुई धाधली के कारण सदा प्रथम आने वाले कुछ छात्र द्वितीय श्रेणी मे उत्तीर्ण घोषित कर दिये गये थे। वैसे यह धाधली विश्वविद्यालय मे प्रतिवर्ष होती थी, लेकिन कोई आदोलन नही होता था। सब जानते थे कि परीक्षा-पद्धति दोषपूर्ण है और उसके चलते प्रतिभा तथा योग्यता

का उचित मूल्यांकन संभव नही है। परीक्षा-पुस्तिकाओ में इस विषय पर निबंध लिखने वाले छात्रों से लेकर बड़े-बड़े समाचार-पत्रो में लेख और वक्तव्य प्रकाशित कराने वाले प्रोफेसर, उप-कुलपति, कुलपति, शिक्षामंत्री और प्रधानमंत्री तक इस तथ्य से भली-भाति परिचित थे और इस पर दुःख तथा क्षोभ प्रकट किया करते थे। फिर भी लाखो-करोड़ों को प्रतिवर्ष प्रभावित करने वाली उस दोषपूर्ण परीक्षा-पद्धति के बारे में कोई कुछ कर नही पाता था और जनता में यह हताशपूर्ण धारणा फैल गयी थी कि या तो स्वयं भगवान ही अवतार लेकर इसे बदलेंगे, या किसी जबर्दस्त आदोलन के द्वारा ही इसमें परिवर्तन होगा। परेशानी यह थी कि न तो भगवान अवतार ले रहे थे, न कोई आदोलन ही शुरू हो रहा था लेकिन इस जुलाई मे दोनो चीजें एक साथ होती दिखायी पड़ी।

एक भूतपूर्व विभागाध्यक्ष के सुपुत्र, जो अब तक सदा प्रथम आते रहे थे, और संयोग से जिनका नाम भी सदाप्रथम सिंह था, इस वर्ष पिताश्री के अध्यक्ष पद से हटते ही द्वितीय श्रेणी मे उत्तीर्ण घोषित हो गये। इसका कारण भी था: पिताश्री ने अपने अध्यक्षता-काल मे वर्तमान विभागाध्यक्ष के पुत्र को प्रथम श्रेणी से वचित कर दिया था। लेकिन सदा प्रथम सिंह को यह चीज भारी अन्याय प्रतीत हुई और अन्याय सहकर चुप रह जाने वालों मे से वे नही थे। उन्होने भ्रष्ट परीक्षा पद्धति का विरोध करने के लिए अपने नेतृत्व में एक आदोलन शुरू कर दिया।

सर्वप्रथम वे उन छात्रों से मिले जो अब तक सदा प्रथम आते रहे थे और इस वर्ष द्वितीय या तृतीय श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए थे। लेकिन पूरे विश्वविद्यालय मे ऐसे छात्र केवल तीन थे और तीन छात्रों से कोई आंदोलन नही चल सकता था। फिर भी सदाप्रथम सिंह उन्हे साथ लेकर उप-कुलपति के पास गये कहा—हम लोगो के साथ अन्याय हुआ है, प्रथम श्रेणी के हकदारों को प्रथम श्रेणी

मिलनी चाहिए। उप-कुलपति ने मन ही मन कहा यदि तुम वास्तव में ही प्रथम श्रेणी के हकदार होते तो तुम्हारे पिता दो साल और एक्सटेंशन पाकर विभागाध्यक्ष न बने रहते ? प्रकट में बोले, परीक्षा-पद्धति निस्सदेह दोषपूर्ण है, लेकिन बताओ, इसमें हम क्या कर सकते है ? कोई भी क्या कर सकता है ? और जब कोई कुछ नही कर सकता तो पद्धति जैसी भी है, छात्रो को उसमें आस्था रखनी चाहिए। जहा तर्क न चले, वहा आस्था और विश्वास का ही सबल रहता है। मेहनत करो, सभव है, अगले वर्ष प्रथम श्रेणी मिल जाये।

—साला उपदेश झाडने लगा। उप-कुलपति के कार्यालय से बाहर आकर सदाप्रथम सिह बौखलाये।

—हमारी सख्या कम है न। सोचना होगा, चार लड़के उसका क्या बिगाड़ लेंगे। अन्य साथियो ने भी क्षोभ प्रकट किया।

हम सख्या बढा लेंगे। सदाप्रथम सिह ने घोषणा की और एक व्यापक छात्र-आदोलन की योजना बनाने लगे।

परन्तु देश की निष्क्रिय जनता के समान ही उन्हे छात्र भी चेतनाहीन और जड़ दिखायी दिये। अनुत्तीर्ण छात्रो को तो श्रेणियो से कोई लेना-देना था ही नही; तृतीय श्रेणी वाले भी अपनी औकात जानते थे। उन्होने आदोलन का प्रस्ताव सुनकर कह दिया-कोउ नृप होइ हमहिं का हानी ? हम तो थर्ड ही रहेंगे। द्वितीय श्रेणी वाले कुछ उत्साहित दिखायी दिये, क्योंकि मामला द्वितीय से प्रथम हो जाने का था, और उनकी तो शाश्वत तमन्ना ही यह थी। लेकिन सदाप्रथम सिह को उन पर पूरा भरोसा नही था।

भरोसा हो भी कैसे सकता था ! ये लोग प्रथम श्रेणी के मामले में इतने गम्भीर थे कि शायद प्रथम श्रेणी इनकी गभीरता से ही घबरा कर इनसे दूर भागती थी। ये लोग एक परीक्षा देते ही अगली परीक्षा की तैयारी में जुट जाते थे। मनोरजन,

खेल-कूद, मौज-मस्ती, प्यार और राजनीति जैसी समस्त समय-खाऊ चीजों को इन्होंने पढ़-लिखकर उच्च पद पाने तक के लिए स्थगित कर रखा था। छात्र-जीवन में ही ये इतना पढ़-लिख लेना चाहते थे, कि बाद में पढ़ने-लिखने की जरूरत ही न रह जाये। लेकिन दोषपूर्ण परीक्षा-पद्धति की तर्कहीनता को ये अच्छी तरह समझते थे, इसलिए सदा विनम्र और अनुशासित रहते। किसी को नाराज न करते। क्या पता कौन कब उनके परीक्षा-फल में गड़बड़ी करा दे। इसलिए ज्ञात और अज्ञात, वर्तमान और संभाव्य समस्त परीक्षकों को ये भांति-भांति से प्रसन्न रखने की चेष्टा करते। प्रतिस्पर्द्धा में उनका अटूट विश्वास था और 'प्रतिस्पर्द्धा में सब कुछ नैतिक होता है' का मूलमंत्र गांठ बांध कर अपनी प्रथम श्रेणी सुरक्षित कराने के लिए ये लोग अन्य छात्रों के विरुद्ध दिदा अभियान में कोई कसर नहीं छोड़ते थे। ये लोग सदाप्रथम सिंह को पढ़ाई-लिखाई में शून्य मानते थे और मन ही मन घृणा करते थे—अत्यधिक अंतरंग मित्रों से कहते भी थे कि उद् साला विभागाध्यक्ष की औलाद हर साल एक योग्य छात्र की प्रथम श्रेणी खा जाता है—फिर भी सदाप्रथम सिंह को सदा प्रसन्न रखते कि कहीं वे अपने पिताश्री से कहकर उनकी श्रेणी खराब न करा दें। अत्यधिक अंतरंगों को भी इस दोहरी नीति का पता रहता और वे भी गोपनीयता की शपथ के साथ सुनी गयी बातें सदाप्रथम सिंह तक, या सीधे उनके पिताश्री तक पहुंचा आते। ऐसे लोगों पर भरोसा कौन कर सकता था!

लेकिन सदाप्रथम सिंह जानते थे कि इन लोगों को प्रभावित करके न सही तो डरा-धमकाकर तो साथ रखा ही जा सकता है। डरपोक ये लोग सचमुच ही बहुत ज्यादा थे। पढ़ाई सहित समस्त तिकड़मों के बावजूद इन्हें प्रथम श्रेणी खो देने का भय बना रहता और ये ज्योतिषियों को हाथ दिखाते फिरते, व्रत-उपवास करते और प्रतिदिन एक हजार एक बार भगवान से प्रार्थना

करते, भगवान, इस बार प्रथम श्रेणी अवश्य दिला दो। और भगवान इतने पर भी द्वितीय ही दिलाते तो ये लोग गभीर आत्मालोचना करते और कारण पा जाते, ऊपर से नीचे तक सब साले जलते है मुझसे! थोडी गलती मुझसे भी हुई कि डाक्टर अमुक को मक्खन पूरा नही लगाया। एक कारण यह भी हो सकता कि पढते समय मन साला कुमारी तमुक की तरफ भटक जाता था। यह भी हो सकता है कि अतिम प्रश्नपत्र मे अन्तिम प्रश्न के उत्तर में अंतिम दो पक्तिया समय पूरा हो जाने के कारण लिखने से रह गयी थी, इसलिए प्रथम श्रेणी मारी गई हो!

अत: सदाप्रथम सिंह ने द्वितीय श्रेणी वालों की एक आम सभा बुलायी। सभा पर्याप्त सफल रही और द्वितीय श्रेणी वालों ने सदाप्रथम सिंह के आदोलन प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया। बड़े जोशीले भाषण हुए, जिनमे से प्रत्येक ने जोर देकर यह बात दोहरायी गयी कि वास्तव मे छात्रो के भविष्य के साथ अब तक खिलवाड़ ही होता रहा है, अन्यथा द्वितीय श्रेणी पाने वाले समस्त छात्र वस्तुत: प्रथम श्रेणी के हकदार हैं। सदाप्रथम सिह समझ गये कि ये साले खुद को तीसमारखा समझते हुए मुझ पर व्यंग्य कर रहे है, लेकिन सह गये। आखिर उन्हें आदोलन चलाना था और आंदोलन अकेले नही चल सकता था।

भाषणों के बाद जब आगे की कार्रवाई निश्चित करने का प्रश्न उठा तो सदाप्रथम सिह ने बडे जोरदार तथा उत्साहवर्द्धक शब्दो मे लबी भूमिका बाधने के बाद कहा—पंद्रह अगस्त को हम उप-कुलपति के कार्यालय के सामने एक जोरदार प्रदर्शन करेंगे तथा अपना मागपत्र उन्हें देंगे। हमारी केवल दो मागें है, जिनका मैंने अत्यन्त सक्षिप्त और प्रभावशील नारों मे रूपातरित कर दिया है—मूल्याकन, सही करो! सही करो!! भ्रष्टाचार, बद करो! बद करो!!

उनका ख्याल था कि नारे अभी से लगने शुरू हो जायेंगे,

लेकिन सभा में खुसर-पुसर शुरू हो गयी। सदाप्रथम सिंह सुन पाते तो बातें संक्षेप मे ये कही जा रही थी—भाई मूल्याकन सही हो, यह तो ठीक, लेकिन भ्रष्टाचार ? भ्रष्टाचार कब नही हुआ है ? और उसे रोका जा सकता है ? सारे विभागाध्यक्षो के पुत्र पुत्रवधु, दुहिता--जामाता और भाई-भतीजे हर साल प्रथमश्रेणी प्राप्त करते हैं। और इस वर्ष तो स्वय उप-कुलपति महोदय की एक साली, जो हमेशा द्वितीय आती थी, प्रथम श्रेणी में प्रथम आयी हैं। हम किस-किसके भ्रष्टाचार को वन्द करने की माग करेंगे ? कही उप-कुलपति चिढ गये और सब द्वितीय वालो को तृतीय अथवा अनुत्तीर्ण ही घोषित करा दिया तो ? सदाप्रथम का क्या है, वे तो अनुत्तीर्ण होकर भी उच्च पद पा जायेंगे, हम लोगो को प्रदर्शन करने पर अनुशासनहीन कह कर दडित किया गया तो ?

सदाप्रथम सिंह मामला भाप गये और उग्र हो उठे। ललकार कर बोले—जिसमे अन्याय का प्रतिरोध करने का साहस नही हो, वह अभी इसी समय यहा से उठकर चला जाये। हमें अपने आदोलन मे कायरों की कोई जरूरत नही है। यह सुनकर खुसर-पुसर के उफान पर पानी पड गया। भरी सभा में कौन कायर कहलाना चाहता ? और पद्रह अगस्त के प्रदर्शन का कार्यक्रम सर्वसम्मति से निश्चित हो गया। 'छात्र-एकता, जिदावाद' के नारे के साथ सभा समाप्त हुई।

लेकिन पद्रह अगस्त को प्रदर्शनकारियो की सख्या काफी कम रही मुश्किल से तीस छात्र एकत्र हुए, जबकि विश्वविद्यालय मे लगभग पाच हजार छात्र इस वर्ष द्वितीय श्रेणी मे उत्तीर्ण हुए थे। सदाप्रथम सिंह का अनुमान था कि डेढ-दो हजार तो अवश्य ही प्रदर्शन मे भाग लेंगे और उन्होंने अपने अंतरगों के साथ सारी कारंवाई की रिहर्सल कई बार अच्छी तरह कर ली थी। उप-कुलपति को नियमानुसार प्रदर्शन के समय की सूचना दे दी गयी

थी, लेकिन परपरागत अनुभवों के आधार पर अनुमान था कि उप-कुलपति समय पर कार्यालय से बाहर नही आयेंगे और सदाप्रथम सिह को 'चोर-उचक्कों, बाहर आओ' का प्रचलित नारा लगाना पडेगा। तब उप-कुलपति बाहर आयेंगे और सदाप्रथम सिंह एक जोरदार भूमिका के साथ मांगपत्र पढकर सुनायेंगे। उप-कुलपति मागपत्र लेकर जाने लगेंगे तो नारे लगाते हुए उनका घेराव किया जायेगा और उन्हे वक्तव्य देने को विवश किया जायेगा। लेकिन ग्यारह बजे के निश्चित समय के बजाय बारह तक भी प्रदर्शनकारी काफी संख्या मे नही जुटे और अपने कार्यालय मे प्रतीक्षा करके उकताये हुए उप-कुलपति स्वय ही बाहर निकल आये। इधर-उधर बैठकर सिगरेट पीते प्रदर्शनकारियों के बीच सदाप्रथम सिह को पहचान कर उन्होने आवाज दी, 'लाइए भाई, दीजिए अपना मागपत्र। फिर मुझे एक जरूरी मीटिंग मे जाना है।'

बडी हडबडी मे सब हुआ। नारे तैयार थे, लेकिन लगाने की याद ही किसी को नही रही। प्रदर्शनकारी जब तक अपनी सिगरेटें बुझा कर पास आयें, तब तक सदाप्रथम सिह ने मागपत्र जेब से निकालकर उप-कुलपति को पकडा दिया। उप-कुलपति ने उसे सरसरी निगाह से पढा और वक्तव्य के लिए घेराव की प्रतीक्षा करने के बजाय बोले—आपकी दोनो मागें सर्वथा जायज है। यदि विश्वविद्यालय मे ऐसा भ्रष्टाचार हो रहा है तो सचमुच ही यह अत्यंत घृणित और निदनीय है। प्रतिभा को उसका उचित पुरस्कार पाने से कोई नही रोक सकता। मैं आपको आश्वासन देता हू कि मामले की पूरी छानबीन स्वय करूंगा। आप निश्चित होकर अपने-अपने घर जाकर स्वतन्त्रता दिवस मनाइए। जयहिंद !

उप-कुलपति वक्तव्य देने के बाद वापस कार्यालय मे जाने के बजाय आगे बढे और अपनी कार मे बैठकर फुर्र हो गये।

—टाय-टाय फिस्स ! हकबकी खत्म हुई तो एक समवेत स्वर उभरा।

सदाप्रथम सिंह ने डाटकर स्वर को दबा दिया—सेबोटाज ! भीतर घात ! जिन लोगों ने भीतर घात किया है, उन्हें हम देख लेंगे। साले की द्वितीय भी न छिनवा दी तो नाम बदलकर सदा गधा रख देना !

—सबसे बडे भीतरघाती तो उप-कुलपति हैं। देखा नहीं कितनी सफाई से कह गए कि प्रतिभा को उसका उचित पुरस्कार पाने से कोई नही रोक सकता। प्रतिभा इनकी साली का नाम है।

—सच ?

सदाप्रथम सिंह आदोलन की असफलता से अधिक अपनी अज्ञता पर क्षुब्ध हुए। इतना महत्वपूर्ण तथ्य आख से ओझल रह गया ! प्रदर्शनकारियो की अनुपस्थिति का कारण समझ मे आ गया। साथ ही यह भी समझ गये कि आंदोलन की कार्य-नीति और रणनीति दोनों ही बदलनी पड़ेगी। प्रथम श्रेणी तो लेनी है, लेकिन उप-कुलपति से टकराना उचित नही। आखिर साल भर बाद इसी विश्वविद्यालय मे खपना है और तब तक उप-कुलपति ये ही रहेगे।

नयी रणनीति के अनुसार सदाप्रथम सिंह ने दस वर्ष के समस्त प्रथमश्रेणी प्राप्त छात्रो की सूची बनायी और उनके सबध मे सूचनाएं एकत्र करना आरम्भ कर दिया। महानता यह कि जिस कार्य के लिए भारतीय आर. ए. डब्यू. या अमरीकी सी. आई. ए. को जरूरत पडती, सदाप्रथम सिंह ने स्वयं संपन्न कर लिया। सूचनाएं एकत्र हो जाने के बाद उन्होने अपनी सूची में से उन सब छात्रो के नाम खारिज कर दिये जिनका सम्बन्ध किसी बड़े सेठ, मंत्री, संसदसदस्य, कुलपति, उप-कुलपति विभागाध्यक्ष, प्रोफेसर या अन्य किसी भी प्रकार के महत्वपूर्ण व्यक्ति से था। शेष

मे से भी उन्होने केवल चार नाम चुने, जिनके बारे में उन्हें निश्चियपूर्वक पता चल चुका था कि इनकी प्रथम श्रेणी के लिए या तो केवल इनका भाग्य जिम्मेदार है या इनका परिश्रम। इन चार छात्रों की दूसरी विशेषता यह थी कि ये चारो केवल इसी वर्ष प्रथम आए थे, अन्यथा हमेशा द्वितीय या तृतीय आते रहे थे। सदाप्रथम सिंह खूब सोच-विचार कर इस निष्कर्ष पर पहुचे कि चार सदा प्रथम आने वालों की प्रथम श्रेणी इन्ही चार के कारण मारी गयी है, और इन चार पर भ्रष्टाचार के आरोप न केवल निर्भय होकर लगाए जा सकते है, बल्कि आसानी से सिद्ध भी किये जा सकते हैं।

छात्रो की दूसरी आम सभा बुलाने से पहले उन्होने इस सम्बन्ध मे अपने पिताश्री से सलाह ली। पिताश्री ने शाबाशी दी और उन्हे योग्य पिता का योग्य पुत्र कहते हुए शुभकामनाए भी दी। तदुपरात सदाप्रथम सिंह अकेले उप-कुलपति से जाकर मिले और पद्रह अगस्त के दिन हुई गलतफहमी को अनेकानेक स्पष्टीकरणो से धोने के बाद बोले—दरअसल हम इन चार लोगों के मामले मे हुए भ्रष्टचार को लेकर चितित है और हमारा पूरा विश्वास है कि सदा प्रथम आने वाले हम चारो इन्ही के कारण अपनी प्रथम श्रेणी से वचित हुए है।

—लेकिन यह विश्वविद्यालय है, यहा चार बराबर चार नही चलेगा। आदोलन जबर्दस्त होना चाहिए, तभी कुछ हो सकता है।

—आप तो गुरूवरो के भी गुरूवर हैं। कुछ तरीका बताइए न।

—आप देश के भावी कर्णधार हैं, आपको भी तरीका बताना पड़ेगा? समता और समाजवाद का युग है, यह बात किसी भी आदोलन को चलाते समय ध्यान मे रखनी चाहिए।

सदाप्रथम सिंह सकेत समझ गए।

छात्रों की दूसरी सभा बुलायी गयी और इस बार केवल द्वतीय श्रेणी वालो को नही, तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण तथा नितान्त अनुत्तीर्ण छात्रों को भी आमन्त्रित किया गया। पोस्टर पहले ही सारे शहर में सजा दिये गए कि प्रथम श्रेणी का आदोलन न तो सदा प्रथम आने वालो का आदोलन है, न भाग्यवश द्वितीय आने वालों का, यह इस भ्रष्ट विश्वविद्यालयके समस्त छात्रो का आदोलन है केवल उत्तीर्ण छात्रो का ही नही, अनुत्तीर्ण छात्रो का भी। आदोलन शुद्ध समता-मूलक तथा समाजवादी उद्देश्यो से प्रेरित है। इसका मूल आधार यह विचार है कि शिक्षा के क्षेत्र मे श्रेणी-विभाजन अब बिल्कुल बद होना चाहिए। हम विश्वविद्यालय मे पढने जाते हैं, अपना अपमान कराने नही। विश्वविद्यालय को कोई अधिकार नही कि उत्तीर्ण-अनुत्तीर्ण का या प्रथम-द्वितीय आदि का श्रेणी-विभाजन करके हममे हीनभाव पैदा करे। इससे हमारी पावन छात्र-एकता भी खडित होती है। इसलिए परीक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन का घिसा-पिटा नारा देने के बजाय हम माग करते है कि परीक्षा की इस घृणित प्रथा को ही समाप्त कर दिया जाए जो छात्रो मे असमता और भेदभाव उत्पन्न करती है। हमारी मागें है—छात्रों के भविष्य से खिलवाड़ बद की जाए। बिना परीक्षा लिए ही सब छात्रों को उत्तीर्ण घोषित किया जाए। और या तो श्रेणिया समाप्त कर दी जाएं, या सबको प्रथम श्रेणी दी जाए। छात्र-एकता जिन्दाबाद !

प्रचार करते-करते सदाप्रथम सिंह को यह भाषण ऐसा कंठस्थ हो चुका था कि सभा मे इसे ज्यों-का-त्यो दोहरा देने में उन्हें कोई प्रयास नही करना पडा। सभामें छात्रो की उपस्थित अभूतपूर्व थी हजारों छात्र उपस्थित थे। जो स्वय नही आ सके थे, उन्होंने अपने भाई-बहनों और माता-पिताओ को भेज दिया था, जिन्हें लग रहा था कि सदाप्रथम सिंह के रूप में सचमुच भगवान ने अवतार लिया है, अन्यथा यह कैसे होता कि उनके नालायक

लड़के अब पढ़ें, चाहे न पढ़ें एक ही साल में पास हो जाया करेंगे—सो भी प्रथम श्रेणी में !

लेकिन सभा में उपस्थित लोगों की समझ में यह नहीं आ रहा था कि मंच पर जो भी भाषण देने आ रहा है, उन चार छात्रों को उनके भ्रष्टाचार के लिए क्यों कोस रहा है, जिनके नाम शहर में लगे तमाम पोस्टरों पर भ्रष्ट छात्रों के रूप में चमक रहे हैं। कोई उन्हें परीक्षा-भवन में नकल करने वाला बता रहा है, तो कोई चाकू दिखाकर पर्यवेक्षकों को डराने वाला। कोई कह रहा है कि उन चार छात्रों ने परीक्षकों को रिश्वत खिलायी है, तो कोई यह आरोप लगा रहा है कि उन्होंने अपने-अपने विभागाध्यक्षों की चापलूसी करके प्रथम श्रेणी प्राप्त की है। कम से कम माता-पितानुमा लोगों का कहना था कि जब सभी को प्रथम श्रेणी दिलवा रहे हो तो उन चार बेचारों ने ही तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?

इतने में उन चार छात्रों में से एक छात्र, जो चुल्लू भर पानी में डूब मरने की सोचता घर नहीं बैठा रह सका था, वहां आ गया और एक वक्ता का भाषण समाप्त होते ही उछलकर मंच पर चढ़ गया। मंच के व्यवस्थापकों में से कोई उसे नहीं जानता था, फिर भी किसी ने उसे रोका-टोका नहीं। सदाप्रथम सिंह ने पहले ही आंख मारकर उनसे कह रखा था कि जो भी बोलने आये, बोलने दो। बल्कि आमंत्रित करो कि जो भी आकर बोलना चाहे बोले। सबके लिए खुला मंच कहो, क्योंकि यहां जो भी आएगा, अपनी प्रथम श्रेणी के लिए बोलेगा, और वह सब हमारे पक्ष में होगा।

लेकिन उस लड़के ने कहा—भाइयो, मैं उन चार बदनाम लड़कों में से एक हूं, जिन्हें यहां बिना पानी पिए ही बार-बार कोसा जा रहा है। यह सच है कि इस वर्ष मुझे प्रथम श्रेणी मिली है और इससे पहले कभी नहीं मिली थी। लेकिन यह

मात्र एक संयोग है, जैसा कि हर साल मेरे साथ घटता रहा है मैं जानता हूं, और शायद आप लोग भी अच्छी तरह जानते हैं कि सामाजिक श्रेणियों की तरह ये विश्वविद्यालय की श्रेणिया भी एक तर्कहीन, अन्यायपूर्ण और भ्रष्ट व्यवस्था के अंतर्गत निर्धारित होती है। इसलिए मैं बरसों पहले इन श्रेणियों में ही नही, वर्तमान परीक्षा-पद्धति और समूची शिक्षा-पद्धति मे विश्वास खो चुका हू। मेरी प्रथम श्रेणी मुझसे छीन ली जाए तो मुझे कोई दुःख नही होगा, जिस तरह इसके मिलने पर मुझे कोई प्रसन्नता नही हुई। लेकिन आप लोगो का आदोलन मेरी समझ मे नही आ रहा है। आप लोग परीक्षा को अपने कैरियर के सवाल से भी जोड रहे हैं, परीक्षा-पद्धति को समाप्त करने की माग भी कर रहे हैं, और साथ ही प्रथम श्रेणी भी पाना चाहते हैं। यह सब साथ एक कैसे सम्भव है ? या तो·· ......

सभा मे पहली बार इतना सन्नाटा छाया था, इसलिए मच पर आपसी बातचीत मे लगे व्यवस्थापक और सदाप्रथम सिंह चौंके। चौक कर उन्होने उस वक्ता का बातें सुनी। और जब वे बातें समझ मे आयी तो सदाप्रथम सिंह चीते की तरह उछल कर उस लडके के पास पहुच गए। माइक छीनकर उसे एक धक्का दिया और जोर से घोषणा की—यह मच भ्रष्ट लोगों के लिए नही है। भ्रष्ट लोगों को यहा से निकाल कर बाहर कर दिया जाए।

और जब सदाप्रथम सिंह के साथ और समर्थक उस लडके को मारते-पीटते पडाल से बाहर ले गए, सदाप्रथम सिंह ने उनके आचरण का रेशा-रेशा उधेड़ते हुए उसे अत्यन्त भ्रष्ट सिद्ध किया और सभा समाप्त कर दी।

सभा के बाद वहा उपस्थित सब लोग एक विशाल जुलूस की शक्ल मे जोशीले नारे लगाते हुए उप-कुलपति के

के सामने पहुंचे। काफी देर नारे लगाने के बाद भी उप-कुलपति बाहर नहीं आए तो प्रदर्शनकारियों ने नारा लगाया—'चोर-उचक्कों, बाहर आओ।'

उप-कुलपति शायद इसी नारे की प्रतीक्षा कर रहे थे। तुरन्त मुस्कराते हुए बाहर निकल आए। मांगपत्र पढ़ाने का मौका सदाप्रथम सिंह को उन्होंने इस बार भी नही दिया। पहले ही वक्तव्य दे डाला—जैसा कि मैंने पिछली बार आश्वासन दिया था, मैंने पूरे मामले की जाच स्वय की और यह पाया कि कम्प्यूटर की गडबडी से इस वर्ष चार प्रथम श्रेणी वाले द्वितीय हो गए है। यह भूल सुधार दी जाएगी, बाकी विश्वविद्यालय में भ्रष्टाचार बिल्कुल नही है।

लक्ष्मीकांत वैष्णव

○

गेंदालाल कार्यकर्ता

पड़ोसी की घड़ी का पाच बजे का अलार्म बजा और गेंदालाल कार्यकर्ता उठकर खड़ा हो गया। हालांकि उसकी इतने सुबह उठने की आदत नही थी मगर काम इतना अरजेंट था कि आजकल करीब पन्द्रह दिनो से उसे रोज सुबह इसी समय उठना पड रहा था। उधर रात को भी कभी बारह, कभी एक, तो कभी दो-दो बज जाते थे सोने मे। आंखें लगातार जाग-जागकर लाल हो चली थी सूजकर तथा सूखे होठों पर पपड़ी भी जम चली थी। पैदल चल-चल कर पावो का, तलुओ का भी कबाडा हो चला था। हालाकि नेताजी ने कहा था कि जूता दिलवाये देते है फस्किलास बाटा का। मगर गेंदालाल कार्यकर्ता को जूता पहन-कर पैदल चलने मे कष्ट होता था, अत: उसने तेरह रुपये की मे चमड़े की चप्पलें खरीद ली थी और बिल नेताजी को दे आया था। कपड़े भी उसने चार जोड़ी कुरता-पाजामा बनवा लिये थे। दो सफेद खादी के कुरते तथा दो सिल्क के—कोसा के। पाजामे चारो खादी के ही ले लिये थे। हालाकि नेताजी ने कहा था कि गेंदालाल, कपड़े कुछ ऐसे लो कि पता न चल पाये कि तुम कांग्रेसी

हो, लोकदली या जनसंघी। तो गेंदालाल ने कहा था कि खादी तो तमाम नेताओं की ड्रेस है। पारटी की पहचान तो उस बैज से होगी जिसे वह अपने सीने पर लगाये घूमेगा।

दस रुपये रोज लेता था गेंदालाल कार्यकर्ता नेताजी से—एक दिन के चुनाव प्रचार के। खाना-खुराक अलग से। बाकी दीगर काम जैसे पोस्टर चिपकाना, जीप का इंतजाम करना, झंडिया मिलवाना जैसे कामो के लिए पैसे अलग से लेता था। वोट डालने के सात-आठ दिन पहले से उसकी इनकम काफी बढ जाती थी। पचास-पचास रुपये रोज तक वह नेताजी से झड़ा लेता था। नेताजी ने कभी इनकार नही किया गेंदालाल कार्यकर्ता को। उसने बाज वक्त सौ-सौ रुपया रोज मागा है और नेताजी ने बगैर ना-नुकर किये पैसा निकालकर दे दिया है। मूल कारण था इस बात का—विश्वास। गेंदालाल, चपालाल और हीरालाल ये तीन ही कार्यकर्ता नेताजी के क्षेत्र मे ऐसे थे जिन पर नेताजी को पूरा विश्वास था। और इसीलिए जब चमारो के मुहल्ले मे औरतो को साडिया बाटने का, या उधर कोलियो—कोरो मे दारू की बोतलें सप्लाई करने का काम आता था, तो नेताजी इन्ही तीनो पर जिम्मेदारी सौंपते थे। वरना हरीराम, मुखलाल, गंगापरसाद जैसों पर ऐसा काम दे दो तो साले आधी दारू तो खुद ही पी जाते थे और प्रचार के दौरान मतदाताओ को तो गालिया देते ही थे, खुद नेताजी की भी जननी-भगिनी का उल्लेख खुलेआम करते घूमते थे। एक बार हरिजन-टोली मे लट्ठा बाटने का काम दिया था तो साले उसी बनिये की दुकान पर वापस बेच आये थे जहा से कि कपडा खरीदा गया था। एक बार तीनो को हजार-हजार के नोट दिये बाटने को तो सौ बाटे और बाकी खा-पी गये। तब की बात कुछ और थी। नेताजी को भी ऊपर पारटी की ओर से पैसा मिलता था। कुछ लोकल सेठिये भी पैसा देते थे। कलारी के ठेकेदारों और जमाखोरों को

ओर से भी काफी कुछ मिल जाता था। इसके अलावा नेताजी ने भी अपने पावर के दिनों में काफी कुछ कमा लिया था। अतः इस प्रचार के दौरान कोई हजार-दो हजार खा भी जाये तो नेताजी को नही अखरता था। "अपने वालों के ही पेट मे गया," कहकर नेताजी संतोष कर लेते थे। मगर अब बात दूसरी थी। फिलहाल एक तो नेताजी की खुद की हालत खस्ता थी, दूसरे पारटी वालो ने कह दिया था कि भैया खड़े होना है तो पैसे का इंतजाम खुद करो। हां, थोड़ा-बहुत पारटी फंड से मिल जायेगा। तबसे नेताजी की पारटी पर से भी आस्था खतम हो गयी थी। पैसा आस्था पैदा करता है और पारटी कहती थी कि उसके पास पैसा नहीं है।

अब चूंकि चुनाव की नाव नेताजी को अपने खुद के बल-बूते पर खेनी थी, उन्होने गेंदालाल कार्यकर्ता से कहा था कि गेंदालाल इस बार जरा ईमानदारी से चलना है। बुरा लगा था गेंदालाल कार्यकर्ता को, क्योंकि गेंदालाल हमेशा ईमानदारी से ही चलता था। ठीक उसी प्रकार की ईमानदारी से, जिस प्रकार की कि राजनीति में जरूरी होती है। यानी 'खाना-पीना' भी तो बिल्कुल ईमानदारी के साथ। उसने कही किसी महात्मा का लिखा हुआ एक वाक्य भी पढा था कि चोर को भी ईमानदार साथी की जरूरत होती है। जब नेताजी ने ईमानदारी वाली बात की तो न जाने क्यो उसे, उस महात्मा की उक्त बात याद आ गयी। वैसे उसने किसी बुद्धिजीवी को भी एक बार कहते हुए सुना था कि जमाना सीमित ईमानदारी का है। पूरा ईमानदार बेवकूफ बनता है। उस बुद्धिजीवी से गेंदालाल कार्यकर्ता ने बात का खुलासा करने को कहा था तो उसने कहा था कि जैसे बार-बार नारे आते है—सीमित प्रजातंत्र, सीमित-तानाशाही, सीमित पूंजीवाद, सीमित साम्यवाद वैसो ही 'सीमित-ईमानदारी' अगर आप जिंदा भी रहना चाहते हैं और चाहते हैं कि आपकी अंतरात्मा भी

थोड़ी-बहुत जीवित रहे तो सीमित-ईमानदारी के नुस्खे से चलो। दोनों पहलू सध जायेंगे। वैसे गेंदालाल कार्यकर्ता बुद्धिजीवियों के अवसर मुंह लगता नही था। कारण, उसकी स्पष्ट धारणा थी कि बुद्धिजीवी मूर्ख होते हैं। जब सारी-दुनिया उत्तर की ओर भाग रही होती है, वे दक्षिण दिशा की बात करते हैं और जब दुनिया का रुख दक्षिण की ओर होता है तो वे उस दिशा के गुण गाने लगते हैं। वह अगर किसी को अपना आदर्श मानता था तो नेताजी को। जब हवा उत्तर की होती है तो नेताजी हवा के रुख के साथ बाकायदा उत्तर की ओर सरक रहे होते हैं और जब दक्षिण की बात चलती है तो बिना कोई तर्क-वितर्क किये दक्षिण का रास्ता पकड़ लेते हैं।

□

अपनी पुरानी हाथ-घडी उठायी गेंदालाल कार्यकर्ता ने और समय देखा। साढे पांच बज चुके थे। अब खटिया छोडकर उठने मुंह-हाथ धोने आधा घण्टा तो हो ही जाता है। हल्की-सी सर्दी थी वातावरण मे, मगर गेंदालाल कार्यकर्ता को लगा कि कुरते से काम चल जाएगा। स्वेटर था उसके पास मगर वह काफी पुराना हो गया था और उसकी ऊन जगह-जगह से उधड गयी थी। शायद दो या तीन चुनाव पहले की निशानी थी यह जो इन्ही नेताजी ने बनवाकर दी थी। नेताजी की किसी महिला कार्यकर्त्री ने बडी आत्मीयता से बुनकर दिया था यह स्वेटर। अब न तो नेताजी को कोई महिला कार्यकर्त्री मिल रही थी और न ही वे गेंदालाल कार्यकर्ता को नया स्वेटर लेने का आग्रह कर रहे थे। बहरहाल, सर्दी स्वेटर के लायक नही है, सोचा गेंदालाल ने और बीवी से कहा कि पोस्टरों का गट्ठर निकालकर बाहर रख दे, ताकि वह सायकिल के कैरियर पर बांधकर उन पोस्टरों को चिपकाने ले जा सके। यह एक अतिरिक्त काम था उसके जिम्मे। दस रुपये रोज के अलावा पंद्रह रुपये रोज इन पोस्टरों

को दीवार पर चिपकाने के अलग से मिलते थे ।

हालाकि दूसरे कार्यकर्ता रात मे पोस्टर चिपकाते थे मगर गेंदालाल कार्यकर्ता यह नही करता था । रात को चिपकाये हुए पास्टर दूसरी पारटी के कार्यकर्ता उखाडकर ले जाते थे या फिर उन्हीं पोस्टरो के ठीक ऊपर अपने उम्मीदवार के पोस्टर चिपका देते थे । लिहाजा गेंदालाल कार्यकर्ता दिन के उजाले में यह काम करता था । पूरे पोस्टर पर लेई चुपडकर गेंदालाल कार्यकर्ता ने किसी दीवार पर चिपका दिया फिर किसी के बाप की हिमम्त नही थी कि उसे उखाड़ दे । या कि उस पर दूसरा पोस्टर चिपका दे । अपने जमाने में पहलवान भी रह चुका था वह । पचास दड सवेरे और पचास दंड शाम को पेलता था । जब नेताजी मत्री थे तो एक किलो दूध सवेरे, दस बादाम साथ में घिसकर तथा एक किलो दूध शाम को, दस ग्राम केसर के साथ पीता था गेंदालाल कार्यकर्ता । हालाकि दूध अब उसने एक अरसे से नही देखा था, मगर काठी मे अभी भी दम था । गुंडा कहते थे लोग उसे उन दिनो, और कहते थे कि नेताजी ने उसे पाल रखा है । मगर चिंता नही करता था गेंदालाल कार्यकर्ता । साले जलन की वजह से कुछ भी कहते रहो । अपन तो माल पेल रहे हैं और दंड पेल रहे है । वैसे गुंडागर्दी की कोई हरकत कभी की नहीं थी गेंदालाल कार्यकर्ता ने, सिवाय इसके कि वह जब तक जलाल मे रहा, सीना तानकर चलता रहा और नेताजी ने जिसकी ओर इशारा किया उसकी सरेआम चौराहे पर मा-बहन एक कर दी । जिसके बारे में सोच लिया कि इस आदमी से अपने को पैर पकड़वाने हैं, उससे बाकायदा पैर पकड़वाये । मगर उसने मा-बहन किसी की नही छेड़ी । अब इस सब को आप गुंडागर्दी कहते हो तो कहते रहो । भाई, जब आदमी पावर मे होता है तो इतना हो । साले, यह क्यों भूल जाते हो कि जब राजाओं-जमाना था तो उनके लग्गू-भग्गू कितनी आग मूतते

उनके मुकाबले एक परसेंट भी जनसेवा नही करते। भाई, चीजों की तुलनात्मक रूप से ही तो देखा जाएगा। अब सभी संत हो जायें और हर ऐरे-गैरे से भइया-दादा करके बात करने लगे तो हो गयी राजनीति। 'भय बिनु होत न प्रीत' वाली बात भी तो किसी सत ने कही है न !—याद आता है गेंदालाल कार्यकर्ता को, उन दिनों वह 'गेंदा भइया' बजा करता था। सरकारी अफसर उसे गेंदाजी कहकर बुलाते थे। छोटे-मोटे कारकून, मास्टर वगैरह तो दूर से ही हाथ जोडकर सलाम करते थे। एम० पी० की जीप में तो न जाने कितनी बार उसने राजधानी के चक्कर लगाये थे।

अब किस्मत का चक्कर है—सोचता है गेंदालाल कार्यकर्ता और पोस्टरों का गट्ठर उठाकर सायकिल के कैरियर पर बाध लेता है। लेई उसकी बीवी ने रात को ही चुडाकर रख दी थी जो उसने डालडे की पुरानी पिपिया में भर ली और सायकिल के हैंडिल से टाग ली। बीवी तब तक चाय बनाकर ले आयी—कड़क और मीठी चाय, जिसे उसने जल्दी-जल्दी हलक से नीचे उतारा और सायकिल लेकर चल दिया। पहले उसने सोचा कि पोस्टर का काम किसी और कार्यकर्ता को दे दे और खुद 'डोर-टु-डोर' सपर्क में लग जाये। उसे सामने से मगू आता दिखा भी। मगर पिछले चार-छह दिनों से बराबर शिकायत आ रही थी कि नेताजी के फोटो वाले पोस्टर रद्दी की थोक खरीदी वाली दुकानों पर काफी बिक रहे हैं और रद्दी वाले उनके लिफाफे बना-बनाकर परचून की दुकान वालों को सप्लाई कर रहे हैं। बात यह थी कि रद्दी इन दिनों काफी महगी हो गई थी और कार्यकर्ता को दिन भर पोस्टर चिपकाने के अगर पद्रह रुपये मिलते थे तो पोस्टरों की रद्दी में बेचने पर बीस रुपये मिल जाते थे। मेहनत बचती थी सो अलग। लिहाजा गेंदालाल कार्यकर्ता ने मंगू को पोस्टर का काम देना उचित नहीं समझा। साथ ही वह यह सोच

रहा था कि कार्यकर्ता भी साले कितने बेवकूफ है। केवल तात्कालिक लाभ पर नजर रखते हैं। अरे सालो, पोस्टर बेचकर तुमने बीस कमा लिए, इससे क्यों खुश होते हो। जरा दूरगामी नजर रखो। इन पोस्टरो को चिपकाओ। नेताजी को जिताओ और दो सौ के, दो हजार के लाभ पर नजर रखो। अपने देश-वासियो की इसी आदत पर उसे चिढ थी। हर आदमी आज ही सब-कुछ भुना लेना चाहता है। कल पर किसी की नजर नहीं है। अरे सालो, आज बोकर आज ही काटोगे तो क्या मिलेगा? आज बोओ और कुछ दिन बाद दस-गुना काटो। मगर धीरज कहा है। इसी चक्कर में हिरदेराम एम० एल० ए० मरा था। पारटी वालों ने कमेटी का चेयरमैन बनवा दिया। इधर कुर्सी पर बैठा और उधर टपकाने लगा लार। हपाक-हपाक खाने लगा जैसे बंगाल के अकाल में पैदा हुआ हो और महीनों से अन्न न देखा हो। बस, खुल गयी बहुत जल्दी, और आ गये सड़क पर। अरे थोडी धीरज रखता तो न तू बदनाम होता और न ही पारटी बदनाम होती।

□

गुजर जाने दिया मगू को गेंदालाल कार्यकर्ता ने। वह भी सुबह जल्दी उठा लगता था। तभी उसकी आखें आधी खुली, आधी मुंदी-सी लग रही थीं। कुछ प्रचार की परचिया रख था वह अपने झोले में और ग्रामीण इलाके की ओर बढ़ा जा रहा था। हालांकि ग्रामीण इलाके में गेंदालाल भी जाता था मगर इस बार उसने नेताजी से साफ कह दिया था कि इस बार वह शहरी इलाके सम्भालेगा। उन गाव वालों को सालों को सम-झाना मुश्किल हो जाता है। इसके अलावा नसबंदी के दिनों में जब नेताजी काग्रेस में थे, नेताजी के कहने पर गेंदालाल कार्यकर्ता ने जरा ज्यादा ख्याति अर्जित कर ली थी और वह साफ करता था कि जब-जब भी वह उधर से गुजरता है, या

ही कोई ग्रामीण मतदाता दिख जाता है, तो गेंदालाल कार्यकर्ता को देखकर ही शायद उसके नसबंदी के टाके हरे हो जाते हैं। हालांकि नसबंदी गेंदालाल कार्यकर्ता ने खुद भी करा रखी थी और यह बात वह उन दिनों गौरव से कहता भी था मगर दूसरों को न जाने क्यों विश्वास नही होता था। अब वह अपने टाकों को खोलकर तो बताने से रहा। भाई, मानो तो ठीक, न मानो तो ठीक। उधर औरतो मे भी गेंदालाल कार्यकर्ता के प्रति आक्रोश था। पता नही कैसे, यह बात औरतो में फैल गयी थी कि नसबंदी के बहाने न जाने क्या कर देते है आदमियो का। लिहाजा सारा आक्रोश गेंदालाल कार्यकर्ता पर था जो लोगो की नसें कटवाने मे तैमूर लंग से भी ज्यादा पराक्रम का प्रदर्शन कर रहा था। उधर दिल्ली के चौराहे पर तैमूर लग ने लोगो के कटे सिरो के ढेर लगवाये थे, इधर गेंदालाल कार्यकर्ता रोज इतने केस लाता था कि अस्पताल मे कोई किलो-डेढ़ किलो कटी नसो की ढेरी लग जाती थी। अपने सामने खड़े-खड़े करवाता था गेंदालाल कार्यकर्ता नसबदी। कैसे डाक्टर सुन्न करने का इजेक्शन देता है। कैसे चमड़ी मे ब्लेड से छोटा-सा बटन के काज जैसा छेद बनाता है और कैसे चिमटी से पकड़कर पीली नस निकालता है और उसके बाद लगभग एक इंच लबा नस का टुकड़ा किस प्रकार कैंची से छुक्क से काट देता है। बस इसके बाद तीन टाके रेशम के धागे के, और मरीज उठकर खडा। कुल मिलाकर पाच मिनट से अधिक नहीं। उधर कटी हुई नस के छोटे-छोटे सफेद-पीले टुकड़े एक बेसिन में जमा होते जाते थे और काफी इकट्ठे हो जाने के बाद दूर से ऐसे लगते थे जैसे सिवई बनाकर रख दी हो।

एक यज्ञ जैसा चल रहा था उन दिनों, जिसमे गेंदालाल कार्यकर्ता ने अपनी विनम्र आहुति दी थी—कोई एक हजार केस करवाये थे उसने नसबदी के, कुछ हाथ-पैर पड़कर, कुछ पैसा

देकर, तो कुछ दादागिरी से। नेताजी ने कह भी रखा था कि साम-दाम-दंड-भेद सभी से काम लेना है। मामला देशहित का है और इसे करना है। अब जिसकी नस कट रही थी, उसे देशहित अक्सर समझ में नही आता था और वह यह पूछता था कि नेताजी ने अपनी नसवदी क्यों नही करायी। अब गेंदालाल क्या कहे! अरे सालो, नेताजी राजा हैं और कायदे-कानून जो बनते हैं, वे प्रजा के लिए बनते हैं। इसके अलावा नेताजी साठ की उमर पार कर चुके, अब नसवंदी करायें भी तो नाटक लगेगा। साथ ही इस अफवाह को भी बल मिलेगा कि साठ के ऊपर के बुड्ढों की भी नसवदी की जा रही है।

हालांकि दूसरे साधन भी थे, संतान कम पैदा करने के मसलन लूप, कडोम, जेली, डायफ्राम वगैरह मगर गेंदालाल कार्यकर्ता उनका उपयोग बतलाते-बतलाते थक गया था, ग्रामीण मतदाता की वे समझ में नहीं आते थे। औरतें यह सब कुछ देख-सुनकर हंसती थी, और बदले में वह औरतों पर हंसता था। लिहाजा यह रास्ता उसे जमा था नसवदी का। मगर क्या करो, लोगों को यह नही जमा। उधर अकल का यह हाल कि कोई कहे कि नसवदी कराने के बाद उसे दस्त लगने लगे, कोई कहे कि उनसे दांत हिलने लगे। किसी का नसवदी कराने की वजह से बछड़ा मर गया तो किसी के घर उसी रात चोरी हो गयी जिस दिन उसने नसवदी करायी थी। अब साली इन बातों का नसवंदी से क्या वास्ता। जो डाक्टर कह रहा है उसे भी तो मानो। अब क्या बेवकूफ है गेंदलाल कार्यकर्ता जो उन्होंने भरी जवानी में करवा ली। पप्पू, बबलू, गुड्डू और चिट्टू हुए कि करवा ली। मगर ग्रामीण मतदाता नहीं समझता यह सब। अरे यार, गवरमेंट किसी की भी बने, अगर जनता ऐसे ही ... रही तो किसकी चलेगी! बस प्यारे, न हम होंगे, न तुम ... हमारी दास्तां होगी। खैर अपने को क्या करना ...

गेंदालाल कार्यकर्ता। नेताजी ने कांग्रेस ही छोड़ दी थी और सरे आम कह रहे थे कि अपना नसबंदी से कोई वास्ता नही था। न कभी था और न रहेगा। नेताजी यह भी कहते थे कि अपना उस कार्यक्रम को कोई समर्थन नही था, अन्यथा वे खुद भी अपनी नसबंदी न करा लेते। मगर गेंदालाल कार्यकर्ता अपनी करा चुके थे। लिहाजा चुप रहे थे। नेताओं की यही आदत उन्हे अखरती थी कि जब किसी बात की सफाई देने का मौका आता था तो किस सफाई से वे दूसरो पर सारा दोष डाल दिया करते थे। दुनिया है—सोचता था गेंदालाल कार्यकर्ता।

जनता पारटी मे घुसने की कोशिश की थी नेताजी ने। अपने घर में मीटिंग बुलाकर—जिसमे गेंदालाल कार्यकर्ता ने भी उद्बोधन किया था—नेताजी ने नयी पारटी के प्रति पूरी निष्ठा की शपथ भी ली थी। चौराहे पर उन लोगों के सामने गीता की पोथी उठाने को तैयार थे मगर क्या बताओ, उन लोगों ने इन्हे जात मे नही मिलाया। नेताजी ने कहा था कि नगर-भोज ले लो। मगर फिर भी नही माने। तब नेताजी ने कहा था कि गेंदालाल, तेल देखो तेल की धार देखो। बुरे दिन हमेशा नही रहते। अपने अच्छे दिनों का इतजार करो। उधर कुछ लोगो ने नेताजी को जेल हो आने की सलाह दी थी। कहा था कि पुराने जमाने मे पुरखे गगाजी, हरिद्वार, बदरीनारायण जाकर पवित्र हो आते थे। आप कोई सेंट्रल जेल, जिला जेल वगैरह हो आओ। मगर जेल के नाम से नेताजी कुछ डरते से थे। पता नही क्या वजह थी। वैसे लोग कहते थे कि ये बरसो पहले शायद एक-दो बार हो आए है—किस उपलक्ष में, यह लोग नही बताते थे। और शायद उन्ही पूर्व अनुभवो के तहत वे उधर जाने की किसी सलाह पर गौर नही करते थे। गौर करना तो दूर, कुछ बिदकते थे। वैसे उन्होने यह जरूर स्वीकार कर लिया था कि अपनी छवि सुधारने के लिए वे अन्य कोई त्याग करने को तैयार हैं। मसलन

वर्तमान एम० एल० ए० की गाय-भैंसे बीच सड़क पर गोबर करती चलती हैं, इस बात को लेकर आमरण अनशन पर बैठ सकते है—वह भी इस शर्त पर कि अनशन पर बैठने के दस-बारह घण्टों के अन्दर उन्हें मना लिया जाये अनशन तोड़ने को। उस दिन गेंदालाल कार्यकर्ता को लगा था कि नेताजी बरसों से राजनीति कर रहे है मगर अभी भी कच्चे है। अनशन के और भी बढिया मुद्दे तो वह बतला सकता है। उसने अपने सहयोगियो से भी कहा था कि पार्टनर, नेता की बजाये हम चमचे शायद ज्यादा समझदार हैं राजनीति करने में। इन लोगो की जो कुछ भी छवि है, सब हमारी वजह से है। अगर हम हट जायें तो ये कहीं के न रहें। हमीं वो ईंधन है जो इनकी गाडी को निरंतर चलायमान रखते हैं।

□

चलायमान था गेंदालाल अपनी सायकिल पर। सायकिल पुरानी थी और वह सोच रहा था कि इसकी ओवरहालिंग करवा ले। दस रुपये कह रहा था मजीदखां सायकिल सुधारने वाला। उसने सोचा, वह कल डाल ही देगा सायकिल उसके यहां और बिल नेताजी को थमा देगा। वैसे कल उसे नेताजी की जीप में जाना ही है जनसम्पर्क के लिए उधर कहारटोली में। सायकिल की जरूरत वैसे भी नहीं पड़ेगी। कहारटोली की तरफ नेताजी अकेले कभी नहीं जाते थे। गेंदालाल जैसे दो-तीन सशक्त कार्यकर्ता लगे रहते बराबर उनके साथ में थे। उधर किसी महिला के साथ स्कैंडल हो गया था नेताजी का, काफी बरस पहले। बीच में जब तक नेताजी पावर में रहे, वह कांड दबा रहा। अब जब पिछले चुनाव में वह हारकर सड़क पर आ गये तो वह बात फिर सिर उठाने लगी थी। कुछ युवा कहार लड़के जो कांग्रेस के हारने के बाद जनता पारटी में शामिल हो गये थे उन्हें ढूंढते भी रहे थे कि अगर अकेले-दुकेले वे उस मुहल्ले में दिख

जायें तो उनके जमकर तिये-पाचे कर डालें। वैसे नेताजी उसी महिला के यहा अनेक वार जाकर राखी वधवा आये थे तथा सार्वजनिक रूप से उसे अपनी जननी तुल्य भी घोषित कर चुके थे। महिला ने भी पर्याप्त वड़प्पन का परिचय दिया था और उसने उनसे कुछ पैसा-धेला लेकर आम-सभा मे क्षमादान दे दिया था। मगर वस्ती के लोग सतुष्ट नही थे। खासतौर पर वे लोग जिनके ऊपर आमतौर पर वस्ती की नैतिकता को वनाये रखने का जिम्मा होता है—और इस काम के अलावा शायद कोई अन्य काम नही होता—सतुष्ट नही थे। वे लोग कहते भी थे कि इस आदमी को हम जान से मार दें तो भी संतुष्ट नहीं होंगे। जव लोगों ने कहा कि अगर वह जीतकर फिर मंत्री वन जायें तो सतुष्ट हो जाओगे, तो इस वात पर वे सहमत से होने लगते थे। क्या जमाना है, सोचता है गेंदालाल कार्यकर्ता। कुर्सी पर वैठा आदमी वेईमान हो, धूर्त हो, गुंडा हो, वदचलन हो, सव चलेगा। वल्कि लगे तो उसके पैर भी पड लेंगे—तलुवे चाट लेंगे। और जैसे ही वह प्रभावहीन हुआ, साले उसकी जान के दुश्मन वन जायेंगे। ताकत का जमाना है गेंदालाल। राजनीतिक ताकत का। राजनीतिक वटोरो और सरे आम आग मूतो।

□

कैरियर पर वधे हुए पोस्टर शायद एक ओर खिसकने लगे थे। कोई वीस किलो का वडल था वह जिसे उसने पतली सुतली से वाध रखा था। जिस मुहल्ले मे उसे पोस्टर चिपकाने थे वह लगभग शुरू हो चला था। लिहाजा गेंदालाल कार्यकर्ता सायकिल से उतरा। पोस्टरों का वडल उसने जमीन पर रखा और पोस्टर खोलने लगा। डालडे की पुरानी पिपिया मे रखी लेई हाथ की उगलियो मे ली और एक पोस्टर को उलटाकर पूरे पर चुपड़ दी। मुगनामल सिंधी की चाय की गुमटी भी नजदीक ही। उसकी

गुमटी के साइड में वाले हिस्से पर उसने जाकर पोस्टर चिपकाया और सुगनामल से कहा कि एक बढ़िया कड़क चाय बना।

सुगनामल उसकी सारी हरकत को गौर से देखता रहा था। किस प्रकार उसने पोस्टर जमीन पर उलटा बिछाया, किस प्रकार आत्मीयता से उस पर लेई चुपड़ी और किस सफाई के साथ उसकी गुमटी के टीन पर चिपका दिया। "यह क्या चिपका दिया यार-अ ?" सुगनामल ने अपने विशेष सिंधी टोन में पूछा था।

"पोस्टर है भाई मियां।" गेंदालाल कार्यकर्ता ने कहा था और निर्विकार भावसे जमीन पर दूसरा पोस्टर औंधा कर उसपर लेई पोतने लगा था। लेई मक्खन की तरह मुलायम थी और हलके से उंगलियों के इशारे से पूरे कागज पर आसानी से फैलती चली जाती थी।

सुगनामल जमीन पर उतरा। गुमटी पर चिपका हुआ पोस्टर पढ़ा, "आपके अपने प्रिय उम्मीदवार, जाने-पहचाने समाजसेवी गणपतराम नेताजी को वोट देना न भूलें।" इसके बाद चुनाव चिन्ह बना था। जिसे देखकर लगता था कि गणपतराम नेताजी स्वतंत्र खड़े हुए हैं।

"वरी, इसमें पारटी-वारटी का नाम तो लिखो यार-अ। गणपतराम कौन-सी पारटी से खड़े हो रहे है। कुछ नीति-सिधांत-अ वगैरा क्या होंगे साईं ?"

"चाय बनाओ सुगनामल।" गेंदालाल कार्यकर्ता ने कहा जो इस बीच दूसरा पोस्टर सामने रहने वाली मास्टरनी बाई के मकान की दीवार पर चिपका आया था तथा जेब से बीड़ी निकालकर सुलगा रहा था। "चाय बनाओ," उसने फिर कहा, "शक्कर जरा ठीक-ठीक डालना।"

"फिर भी यार-अ। हमसे कोई पुच्छे तो हम-अ क्या बतलावें कि गणपतराम जी अब कौन-सी पारटी में हैं ?"

"पारटी की राजनीति इस देश में खतम हो गई सुगनामल। आदमी की राजनीति है। अगर जीत गये तो जिधर ज्यादा आदमी इकट्ठा दिखेंगे, उधर ही गणरतराम जी भी हो जायेंगे। अपने क्षेत्र का नुकसान नहीं होने देंगे सुगनामल।" गेंदालाल कार्यकर्ता ने कहा।

अब उसने तीसरा पोस्टर निकाल लिया था और उसे औंधा बिछाकर पूरी निष्ठा, लगन और आत्मीयता से उस पर लेई चुपड़ रहा था।

शरद जोशी

• O

चौराहे पर खड़ा आदमी

वह शख्स ठीक उस जगह तो नहीं खडा था, जहां ट्रैफिक का सिपाही खडा रहता है, पर उसे देख कर यह कहा जा सकता था कि वह चौराहे पर खड़ा है। वह मार्गदर्शन करने की स्थिति में नहीं था, अन्यथा कोई ताज्जुब नहीं कि ट्रैफिक के सिपाही की जगह खड़ा हो जाता। वह इस शहर का नेता बन रहा है। उसने अक्सर हमारा मार्गदर्शन किया है और हम उसके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर थोड़ा-बहुत चलते रहते हैं। इस समय वह चौराहे पर खडा है। एकदम प्रतीक बन गया है कम्बख्त देश की राजनीतिक स्थिति का।

'कहिए, यहा किसके इन्तजार में खड़े है ?'—मैंने पूछा।

वह मुस्करा कर चुप हो गया और फिर गम्भीर हो गया। मुझे उम्मीद नहीं थी कि मेरा प्रश्न उसे इतना गहरा कुरेद कर रख देगा। यह भी कोई बेहूदा प्रश्न है, जो किसी नेता को परेशान कर दे ?'

'पान खाएंगे ?'—मैंने कहा।

उसने सिर हिला दिया और यह वह आदतवश कर गया। जिस अन्दाज में वह स्थानीय राजनीति चलाता है, लोगों के ऐसे छोटे-मोटे निवेदन पूरे कर देना उसका स्वभाव बन गया है। उससे जब कहो 'चाय पीएँगे,' तब वह पी लेता है। कहो 'पान खाएंगे, तो खा लेता है।

पान मेरे मुंह में था और वह प्रश्न अब भी अपनी जगह बकाया था कि आप यहां किसकी इन्तजार में खड़े हैं? एक जमाना था, जब यह शख्स समाजवाद के इन्तजार में खड़ा रहा। फिर यह समग्र क्रान्ति के इन्तजार में खड़ा रहा। शहर ने इसे खड़े-खड़े सूखते देखा है और सूखे की स्थिति में इसे फलते-फूलते देखा है। वादों, इरादों, सिद्धान्तों, वहमों और निराशाओं के चक्रव्यूह में लम्बा चक्कर काटने के बाद यह मेरा यार आज फिर चौराहे पर खड़ा है। उसने मेरे बहुत पान चबाए हैं, कई चुनावों में मेरे वोट चबा गया और फिर वहीं-का-वहीं है। अजीब बन गया है कम्बख्त!

'कहां जाऊं समझ नहीं आ रहा?'—वह बोला। फिर कुछ देर बाद मानो अपने आप से पूछने लगा—

—'कांग्रेस आई में चला जाऊं?'

'अभी आप कहां थे?'

'स्वर्णसिंह वाली कांग्रेस में था।'

'अच्छा? कोई बता रहा था आप जनता में थे?'

'वो तीन महीने पहले की बात है।'—वह मेरी ओर मुस्करा कर देखने लगा जैसे मेरे अज्ञान और पिछड़ेपन की हंसी उड़ा रहा हो।

'उस बात को बहुत दिन हो गये भाई आप हैं कहां?'

मैं शर्मिन्दा था। यह जागरूक नागरिक की पहचान नहीं होती कि स्थानीय नेता लगातार पार्टियां बदल रहा हो और आपको पता ही नहीं लगे। हमें अप-टू-डेट रहना चाहिए

जानकारियों के मामले में ।

'मैं जरा शहर से बाहर चला गया था ।'—मैंने माफी मांगने के लहजे में कहा ।

'यह खबर तो आल इण्डिया अखबारो में छपी थी । इसका मतलब आप अखबार नही पढ़ते ।'—वह बोला ।

कुछ देर हम दोनो इसी मजाक के साथ पान का मजा लेते रहे । फिर मानो वह अपने समस्त राजनीतिक अतीत को पिच्च से थूकते हुए बोला—'अब क्या करें यह तो बताओ ।' चले जाए कांग्रेस आई मे ?

'चले जाइए । आजकल फेशन तो वही जाने का है ।'

'हूं ।'

'एक दिल कर रहा है सिक्यूलर जनता मे चला जाऊं ।'

'वहा चले जाइए ।'—मैंने कहा ।

'आज कोई पक्का निर्णय लेना है कौन-सी पार्टी मे शामिल हो जाऊं ।'

'ठीक है । फिर चुनाव आ जाएगे, तब तो पार्टी बदल नही पाएंगे ।

'हूं ।'

मैंने देखा वह अभी भी अनिश्चय मे है, जबकि इतना विचार करने के बाद इन्सान को किसी पार्टी मे शामिल हो जाना चाहिए । मैं उसे वही छोड़ कर आगे बढ़ गया । दस बज रहे थे और मुझे एक परिचित से मिलना था । वह निकल जाए इसके पूर्व मैं उसके घर पहुच जाना चाहता था ।

दोपहर दो बजे के लगभग मैं वहा से गुजरा, तब मैंने देखा वह उसी जगह खड़ा है । चौराहे के ही होटल पर किसी ने उसे खाना खिला दिया । वह सींक से दात कुरेद रहा था । मुझे देख कर उसकी भवों में थिरकन हुई ।

'फिर क्या तय किया आपने ?'—मैंने पूछा ।

'मैं कांग्रेस आई के दफ्तर हो आया। मैंने कह दिया, मैं आपके साथ हूं।'

'चलो अच्छा हुआ।'

'मगर यार, जनता पार्टी में भी दमखम बाकी है, हां। जगजीवनराम कम नहीं है।'

'इसमें क्या शक है।'

'मैं सोचता हूं इस वक्त जनता पार्टी में चला जाऊं तो मेरी बड़ी इज्जत हो जाएगी। कह दूंगा कि मैंने देश की स्थिति पर पुनर्विचार किया और इस निर्णय पर पहुंचा वगैरा-वगैरा।'

वह उस शख्स के साथ जिसने खाना खिलाया था एक तरफ चल दिया। जनता पार्टी का दफ्तर उसी दिशा में था।

मैं ताज्जुब से उसे देख रहा था। अभी सूरज उगने के बाद डूबा नहीं था और वह शख्स दूसरी पार्टी में चला गया था।

सूरज डूबा। मैं अपने मित्र को यह किस्सा सुनाते हुए काफी-हाउस में बैठा था। किसी को कोई आश्चर्य नहीं था कि ऐसा हो सकता है। वे सब मेरी अपेक्षा तथ्यों से ज्यादा परिचित थे। हम बाहर आए और कुछ ही आगे बढ़े थे कि हमने देखा वह शख्स चरणसिंह वाली जनता पार्टी की जीप से उतर रहा है।

मैंने उसे आश्चर्य से देखा। आंखों ही आंखों में उससे प्रश्न किया। वह मुस्कराया। आंखों-ही-आंखों में उसने जवाब दे दिया।

'इस तरह यदि आप दिन में तीन-तीन पार्टियों में मिलते रहे, तो बड़ा भ्रम फैल जाएगा। कल ये सभी पार्टियां दावा करने लगेंगी कि आप उनके दल के हैं।'—मैंने समस्या खड़ी की।

'करने दो, क्या होता है!'—वह लापरवाही से बोला—'उस वक्त तक मैं भी निर्णय पर पहुंच जाऊंगा कि मुझे कौन-सी पार्टी से चुनाव लड़ना है।'

मुझे लगा कि राजनीति बहुत आगे बढ़ गई है और मैं वाकई

बहुत पिछड़ा हुआ हूं।

रात को पहला शो देख कर जब मैं वापस आ रहा था, तब देखा वह शख्स अभी भी चौराहे पर खड़ा है। वह उस वक्त भी सोच रहा था और यह उम्मीद नहीं थी कि सूरज उगने तक वह किसी अन्तिम निर्णय पर पहुचेगा। उसके चिन्तन में बाधा न डालते हुए मैं धीरे-धीरे बढ़ गया।

शशिप्रभा शास्त्री

साइनबोर्ड बदल कर

वह खटखटाहट एक दबंग खटखटाहट थी ठप्पऽऽ ठप्पऽऽ। दो क्षण में ही शायद बिजली आ गई थी और इस बार ठक्क ठक्क की जगह बिजली की घंटी (कॉलबेल) घनघनायी थी उसी प्रकार की तेजी, दबंगपन और दावे-धक्के का स्वर लिए हुए—

इतने सवेरे कौन हो सकता है? श्रीमती माथुर अभी बिस्तर में ही थी, बिस्तर से ही उन्होंने आवाज दी।

"सीता राम!"

"जी, साब!"

"जाओ देखो दरवाजे पर कौन है?" इस बीच घंटी का दबंग स्वर फिर घरघरा उठा था।

"जी, जाता हूं।" हाथ का काम छोड़कर सीताराम भागा, शायद वह सवेरे के नाश्ते की तैयारी कर रहा था।

"जी, कोई आपको पूछ रहे हैं।"

"मुझे? कौन है?" उन्हें सदेह हुआ था। इतने सवेरे उनसे मिलने वाला कौन हो सकता है, होगा तो माथुर साहब का कोई होगा, उन्होंने यही अन्दाजा लगाया था, माथुर साहब

आबकारी विभाग में सर्वोच्च पद पर थे।

सीताराम कह रहा था 'नाम नहीं बताई है, दो मनई हैं, बहोत जानदार!"

'जानदार'' सीताराम ने क्या कहा, ओह, शानदार कहा होगा वे जानदार समझीं, श्रीमती माथुर ने खुद को ही दुरुस्त कर लिया।

'बैठा दिया ड्राइंग रूम में?'

'जी साब!'

सीताराम लौट गया, श्रीमती माथुर बिस्तर से उठीं बहुत देर से वे बिस्तर में लेटी-लेटी ही पढ़ रही थीं। आज उनकी तबियत कुछ अलील थी और इतने शीत में वे बहुत जल्दी बिस्तर से उठ कर रोज की तरह इधर-उधर घूम कर बगीचे की देखभाल करने की स्थिति में अपने आपने को नहीं पा रही थीं। सीताराम के आने पर उन्होंने उसे एक कप चाय देकर नाश्ता तैयार करने का आदेश दिया था और सीताराम चाय तैयार कर ही रहा था कि…।

जल्दी से देख कर कि कौन है, वापिस लौट कर आने के इरादे में ही श्रीमती माथुर कन्धे पर शाल डाल कर बाहर ड्राइंगरूम में आ गईं, माथुर साहब भी उठ गए थे और वे भी उत्सुकतावश ड्राइंगरूम में ही आ कर बैठ गए थे।

श्रीमती माथुर के भीतर आने पर दोनों अभ्यागत जन ने सोफे से थोड़ा उठने का उपक्रम किया पर श्रीमती माथुर बड़े सौजन्यपूर्ण विनम्र ढंग से बैठे रहने का ही संकेत दे खुद भी ड्राइंगरूम के एक ओर पड़े दीवान पर बैठ गयीं।

'तुम शायद आराम से नहीं बैठी हो बेटी। अभ्यागत जन में से एक ने कहा तो श्रीमती माथुर ने फिर बड़े मधुर स्वर में उन्हें आश्वस्त कर दिया कि वे बहुत आराम से बैठी हुई हैं और वे अपनी बात कह सकते हैं। सीताराम द्वारा की गयी

टिप्पणी की सच्चाई को उन्होंने इसी क्षण पहचाना, वे ही ग़लत समझ बैठी थी सीताराम ने जानदार मनई ही कहा होगा, सच-मुच दोनों जन बहुत ही प्रभावशाली और चाकचौमुन्द थे, दोनो व्यक्तियों में से एक लम्बा-चौड़ा दबीज हड्डियों वाला किन्तु कुछ शैथिल्य लिए हुए वृद्ध व्यक्ति था, दूसरा कॉर्डराय का सूट पहने हुए धूमिल चेचकरु चेहरा और कुछ-कुछ बोझिल काठी वाली देह का था। वृद्ध व्यक्ति की देह पर सिल्कन अचकन थी, वे चूड़ीदार पायजामा पहने हुए थे, उनके हाथों में फर के मोटे-मोटे दस्ताने थे और हथेलियों में बेहद कीमती दिखने वाली आबनूस की चिकनी नफ़ीस छड़ी थी, सोफे पर बैठे होने पर भी वे हाथों में घुमाते हुए उस छड़ी पर कभी अपना समूचा बोझ डाल देते थे, और कभी पीछे होकर बैठ जाते और कीमती छड़ी को बगल की तरफ सहेज लेते, उनका चेहरा लम्बूतरा था, आखों की भौंहें सफ़ेद और टोपी में से झाकते हुए बाल दोरंगे थे, कुछ सफ़ेद और थोड़ी-थोड़ी काली छब देते हुए। बोलते हुए उनकी दतपंक्ति सपूर्ण दिखती थी, बिना किसी जोड़-तोड़ के, आदि से अन्त तक खिंची हुई, शायद नकली हो—श्रीमती माथुर को दीवान पर बैठने का उपक्रम करते देख वृद्ध महोदय कुछ सकुचित हुए थे, दबीज किन्तु कोमल स्वर में फिर बोले,

'बेटी, आप ठीक तरह बैठो।' तुम और आप में वृद्ध कुछ अन्तर नहीं कर रहे थे।

'मैं बिल्कुल ठीक हूं।' हल्के वात्सल्य ने उन्हें पुलकित किया।

'कहिये !' उन्होंने फिर दोहरा दिया, वे चाय पीने के लिए आतुर थी, चाय के बारे में सोचते ही उन्होंने पुकारा,

'सीताराम चाय लाओ।'

'आप चाय नहीं पीते, चाय-काफ़ी, स्मोकिंग कुछ नहीं, युवा व्यक्ति ने बताया।

वृद्ध ने एक टाग दूसरी टांग पर चढ़ा ली और फिर तुरन्त ही जैसे उन्होंने कुछ असुविधा अनुभव की हो, वे फिर पहले की तरह ही बैठ गए। फर के दस्ताने वाले हाथ, चिकनी कीमती बेहद बढ़िया बनत की काली आबनूसी छड़ी की मूठ थामे हुए दृष्टि-स्थिर, स्वर सधा हुआ, अकड़ लिये।

"बेटो, मैं तुमसे कुछ गुफतगू करना चाहता हूं, सबसे पहले तो मैं यह कहूंगा, कि यह संसार परिवर्तनशील है, कब क्या घटित हो जायेगा, आदमी क्या कर बैठेगा, कोई नही जानता। आदमी खुद कुछ नही करता, करवाने वाला कोई दूसरा ही है···।" वृद्ध जन ने फर मे लिपटा हाथ ऊपर की दिशा मे उठा दिया।

दर्शन के सीधे-सच्चे तथ्य को भावुकतापूर्ण ढग से लेते हुए ही माथुर साहब और श्रीमती माथुर ने अपनी गर्दन बड़े सजीदा, किन्तु कोमल ढग से समर्थन मे हिलायी,

"जी, आप ठीक कह रहे हैं,

"तो बेटा हमने बड़े-बड़े समय देखे हैं, एक लम्बा जमाना गुजर चुका है, हमारे सामने से। हा पहले मै तुम्हे यह बता दूं कि तुमने रियासत बलरामपुर का नाम तो सुना ही होगा, हम उसी इलाके के रहने वाले हैं, वही मे आए हैं। अंग्रेजो के जमाने मे उस इलाके मे पच्चीस आई० सी० एम० हुए, दस आई० जी, तेरह एम. बी.बी.एस., छह डी. जी एम.—" बेइन्तहा इतनी तरह की डिग्रियों को सुन कर माथुर साहब ने बिना समझेबूझे ही आखों ही आखो मे आश्चर्य प्रकट किया, वृद्ध कहते रहे, "वहा लोगों के घर के आगे हाथी झूलते थे, अपने दादा-परदादाओं के जमाने की दौलत जायदाद को भोगते हुए लोग चैन-अमन की जिदगी बिताते थे, कोई आदमी काम नही करता था, सब आराम की जिंदगी बसर कर रहे थे, उस जमाने मे एकदम राजसी ठाठ बाट—हम भी मजे मे अपनी जंगी हवेली मे रह-बस रहे थे, अब भी हम वहीं है, बड़े-बड़े लोगों से वाकिफियत थी, अब भी है, उस

ज़माने में सर सीताराम आपने नाम सुना होगा।" माथुर दम्पति ने समर्थन में जल्दी-जल्दी आंखें झपकायी, "हमें बड़ी इज्ज़त देते थे, अपना सगा भाई मानते थे।"

श्रीमती माथुर ने कुछ अड़चन महसूस की, क्यों कह रहे हैं ये इतना कुछ ? क्या चाहते हैं ? क्या मंशा है इनकी ? हमारा इनसे क्या रिश्ता है ? अधिक समय देने की स्थिति में वे नहीं थीं, उन्होंने कालिज भी जाना था—खदबदाती रहीं वे भीतर-ही-भीतर, कुछ कहने से, अपनी बात बोलने की वहां गुंजायश ही नहीं थी। वृद्ध महोदय का प्रस्तुतीकरण जारी था—

'तो हम आपसे कह रहे थे, क्या कह रहे थे ?" नया वाक्य शुरू करते ही वृद्ध ने पुराना वाक्य भूल जाने का नाटक किया पास ही सोफे की दूसरी कुर्सी पर बैठे हुए युवक ने उनकी स्मृति को सबद्ध किया।

"आप बता रहे थे सर सीताराम आई० सी० एस०" यह उपाधि इस समय उसने स्वयं जोड़ ली, "आपकी बहुत इज्ज़त करते थे।"

"हां जवाहरलाल नेहरू, कृष्ण मेनन, इन्दिरा गांधी, सबने हमें खुद अपने हाथ से चिट्ठियां लिखी हैं। लाइनें चाहे खत में चार-पांच ही हों, पर लिखते ये लोग खुद ही थे।"

गुत्थी का एक और गोला, क्या बता रहे हैं, ये यह सब कुछ ?

"महारानी विक्टोरिया से हम मिल चुके हैं, तब हम इंग्लैंड में ही थे, वहीं हमारी एजूकेशन हुई, अंग्रेज़ लोग तो साहब बड़े रुतबे वाले दबंग थे। आप अपनी आज कल की सरकार को देखिये, कितनी कमजोर है, आपस में लड़-भिड़ रहे हैं, चलेगी नहीं।" वृद्ध की गर्दन का पेंडुलम नकारात्मक रूप में हिला।

इन सब को भी न जाने कैसे पचा लिया, माथुर साहब ः श्रीमती माथुर ने। भीतर ही भीतर दोनों सलबला रहे थे, ?

मोड़ पर जाकर टूटेगी, यह कमन्द दोनो ने ही सोचा। वृद्ध पुरुष कह रहे थे,

"तो हम आपको बता रहे थे, कि हमें काम करने की आदत नही थी। मसूरी में अभी हाल तक हमारी बड़ी जमी क़ोठी थी।"

"जी ठीक माल रोड पर।" छोटे यानी युवक ने हल्के से जोड़ दिया।

माल रोड पर ? कहा होगी ? अरे चलो होगी कही या नही होगी। श्रीमती माथुर ने भीतर ही भीतर अपने को उस प्रकरण से तोड़ लिया, उन्हे रस्सी के उस विवरण मे कुछ आनन्द नही आ रहा था—यह कम्बख्त बुर्जुआ क्लास ! उन्होने नीचे ही नीचे बटोरा।

"तो हम कह रहे थे, उस हमारी मसूरी वाली कोठी का उस जमाने मे हमे डेढ हज़ार किराया मिल रहा था, सुखचैन की बासुरी बजा रहे थे हम, राजा थे हम लोग, टाटा-बिरला क्या हैं, हमारे सामने…।"

और अपनी रैयत पर जुल्म ढा रहे थे। यह भी कह दीजिये, नही कहेंगे ? कह नही सकेंगे। श्रीमती माथुर की दृष्टि मे हल्का सा बल पडा—

"हिन्दुस्तान आजाद हुआ, मुल्क तरक्की की राह पर बढ़ा—ऐसा ऐलान हुआ लोगों से कहा गया कि वे काम करें जमीन जायदाद को बेच दें कोई धन्धा चलाए, कोई व्यापार करे"—वृद्ध का रईसी स्वर रईसी अन्दाज जैसे किसी अतीत को टोह रहा हो।"

"हमने सरकार की बात पर गौर फरमाया और अपनी जायदाद बेचनी शुरू कर दी, यानी अपने को लुटाना शुरू कर दिया, मसूरी वाली कोठी की ही कीमत हमने दो लाख वसूली थी।"

"दो लाऽऽख !" आश्चर्य प्रकट किया माथुर साहब की आंखों ने।

"जैसा विवण आपने दिया, उसके मुकाबले तो आज के जमाने में ठीक ही है।" श्रीमती माथुर ने भी अपनी राय टिकायी।

"आज के जमाने की बात मैं नहीं कह रहा हूं बेटी, चार साल पहले की बात कह रहा हूं, यानी सन् तिहत्तर-चौहत्तर की, और जी यह यह कोठी बेची, बम्बई वाली अपनी दूसरी कोठी भी बेच दी, पांच लाख रुपया आया, हाथी बेचा, दो लाख रुपया मिला...।"

लाख न हो गए कंकड़ पत्थर हो गए। श्रीमती माथुर अंदर ही अन्दर बुदबुदायीं, आपके लाखों पर हम लानत भेजते हैं, हमें इस तरह की लाखों की बात में रुचि नहीं है। मन ही मन फिर पीसा श्रीमती माथुर ने, न जाने कौन सा संकोच-सौजन्य शालीनता जैसे खुल कर कुछ भी बाहर न आने देने के लिए उनका गला दबोचे बैठी हो, फिर भी मन में कौतूहल, आखिर क्या कहना चाहता है यह बुड्ढा ? मन किया अगर यह बुड्ढा इस तरह की बातें न फैलाता, तो उनके स्वास्थ्य का राज पूछा जा सकता था, इनकी लम्बी उम्र का रहस्य। कुछ और भी हल्की-फुल्की बातें की जा सकती थीं, पर यहां तो सुबह की चाय तक खत्म हो गई, खुद मेहमान कुछ लेने-खाने से टका-सा मना कर दे मेजबान अकेला बैठे खुद कुछ कैसे गुटक सकता है और फिर यह उम्मीद कि अब कुछ देर में तो वह छुट्टी दे ही देगा तो फिर इकट्ठे ही...।

बीच में टोक देने पर शायद बुड्ढा बुरा माने। उसकी बात सुनते हुए, सुनने वाला अगर गर्दन में भी खम देता, तो यह उसे अपना तिरस्कार मान बैठेगा—कुछ इसी प्रकार का माहौल पैदा कर दिया था उस आगन्तुक वृद्ध महोदय ने। एक बार

कुछ कहने की इच्छा हुई भी, पर लाखों की बात-चीत ने मन की रस्सी को ऐंठ दिया। यों भी उनकी वेशभूषा के चुस्त-चौमुंद होने के बावजूद उनकी देह के कुछ-कुछ लीसड़पन ने उनके प्रति मन को एक विरक्ति का जामा पहनाना शुरू कर दिया था। होगा एंट्री नाइन का या नहीं होगा, [हमें क्या लेना-देना है। हमें तो कालेज पहुंचना है दिन भर दीदी रेजी और मगजपच्ची करनी है, अनगिनित काम सिर पर खड़े हैं, कब पीछा छूटेगा इन लोगों से ? श्रीमती माथुर के साथ-साथ श्री माथुर भी कहीं भीतर-ही भीतर कसमसा रहे थे।

वृद्ध जन की स्मृति शायद फिर पंगु हो गई थी, युवक ने उसे नसैनी लगा कर फिर आगे चलता कर दिया था। श्रीमती माथुर एक क्षण को विचारों की किसी दूसरी सड़क पर रेंगने लगी थी, वृद्ध ने खखारते हुए फिर शुरू किया, तो वे लौट आयी।

"अब सवाल था, इस रक़म से बिजनेस करने का, हम खुद तो बिजनेस करना जानते नहीं थे, चाहते भी नहीं थे, पर हमारे कलेक्टर दोस्त ने हमें सलाह दी तुम किसी के जरिये कुछ कर-वाओ खुद क्यों करना चाहते हो—, उनकी राय के मुताबिक लालचन्द नाम के एक जरूरतमन्द शख्स को हमने चार लाख रुपया दे दिया, उसने हमारी तरफ से किताबों का व्यापार फैलाया तीन लाख की किताबें खरीदी, एक बड़े शहर में दुकान शुरू की।" बड़े शहर का नाम गोल कर गये वृद्ध जन—"कुछ महिने बाद ही पता चला कि हम तो लूट गये, वह शख्स हमें लूट-पाट कर भाग गया यानी हमारा रुपया गबनकर लिया उसने, कैसे, क्या कुछ पता नहीं चला। आधी रकम की किताबें ही हमारे हाथ लगी।

श्रीमती माथुर के अन्तर्चक्षुओं ने कुछ-कुछ खुलना आरम्भ किया—शायद किताबों का मामला है। कुछ—किताबें यहीं आसपास नजर नहीं आ रही थीं, पर असल बात क्या है, वे अब

भी नहीं समझ पा रही थी।

"जी ?" बात को अधिक अच्छी तरह समझने का स्वरूप प्रदर्शित करते हुए उन्होंने प्रश्न-सा कर दिया।

"तो बेटा, हमने उस वक्त बहुत टूटन महसूस की, लगा हम खत्म हो गये हैं। हमारे खैरख्वाह कुछ लोगों ने सलाह दी, आप इन किताबों को खुद बेचने का डौल कीजिए। पैसा कुछ न कुछ वसूल हो ही जायेगा। लोग हमारे बुलाने पर इशारे से ही भागे आ सकते थे, पर हमने अपने काम के लिए खुद जाना ही मुनासिब समझा।" बात सडक पर चढ़ती आ रही थी धीरे-धीरे।

"हम सबसे पहले वाइसचान्सलर के ही पास पहुचे सीधे।" यूनीवर्सिटी का नाम वृद्ध फिर पी गये, उधर भी कोई उत्सुकता नहीं, सिर्फ बात को जल्दी-जल्दी खत्म होते देखने की चाहना—"वे वाइसचान्सलर महोदय उस समय अपने आफिस में ही थे, स्टेनो को कुछ लिखवा रहे थे। हमारे आने के बाबत सुना तो दौड़ कर बाहर आ गये, पैरों पर गिर पड़े, दरवाजे से लगती दीवार के साथ खुद चिपक कर खड़े हो गए। हम भीतर पहले चलें, ऐसा दिखाया, हमारे भीतर पहुचने पर खुद आये, सोफे पर हमें बैठाया, खुद नीचे कालिन पर पैरों के पास बैठ गये, बोले,

"हुक्म कीजिए ?"

हमने कहा, "नीचे क्यों बैठते हो ?"

उन्होंने कहा, "मैं तो आपका बच्चा हूं।"

"क्या कहते हम, हमने अपनी बात बतायी, तो अपने अधीन सभी कालेजों के प्रिंसिपलों को चिट्ठियां उसी वक्त लिखवा दी उन्होंने—हम जहां भी गये ···।" वाक्य को अधूरा छोड़ कर उन्होंने युवक को संकेत किया, जमीन तैयार है अब तुम बीज फेंको, जैसा संकेत।

युवक अपना बस्ता उठा कर आगे बढ़ आया, वह उस ओर उस क्षण के लिए जैसे तैयार ही बैठा हो। श्रीमती

ने दीवान पर ही जगह खाली कर दी।

"आइये !"

"आपको तकलीफ होगी !"

"तकलीफ कैसी, आइए न !" मन में कहा, "उल्लू की दुम, दिखाओ जो कुछ दिखाना हो जल्दी।" युवक ने बस्ता खोल दिया, बिल तैयार करने वाली फाइल खोल कर कागज उलटे-पलटे, फिर जैसे कुछ याद आया हो, दूसरी फ़ाइल खोल कर कई कागज निकाले,

"ये कालेजों के प्रिंसिपलों के लेटर्स है।" वह पत्र दर पत्र खोल-खोल कर सामने फैलाता रहा, "पढ़िये।" पढ़े बिना चारा नही था, आखें टाइप्ड शब्दों पर दौड़ने लगी—वहा बहुत कुछ था, स्वयं की उनकी स्थिति, कठिनाइयों का विस्तार, तदन्तर निवेदन कि आपकी सस्था को भी इनको सहयोग देना चाहिये···।

तमाम पत्रों मे लौट फेर कर लगभग एक-सा मजनून-युवक ने फिर बिल देखना शुरू किये, "हमने शुरू शुरू मे किताबों के बड़े-बड़े सेट तैयार किये थे, अब यह सेट छोटे होते जा रहे है, बहुत-सी किताबें निकल चुकी है, थोड़ी सी ही रह गई है। अब चालीस-चालीस पुस्तकों का एक सेट है, इन कालेज वालो ने पांच-पाच छह-छह सेट खरीदे है युवक ने बिल-पुस्तिका फिर निकाली "एक-एक सेट करीब ढाई-ढाई सौ रुपयों का है।"

आख के आगे इतनी देर से लटके हुए पर्दे को पूरे पौने दो घंटे बाद खुलने का अवसर मिला, फुसफुसा कर पूछा,

"आपका इन सज्जन से क्या सबध है ?"

"जी कुछ नही, मै इनका क्लर्क हू।" युवक फुसफुसाया, उसके कीमती कार्डराय के सूट की तरफ ध्यान किया, तो समाधान भी हो गया, तोप के साथ गोला भी उसी अन्दाज का होगा—बड़े आदमियों के नौकर-चाकर भी बड़े—। श्रद्धा फिर

भी नहीं उभरी, स्थिति स्पष्ट हुई तो परेशानी का भाव उमडा, किताबों की सूची पर निगाह डाली, कोई विशेष उत्कृष्ट पुस्तकों की नामावलि नहीं थी वह।

"जी बात यह है…।"

"बेटे, हम सुनना कुछ नहीं चाहते, हमने अपनी बात कह दी है।"

"जी, पर हम लोगों ने अभी हाल में ही लायब्रेरी के लिए ढेरों पुस्तकें खरीद ली हैं।" वाक्य को किसी प्रकार खींच दिया श्रीमती माथुर ने।

"तुम्हारा कालेज बेटी, इतना बडा है हजार-दो हजार की किताबें तुम्हारे लिए क्या मानी रखती है…।"

"बहुत मानी रखती हैं। किताबें किसी मतलब की तो हों।" श्रद्धा कतई नहीं उभरी, हृदय में बहुत कुछ दूसरा उमड़ने-घुमड़ने लगा।

"देखिये दो सेट दे दीजिए।" एक सेट कहते-कहते दो सेट मुंह से निकल गया, वृद्ध आखें तरेर कर देख रहे थे, जैसे अभी शाप दे देंगे।

"सिर्फ दो सेट ! !"

"जी काफी हैं, हम ज्यादा खर्च ही नहीं कर सकते। मैं तो अभी एक महीने पहले ही आयी हूं इधर।"

"एक महीने, मैं कहता हूं, दो दिन पहले चेयर संभालने वाले आदमियों ने भी किताबें ले ली हैं।"

"पर देखिये न ?"

"मुन्नी, मैं तुमसे एक बात कहता हूं सुन लो, चेयर पर बैठने की ताकत होनी चाहिए, इसकी ट्रेनिंग दी जानी चाहिये, आदमी को नहीं डरना चाहिए…।"

"डरना किससे, पर मैं इन किताबों से मानों अनावश्यक कबाड़ से अपने पुस्तकालय को नहीं भरना चाहती।" श्रीमती

माथुर को वृद्धा ने कहने नहीं दिया, अपने आप ही कहा,

"कम-से-कम दस सेट कर लो बेटा।"

"क्या ? ?" आखें फट गयी श्रीमती माथुर की, "क्या होगा इन सेटो का ?"

"जी नही।" पहला वाक्य न उचार अन्तिम वाक्य ही उचार पायी श्रीमती माथुर।

"ठीक है, अब हम कुछ नही कहेंगे, आप जो चाहे करें।" लग रहा था, सामने साक्षात् दुर्वासा ऋषि आकर बैठ गये है।

"माथुर साहब आप इधर आइये।" वृद्ध ने माथुर को अपने पास बुला कर बैठा लिया, "आप इन्हे समझाइये, कि यह काम कुछ मुश्किल नही है।"...."जानती हू, पर मैं यह काम करना ही नही चाहती, पुस्तकें खरीदने के भी कायदे कानून होते हैं—पढ़ने वाले पहले अपनी सूची देते है, या आयी हुई पुस्तको मे से चयन करते हैं। फिर मेरे अपने सिद्धात है, गैर जरूरी चीज संस्था मे खरीद कर संस्था का पैसा क्यो बरबाद किया जाय ?" खुले शब्दों मे सब कुछ ऐसा ही सुना डालना चाहती थी। श्रीमती माथुर पर ओठों पर फिर ताला पड गया, शालीनता फिर आडे आ गई, सामने बैठे आदमी की बुजुर्गियत पर एक क्षण को तरस आया, फिर भी भीतर कुछ नहीं पिघला—सिर्फ एक तिक्तता, बुरे फंसे जैसी स्थिति।

मालूम नहीं क्या क्या बताते रहे है ये साहब, क्या बात होगी इन महाशय मे, जो इन सब इतने बड़े-बड़े कालेजो के प्रिंसिपलो तक ने इन किताबो के सेट के सेट खरीद लिए, फर्रे लिख-लिख कर पकडा दिये कि दूसरो को भी इन साहब की मदद करनी चाहिये—क्यो करनी चाहिए ? क्या नाता है इन साहब मे ? क्या भला करने जा रहे है ये कौम और देश का ? चुप सन्नाटा खीच कर रह गयी श्रीमती माथुर, पेट मे ऐंठन लगी सबेरे दो घंटे से चाय-पानी नाश्ता कुछ भी नहीं, नहाना-

बिलों को हस्ताक्षर के लिए आगे बढ़ा दिया,

"जीऽऽ !"

हस्ताक्षर मात्र कर देने पर युवक ने कहा,

"आपकी कोई महोर ?"

"जी, यहां कुछ नही है, घर पर मैं नही रखती, अब आप ऐसा कीजिए कि भीतर लायब्रेरी तक नही जा सकते, तो किताबें गेट पर यानी कालेज-गेट पर ही छोड़ दीजिये, चपरासी वहां होगा।"

"गेट पर हम जायेंगे ?"

क्यो किताबें बेच रहे हैं, तो इधर-उधर जायेंगे नहीं ? ऊपर से कहा, "चलिए आप न जाइये, इन्हें भेज दीजिये, ये किताबें दे आयेंगे।" छोटी उम्र के आदमी की ओर सकेत किया श्रीमती माथुर की गर्दन ने।

"और रुपया ? हमें रुपया भी बहुत जल्दी चाहिए !"

"देखिये !" पकड़ी गयी श्रीमती माथुर, देखिये, "यानी हो सका तो करूंगी।

"आप कब तक पहुंच रही हैं उधर !

छोडा है आपने पहुचने लायक ? सुबह से घेर रखा है, तैयार होने तक का समय नही दिया, खाना-पीना-चाय सब समाप्त, सवेरे सवेरे यह क्या हुआ। प्रत्यक्ष में कहा,

"अभी तो मैं तैयार भी नही हू।"

"तैयार आप हो लें।"

"क्या मतलब आप सब भी सिर पर धरे रहेंगे ? यानी पूरे तरह आपकी ही चाकरी बजाते रहें हम आज ? सुबह से आपके ही हुजूर मे हैं और अब तैयार होकर आपके साथ चल दें, यही न ? मस्तिष्क को किसी ने चर्खी की तरह घुमा दिया क्या गुनाह किया था उस गरीब लड़के ने, सस्ते कपड़े की पेंट बुश-शर्ट पहने हुए लड़के की नुची-नुची-सी आकृति सामने आकर

खड़ी हो गई, पाठ्य-पुस्तकें तक १५ प्रतिशत पर सप्लाई करने के लिए चिरौरी करता हुआ···एक से एक चुनिन्दा उपन्यास, आलोचनात्मक पुस्तकें—और उन्होंने उसे कोई प्रोत्साहन नहीं दिया था, क्योंकि वह सूत्र के मध्य में आया था, ग्लानि हुई अपनी उस दिन की निष्ठुरता पर—ये जनाबआली कूड़ा पुस्तकें १२ प्रतिशत पर दे रहे है, वह भी धौंस से, मेहरबानी करके। पुस्तकालय का मतलब उनके लिए पुस्तकालय न होकर मानो कूड़ा घर हो गया···। किसी प्रकार भीतर के उबाल को सतुलित किया, कहा,

"देखिये, आप पहले पुस्तकें दे आने का काम तो कर डालिए।" पास बैठे युवक से धीरे से पूछा, "आपकी कोई गाड़ी-वाड़ी तो होगी, आप तो गाड़ी पर ही आये होंगे।"

"जी नहीं, हम बस से आये है।"

"यह आदमी बस से आया है ! ! इतनी शान बघारने वाला···?" मन के भावों को भापते हुए युवक ने स्पष्ट किया,

"घर पर तीन-तीन गाडियां खड़ी है, पर जब से एक्सीडेंट हुआ है आप अपनी गाड़ी पर सफर नहीं कर सकते।"

किस दुनिया में रह रहे हैं ये लोग, इन्हें दीन-दुनिया की कुछ खबर नहीं है क्या ? बेसाख्ता खून का घूट पीते हुए सिर्फ इतना कहा,

"ठीक है, जैसे भी चाहे किताबें लायब्रेरी पहुंचा दें।" एक्सीडेंट कहा हुआ, क्यों हुआ, कैसे हुआ—कुछ पूछने को मन नहीं हुआ।

वृद्ध इस समय चिड़िया के नये पैदा हुए बेपरों वाले बच्चे की तरह मांस के लोंदे के समान मुह बाये रह गये, अपनी पराजय के हलके से झटके का अहसास हुआ होगा उन्हें, फिर भी रौब ग़ालिब करने के लिए कहा,

'हम यहां बैठे है, तुम किताबें रख कर आओ'

एक और दुविधा।

"देखिये आप यहां बैठेंगे, बड़ी खुशी से बैठें, पर मेरे पति और मैं दोनों अब तैयार होकर चले जायेंगे।" एक असमंजसपूर्ण स्थिति, चेक के बारे में श्रीमती माथुर ने कुछ नहीं कहा, वे उठ कर खड़ी हो गईं,

"मैं तैयार हो लूं।' यह माथुर साहब के लिए भी संकेत था, कि वे भी उठ खड़े हों अब।

यों साधारणत: वे चाय पीती हीं, पर अब चाय को ज्यों का त्यों छोड़ कर वे गुसलखाने में घुस गयी, सवेरे का इतना समय नष्ट होने का ग़म, व्यर्थ की चीज़ के लिए इतनी सिरदर्दी—बौखलाहट में उन्हें इतना ही सूझा, कि आज जब वे कोई सार्थक काम नहीं ही कर सकी हैं, तो चलो अब एक सार्थक काम स्नान कर डालने का ही कर डालें किसी प्रकार—भयंकर शीत में भी उन्होंने ठंडे पानी से ही नहा डाला, मस्तिष्क अब भी चक्र की तरह कताई कर रहा था।

खूब उल्लू बनाया इस बुड्ढे ने। किस क़दर हावी हो गया है कि इसे उस कबाड़ का रूपया तुरत-फुरत चाहिये जब कि दूसरे लोग अपनी किताबें यों ही डाल कर चले जाते हैं, जब चाहे आप भुगतान कर दीजिये। एक तो इसने जबरन किताबें सिर पर थोपी हैं, अपनी वाहियात बातों से एक सोने जैसी सुहानी सुबह को काला किया है, तिस पर अब यह धौंस कि किताबें भी यहीं हम तुम्हारे सिर पर छोड़ कर जायेंगे और पैसा भी तुरत-फुरत ही वसूलेंगे। नहीं यह नहीं चलेगा, अपनी निर्बलता और बेबसी पर क्रोध जगा, अन्तःतल में, ग्लानि, सन्ताप और हताशा से माथा तप उठा, लगा अपने दायित्व के प्रति विश्वासघात करने के लिए उन्हें किस प्रकार विवश किया जा रहा है। हम काहे के लिए तरस खायें, आप पर, इसलिए कि आप लखपति होने हुये भी जिसतिस पर धोंगेधड़ी से किताबें थोप देने का पवित्र काम सभाले हुए हैं। यही गाधियत है न

आप में कि खामखाह आप दूसरों को जिबह करने पर तुले हुए हैं, ऐसे रईसीपन पर हम लानत भेजते हैं, इनकी रईसियत के आगे हमारे सिद्धांत—नियम सब भाड़चूल्हे में गये, नहीं यों नहीं चलेगा'''श्रीमती माथुर कपकंपाती हुई गुसलखाने से बाहर आयी, कालेज के लिए कपड़े पहने और कन्धे पर शाल डालती हुई ड्राइंगरूम में आकर बोली—

"महाशय, ठीक है, आप पुस्तकें दे जाइये, पर एक बात मैं आपको बता दूं, कि पैसे अभी नहीं मिल सकेगा। लायब्रेरी में पुस्तकें दाखिल किये जाने के नियम-तरीके हैं, एकाउन्टेन्ट के द्वारा चैक भी नियमानुसार ही बनता है, यह भी हो सकता है, कि एकाउन्टेन्ट बाबू आज आये ही न हों। यों आपको विश्वास होना चाहिए, कि संस्था का मामला है। संस्था से आपका चैक अवश्य पहुंच जायेगा।

हक्के बक्के बैठे रह गये वृद्ध, फिर किसी तरह संभाला अपने को—अपनी पुरानी कारगुजारिया और रौब-रुतबे की याद ने उन्हें फिर भन्ना दिया, तन्ना कर बोले, "ले चलो किताबें, हमें यहां कुछ नही देना।" यानी श्रद्धापूर्वक तुरत-फुरत उनके चरणों में चैक तैयार करवा कर न रख दिया, तो देवता कुपित और नोट पड़ने के लिए प्रस्तुत। शायद मन में सोच रहे हों कि यहां हमारी शान शौकत और रिश्ता-कोताही का कोई असर नहीं हुआ। धिक्कार है हमारे इस बाने-बानगी और संजीदगी को। एक बार अकड़ फिर दिखाई जाये, शायद काम बन हीं जाये, असहयोग की आखिरी तुर्री फिर छोड़ कर देखें'''सचमुच श्रीमती माथुर घबड़ा उठी यह क्या! क्या सचमुच बुड्ढे में कोई तेज मेसमिरज्म है? कहीं कुछ उल्टा सीधा न हो जाए। इतने बड़े-बड़े लोगों को इसने अपने चक्र में फंसा लिया, आखिर क्या है इसमें? फिर भी अपनी अकड़ रखते हुए कहा,

"यह भी-कोई बात हुई, आप अपनी सब शर्तें मनवाने पर

उतारू हैं और हमारी एक बात जो नियम की है, वह भी आपको मंजूर नहीं है, आखिर क्यों ?"

वृद्ध नसैनी पर फिर खड़े हो गये, स्वर को प्रयत्नपूर्वक करारा सा बना कर बोले, "बेटी, तुमने हमें समझा नहीं है।" यह उनके प्रश्न का उत्तर नहीं था। एक दूसरा मिसाइल था, जो उन्होंने असर देखने के लिए छोड़ा था।

"ठीक है, मैं क्या कह सकती हूं अब।" यह भी वृद्ध व्यक्ति की बात का उत्तर नहीं हुआ।

युवक अब तक चुपचाप खड़ा था, फुसफुसाते स्वर में बोला, "बड़े ऊंचे घराने के है आप, बहुत ऊंची शख्सियत हैं आपकी, आपकी रईसी की धूम थी, इसीलिए थोड़ा उत्तेजित हो जाते हैं, सहन नहीं कर पाते, बस इसलिए...।"

सहन नहीं कर पाते, हम भी इनकी रईसी और ऊंचे घराने की धौंस को सहन नहीं कर पा रहे हैं। श्रीमती माथुर कहना चाहती थी, शालीनतावश फिर नहीं कह पायी, युवक ही बोला,

"आपका कोई भी काम हो, ये करेंगे।"

"काम के बदले या इस नीयत से कि अमुक व्यक्ति से मेरा कोई काम सधेगा—यह सोच कर मैं कभी कोई काम नहीं करती, आप यह समझ लें।" तैश में आकर कह गयी श्रीमती माथुर।

"चलो आओ !" वृद्ध ने युवक को बुलाया, उनका अहं आहत हुआ हो जैसे, चलते चलते कहा, "यह क्लर्क नहीं है बेटी, यह करोड़पति का बेटा है।"

लखपति करोड़पति, क्या हो रहा है, यह सवेरे सवेरे। मुझे क्या मालूम यह क्लर्क है या ठाकुर है, इस संबंध में क्या कहा है मैंने। चलते चलते भी करोड़पति की धौंस, कहां से आ गये हैं ये करोड़पति और लखपति उनके द्वार पर ? भारत एक निर्धन देश है और आप करोड़पति, अरबपतियों के ख्वाब देख रहे हैं, कहां रह-बस रहे हैं ये लोग ? श्रीमती माथुर ने बुदबुदाया, न

जाने क्या हो रहा था कि जो उमड़-घुमड़ रहा था, वह खुल कर बाहर नहीं आ पा रहा था। क्या सचमुच उन पर भी बुड्ढे की रईसी का रौब ग़ालिब हो गया ? नहीं, नहीं यह नहीं हो सकता, सिर्फ उनकी बुजुर्गियत ही अब तक उनका मुंह बांधे रही है—उन्होंने खुद को ही खुद विश्लेषित कर लिया।

□

वृद्ध और युवक दोनों चल दिये थे। माथुर साहब इतनी देर बाद नहा-धोकर तैयार होकर निकले तो बोले,

"क्यों उस बुड्ढे के पीछे लगी रही, जा रहा था चले जाने देतीं, बहुत देखे हैं ऐसे लखपति, करोड़पति कुकड़ू कूं।"

"हां अब तो आप कहेंगे ही, इतनी देर से गुमसुम बने उधर अपने कामों में लगे रहे। इधर साथ बैठे, तब भी लगता रहा कि बुड्ढे से बड़े प्रभावित हैं आप, बुड्ढे ने समझाया तो आपने भी समझा दिया कि यहां जितना ज्यादा से ज्यादा हो सके, कर दो।"

"तुम भी अभी तक नहीं समझी हो हमें, अरे मुंह पर तो यही कहना पड़ता है। बाकी तुम्हें अपने विवेक से काम लेना चाहिये।"

"हां, अब आप भी हमें कहने लगे, आखिर कुछ न कुछ तो असर पड़ना ही हुआ !" श्रीमती माथुर मुस्करायीं, वातावरण में कुछ हलकापन आ गया।

"अच्छा तो मैं चलती हूं कालेज, देखें वहां पर दोनों पहुंचे या नहीं !" मात्र चाय का एक प्याला पीकर श्रीमती माथुर चल दीं।

□

कालेज में दोनों व्यक्तियों में से एक को भी न देख श्रीमती माथुर ने विषाद और राहत एक साथ महसूस की; बेचारा हो चला गया, किताबें ले ही लेती, पैसे बनवा ही देती—

अकड़ देखो, कि तुरन्त मूल्य नही मिलेगा, तो किताबें नही देंगे, ऐसा होता है कहीं–संस्थाओं के हिसाब-किताब तो बरसों-महीनों चलते रहते हैं। आप कहते है हमारा कोई व्यापार नही तो क्या है, इस हाथ दो उस हाथ लो—। चलो अच्छा हुआ, पीछा छूटा, जान बची, नहीं तो गुनाह बेलज्जत हो जाता, सब कुछ भूल कर काम देखना शुरू किया, तभी एकाएक फोन घरघरा उठा,

"हलो !"

"बहनजी, मैं बोल रहा हू।"

"जी नमस्कार, मैनेजर साहब, कहिये !"

"अजी ये बुजुर्गवार बैठे है यहा मेरे पास, आप वह चैक बनवा कर भिजवा दें।"

"चैक ?"

"हा, किताबें यहा मौजूद है।"

"जी, आप सुनिये तो !"

"मैं आपको सब कुछ बाद मे समझाऊगा, इस समय तो आप चैक बनवा कर भिजवाओ।"

"देखिये, इन महोदय से मैंने कालिज आने के लिए कहा था, वे यहां तो आये नही, आपके यहा जा बैठे, यह मेरी प्रेस्टिज का प्रश्न भी तो है।"

"ठीक है, मैं आपकी बात समझता हूं, आपको बाद मे बताऊंगा, आप समझ जायेंगी।"

"मैं काफी अच्छी तरह समझ गयी हूं। आप शायद नहीं समझे हैं"...अन्तिम टुकड़ा श्रीमती माथुर के गले में ही अटका रह गया।

"तो भिजवाइये जल्दी से चैक, बिल मैं भिजवा रहा हूं किसी चपरासी को भेजिये !"

"जी !" विवश और निरुपाय-सी उन्होंने रिसीवर छोड़

दिया। दो क्षण सिर पकड़ बैठी रही, मन किया, बिल्कुल कुछ न भिजवायें, कोई क्या कर लेगा उनका···सब कुछ भूल अपने को फिर काम में उलझाने का प्रयत्न किया तो फोन फिर घर-घराया,

"बहनजी, चपरासी अभी नहीं आया है, चैक दे जायें और पुस्तक उठा कर ले जायें।"

"·······।"

"जी, पर आप मेरा ख्याल करके ही भिजवा दें प्लीज़।"

श्रीमती माथुर के लिए चैक तैयार करवा देना आवश्यक हो गया। एक बार उबाला फिर उठा, एक विचित्र-सी घिन और कड़ुवाहट—फिर सब कुछ शांत हो गया—वे गूंगे-बहरे आदमी-औरतें आंखों के आगे घूम गये, जो किसी से अपनी ग़रीबी का दु:ख—रोना लिखवा कर जिस-तिसके सामने पेश करते फिरते हैं—अपनी रईसी और आडम्बर की धज्जियां खड़ी करके ये भी रुपया बटोरने की कोशिश में लगे हैं—हाथ फैलाये मुंह बाये उन लोगों की मूकता और इन लोगों की वाचालता—कहीं कोई नाम अन्तर है क्या इन दोनों में ? —सब कुछ के बीच घिरी गैंन की ठाडी से टिकाये श्रीमती माथुर सोचती रही देर तक।

संजीव

○

टीस

रह-रह कर सुगबुगा उठता है सिबू काका का कंकाल। बस, मिनट-दो मिनट या घंटे-दो घंटे और बात खत्म हो जानी है। बीन की तरंगों पर शाम की मटमैली उजास उनकी पलकों में रीते धूसर दिनों की तरह थरथरा रही है·· सहिजन के हिलते पत्तों के साये की तरह मौत के साये में झिलमिलाते जाने कितने क्षण, दर्द के जाने कितने पड़ाव, स्मृति की जाने कितनी टूटती-जुड़ती मेखलाएं···पहाड़ी की तलहटी में उजड़ता हुआ बाकद-डीहा गांव, दिनोंदिन अकेली पड़ती हुई पुआल के छप्पर की कुटी, शाल, अर्जुन, महुआ, करम की तरह अनचाहे उगे और काट कर फेंक दिये आदिवासी कुटुम्बी, 'जोगिनी' नदी की तरह शीतल चंचल, छरहरी मलाई और इन सबों से भरी ऊबड़-खाबड़ प्रांतर की तरह जिंदगी के जाने कितने लमहे और एक-एक कर सब-के-सब गड्ड-मड्ड होते और ओझल होते हुए···!

बड़े-से-बड़े विषैले सांपों को जकड़ कर मिट्टी हांडी में रस्सी की तरह बटोर कर रख लेने वाला, तरह-तरह की जड़ी-बूटियों हड्डियों अतरों-नाबाजों से संग आबनूस की तरह चमकता वजूद

तक प्याज, नमक और मिर्च ले आते। पत्थर की रकावी मे गोगुला (केकड़ा) और मछली परसी जाती और दोनो एक ही थाली मे खाने बैठ जाते। अपनी चीज मुझे खिलाते हुए प्रसन्नता मे उनका चेहरा और भी वीभत्स हो उठता और वे मुझे साक्षात दैत्य-से लगते।

धीरे-धीरे आदिवासियों की जिंदगी मे मेरी रुचि बढने लगी थी। और काका मुझे झूमर या पूजा के समय होनेवाले सामूहिक नृत्यों मे ले जाने लगे थे। अकसर जब कोई साप कहीं अच्छे दाम पर बेच आते, तो आयोजन उनके घर पर ही होते। कभी-कभी तो काका मस्ती मे बीन बजा रहे होते और मताई नागिन-सी झूम रही होती। दो ही दिनो मे सारा पैसा माड़ी मे बह जाता, और फिर वही ढाक के तीन पात की जिंदगी 'जिंदगी का हिसाब काक को न तब आता था न अब। पूछने पर कहते, 'क्या हिसाब करेगा पाडेय बाबू, हिसाब करने से हिसाब नही मिलता···।' ऐसे क्षणो में काका कभी-कभी अपने नि.सतान होने की रिक्तता मे बुदबुदा उठते, 'एक लडका होता मताई को तो···।'

'तुम मुझे मान लो ना···।' मैं कहता।

'दुर !···का मजाक करता। आप बड़ा लोक···।'

'अच्छा, भतीजा तो मानोगे ?'

'हा, भतीजा ऽ ऽ ऽ···होने सकता।' और करीब आते-आते भी एक फासले पर ठिठक जाते काका।

धीरे-धीरे संथालों-सपेरों की वह बस्ती जगली फूल की तरह कुम्हलाने लगी थी। पाकुड़डांड़ा कोलियरी के मालिक ने बस्ती के पास ही सुविधा और मुनाफे को ध्यान मे रखते हुए एक चूने खदान शुरू कर दी थी, जो बस्ती की छाती पर एक बड़े घाव की तरह दिनोंदिन गहरी और बड़ी होती गयी थी और जिससे निकाली गयी मिट्टी और पत्थरों के ढूह के मलबे में समाते गये थे संथालो के खेत। कुछ तो इसे अपनी नियति मान कर 'नाना'

से मजदूर बन कर वहीं ठेकेदारी में खटने लगे थे। लेकिन अधिकांश को यह जिंदगी रास नहीं आयी थी और वे गिद्धनुमा अधिकारियों और क्लर्कों के चंगुल से मुआवजे की आधी-तिहाई रकम ले कर धनबाद, रांची या पुरुलिया की ओर अपना ढोर-डांगर, डेरा-डंडा लेकर चल पड़े थे। मुख्य सड़क से थोड़ी दूर पर टीले पर के अपने झोपड़े में वंशी बजाते हुए शिबू काका जब भी किसी ऐसे काफिले को गुजरते हुए देखते तो उनकी वंशी के सुर गड़-बड़ाने लगते। वहीं से चिल्ला कर पूछते, 'की गो, एबार को थाय···?' जवाब मिलने पर युगल दम्पति रपटीली सड़क पर उनके ओझल हो जाने तक देखते रहते। उन दिनों शाम को अक्सर मेरे घर आकर बताया करते,···आज कन्हाई चला गया, आज सोहन···आज गना··आज मनतोष··! अब न मादल बजेंगे, न बांसुरी, न झांझ बजेगी, न झूमर हो पाएगा। फीका-फीका रह जायेगा मनसा पूजा, दुर्गा, पचर्मा, जगन्नाथपुरी और सरहुल का उत्सव।'

आखिर एक दिन शिबू काका के खेत भी समा गये ओपेन पिट के पेट में। उन्होंने काड़े (भंगे) बेच दिये, मुआवजे की रकम लेकर दिन भर माड़ी पी और दूसरे दिन से फिर खाना से नंगेरे बन गये। पिता जी ने सुना तो बंगले पर बुला कर नौकरी दिला देने का आश्वासन दिया। मुझे याद है नाग पंचमी का दिन था वह। मां सांप दिखाने का आग्रह कर बैठी थी। शिबू काका हंसते हुए बोल पड़े थे, 'आपके चारों तरफ सांप-ही-सांप हैं बोउदी (भाभी)।'

'कहां?' डर कर इधर-उधर देखने लगी थी मां।

'नहीं! अच्छा तो देखिए, रोड पर जा रहा है एक नंबर का अजगर मुखिया बिनासी महतो। जितना सरकारी पैसा और सामान गांव के लिए मिलता है, सब साला के पेट में जाता। पीछे-पीछे जा रहा है उसका लड़का पहो। ढेमना (पाल्लिन)

तक प्याज, नमक और मिर्च ले आते। पत्थर की रकाबी में गोगुला (केकड़ा) और मछली परसी जाती और दोनों एक ही थाली में खाने बैठ जाते। अपनी चीज मुझे खिलाते हुए प्रसन्नता में उनका चेहरा और भी वीभत्स हो उठता और वे मुझे साक्षात दैत्य-से लगते।

धीरे-धीरे आदिवासियों की जिंदगी में मेरी रुचि बढ़ने लगी थी। और काका मुझे झूमर या पूजा के समय होनेवाले सामूहिक नृत्यों में ले जाने लगे थे। अक्सर जब कोई साप कहीं अच्छे दाम पर बेच आते, तो आयोजन उनके घर पर ही होते। कभी-कभी तो काका मस्ती में बीन बजा रहे होते और मताई नागिन-सी झूम रही होती। दो ही दिनों में सारा पैसा माडी में बह जाता, और फिर वही *ढाक के तीन पात की जिंदगी* '*जिंदगी का हिसाब* काक को न तब आता था न अब। पूछने पर कहते, 'क्या हिसाब करेगा पांडेय बाबू, हिसाब करने से हिसाब नही मिलता···।' ऐसे क्षणों में काका कभी-कभी अपने निःसतान होने की रिक्तता में बुदबुदा उठते, 'एक लड़का होता मताई को तो···।'

'तुम मुझे मान लो ना···।' मैं कहता।

'दुर !···का मजाक करता। आप बडा लोक···।'

'अच्छा, भतीजा तो मानोगे ?'

'हा, भतीजा ऽ ऽ ऽ···होने सकता।' और करीब आते-आते भी एक फासले पर ठिठक जाते काका।

धीरे-धीरे संथालों-सपेरों की वह बस्ती जंगली फूल की तरह कुम्हलाने लगी थी। काकड़डीहा कोलियरी के मालिक ने बस्ती के पास ही सुविधा और मुनाफे को ध्यान में रखते हुए एक खुली खदान शुरू कर दी थी, जो बस्ती की छाती पर एक बड़े घाव की तरह दिनोदिन गहरी और बड़ी होती गयी थी और जिनकी निकाली गयी मिट्टी और पत्थरों के ढूह के जबड़े में समाते गये थे संथालों के खेत। कुछ तो इसे अपनी नियति मान कर 'चासा'

से मजदूर बन कर वही ठेकेदारी में खटने लगे थे। लेकिन अधिकांश को यह जिंदगी रास नहीं आयी थी और वे गिद्धनुमा अधिकारियों और क्लर्कों के चंगुल से मुआवजे की आधी-तीही रकम ले कर धनबाद, रांची या पुरुलिया की ओर अपना ढोर-डांगर, डेरा-डंडा लेकर चल पड़े थे। मुख्य सड़क से थोड़ी दूर पर टीले पर के अपने झोपड़े से वंसी बजाते हुए शिबू काका जब भी किसी ऐसे काफिले को गुजरते हुए देखते तो उनकी बंसी के सुर गड़-बड़ाने लगते। वहीं से चिल्ला कर पूछते, 'की गो, एबार को धाय···?' जवाब मिलने पर युगल दम्पति रपटीली सड़क पर उनके ओझल हो जाने तक देखते रहते। उन दिनों शाम को अक्सर मेरे घर आकर बताया करते,···आज कलाई चला गया, आज सोसन···आज गशा···आज मनतोष···! अब न मादल बजेंगे, न बांसुरी, न झांझ बजेगा, न झूमर हो पाएगा। फीका-फीका रह जायेगा मनसा पूजा, छत्ता, पचर्सा, जगन्नाथपुरी और मरहुल का उत्सव।'

आखिर एक दिन शिबू काका के खेत भी समा गये ओपेन पिट के पेट में। उन्होंने काड़े (भैंसे) बेच दिये, मुआवजे की रकम लेकर दिन भर हाड़ी पी और दूसरे दिन ही फिर थाना से सपेरे बन गये। पिता जी ने सुना तो बंगले पर बुला कर नौकरी दिला देने का आश्वासन दिया। मुझे याद है नाग पंचमी का दिन था वह। मां साप दिखाने का आग्रह कर बैठी थीं। शिबू काका हंसते हुए बोल पड़े थे, 'आपके चारों तरफ सांप-ही-सांप है बोउदी (भाभी)।'

'कहां ?' डर कर इधर-उधर देखने लगी थीं मां।

'नहीं! अच्छा तो देखिए, रोड पर जा रहा है एक नंबर का अजगर मुखिया तिवारी महतो। जितना सरकारी पैसा और सामान गांव के लिए मिलता है, सब सांप के पेट में जाता। पीछे-पीछे जा रहा है उसका लड़का पशो। डेमना (पानिन)

है ढेमना। बड़ा-बड़ा बी० डी० ओ०, एस० डी० ओ० कोलरी मैनेजर, ठीकादार का या (पैर) बाघ के दूध पी जाता। कपड़ा और मूदीखाना का दुकानवाला सेठ लोग राजस्थान का पीवणा नाग है। मूदखोर राम वलीराय गंगा के किनारे का चित्ती (करैत) है तो मुनीम जगेशर सिन्हा 'बोडा' साप है। मूद का विष धीरे-धीरे असर करता और मुनीम के गोलमाल का जहर छौ मास बाद (सपेरों के अनुसार करैत का विष धीरे-धीरे तेजी पकड़ता है और बोड यानी बहरा साप का छह महीने बाद), चद्र बोड़ा, जल बोडा, धूल बोडा कितना सरकारी बोड़ा गा (गाव) मे घूमता। उडीसा का शखचूड नाग देखना है तो उड़िया फोरेस्ट अफसर 'दास' को देख लो। तक्षक देखना है तो कोलरी मैनेजर बैनर्जी को देख लो। दोमुहा साप अबी तक आप अगर नही देखा तो यूनियन लीडर सिन्हा को देख लो, इसका मू छौ-छौ मास बाद नही छौ-छौ मिनट पर खुलता-बद होता। लेबर से एक बात बोलना, मैनेजमेट से दोसरा···।

'और तुम्हारे पाडेय साहब···?' मा ने पिता जी की ओर इशारा किया।

'ई तो ढोंड है ढोड! विष नहीं है। हम आपको बोल देता बोउदी, अगर साप के बीच रहना है तो खोरिश (गहुअन) बन कर रहो जइसा दूसरा अफसर है, नहीं तो खा जायेगा साला लोग।'

'लो तुम ढोडहा साप हो गए।' मा ने बाबू जी को चिढाया।

दिखा चुके कि और भी साप है तुम्हारे दिमाग की पिटारी मे ?' पिता जी झेंप से बचने के लिए बोले।

'अभी कहा साब···! गोखुरा नाग को तो बतायाइ नही अभी।'

'वो कौन ?' उत्सुकता बढ़ चली थी हमारी।

'मन्दिर का पुजारी पंचानन भट्टाचार्य। जब दो त्रिपुण्ड

लगा के पूजा के लिए आया जनाना लोग को घूरता तो लगता कि गोखुर छापवाला नाग फन फुला के घूर रहा है। मंतर किटकिटाते वखत हम आदिवासी लोग को देखेगा तो फुफकारेगा, भागो साला लोग जाके ख्रीस्तान बन जाओ इहा काहें आता!— साव, देख लेना उसको अगर साप कामडाया (डसा) तो सापइ मर जायेगा, वो नहीं मरेगा।'

'तुम लोग किस जाति के सांप हो?' मैंने ठिठोली की।

'साप?…दुर! साप कइसा! हम तो बेंग (मेढक) और माछ (मछली) है जो चाहे गटक जाय।'

समाज के दो ही वर्गीकरण थे शिवू काका के अनुसार। एक, साप—चौकन्ने, लिजलिजे, जहरीले और दूसरे मेढक या मछलियाँ—आनन्द में भूले, सीधे और सपाट, कभी भी दूसरे का आहार बन जाने की नियति से बंधे।

उस दिन शिवू काका की हँसी-हँसी में दी गयी चेतावनी को हँस कर उड़ा दिया था पिता जी ने, मगर बाद में वह आतंक घाटी में कोहरे की धुन्ध की तरह गहराने लगा था और हमें हर तरफ से फुंकार सुनाई पड़ने लगी थी। मुआवजे की अनियमितताओं और विस्थापितों को दिये जानेवाले झूठे आश्वासनों को लेकर पिता जी और मालिकों के बीच की असहमति गहराती गयी थी। यद्यपि यूनियन ने उनके फेंके टुकड़ों पर गुर्राना बंद कर दुम हिलाना शुरू कर दिया था, फिर भी पिता जी की खिलाफत उनके आड़े आ रही थी और एक दिन गुंडों द्वारा घेर लिये जाने पर सचमुच भाग कर जान बचानी पड़ी थी हमें। जाते-जाते आपाधापी में शिवू काका को नौकरी तक न दिला पाये थे वे। बगाकर नदी की तटवर्ती मसान में जब पुराने मित्रों की सहायता से उन्हें सर छुपाने की जगह मिली तो, कारा का मामला एक तरह से आँख ओट, पहाड़ ओट बन गया।

□

काका मुझे दूसरी बार तब मिले, जब तीन वर्षों का लंबा अंतराल गुजर चुका था। इस बीच कोलियरियों का राष्ट्रीयकरण हो चुका था। पिता जी रिटायर्ड हो कर गाव जा चुके थे, मैं पूरा प्रशिक्षण कर अपनी पोस्टिंग का इंतजार कर रहा था और काका चासा और मजदूर बनने के सपने सदा के लिए दफन कर पेशेवर सपेरे बन चुके थे। वेस्ट टाउन की उस पान की दुकान पर हमेशा की तरह ही पान लेने की गरज से स्कूटर रोका था मैंने कि ढोल की आवाज ने मुझे खींच लिया। खासा मजमा जुटा हुआ था शीशम के पेड के तले। एक बूढा और एक बच्चा बडे अजीब ढग से ढोल पीट रहे थे। कान की मैल निकालती अन-मनी-सी बैठी मताई को देखते ही मै पहचान गया। थोडी दूरी पर शिबू काका भी नजर आये। वे उस समय बीडी का मसाला खैनी की तरह मलने मे मशगूल थे। इसके बाद उन्होने शाल के पत्ते में उसे लपेट कर हमेशा की तरह एक लबी चुट्टी (एक प्रकार की बीडी) बनायी। आधी पी कर मताई को थमा दी, फिर खड़े हो गये और लोगो की ओर मुखातिब हो कर हाथ जोड़ कर बोल पडे, 'साब लोग, बाबू लोग, माता लोग, बौन लोग, हम हाथ जोडता, साप दिखाने का वखत थाप बिलकुल शात रहेगा।' इसके बाद वे कान पर हाथ रख कर तान दे बैठे, 'नाग रे विषेर जालाय प्रान गेलो !...' ढोलक की फटी आवाज के साथ ही बूढे, बच्चे और मताई के समवेत स्वर मे गीत चल पड़ा।

काका छोटी-छोटी पिटारियां खोल-खोल कर नाग हाथ में लेकर गाते हुए परिक्रमा करते, फिर वापस पिटारी मे रख देते, जिस पर मताई ढक्कन लगा देती, फिर दूसरा, फिर तीसरा... इस प्रकार क्रम चल पड़ा। ढोल की आवाज विलंबित से द्रुततर होती गयी और विकराल सापो की बारी आती गयी। उंगली से छेड़ते ही गुंजलकें हिलती, फन फूलने लगते, गीत-संगीत का

मिला-जुला आलम मनसा-पूजन के आदिवासी प्रार्थना-नृत्यों का आतंक पैदा करने लगा था। सारे सांप दिखा-दिखा कर पिटारियों में रखे जा चुके थे। अचानक क्लाइमेक्स पर पहुंच कर काका ने सारी पिटारियां खोल कर एक साथ ही छोड़ दिया सारे सांपों को और पलक मारते ही उन्हें हाथ, पांव, गले और कमर में लपेट लिया तथा जेब और मुंह में भर लिया। पच्चीसों साप लहरा रहे थे, उनके बदन पर। इस बार मताई चल पड़ी थी उनके पीछे-पीछे अल्युमीनियम की थाली में पैसे इकट्ठे करने। काका ने एक-एक कर सांप पिटारियों में रखे, बूढ़े और बच्चे ने पिटारियों को कस-कस कर बांध दिया। अंत में मुंह का साप निकाल कर पिच्च से थूक दिया उन्होंने जमीन पर और बैठ कर मताई का पैसा गिनना देखने लगे।

'बीन क्या हो गयी काका ?' मैंने उनके करीब आकर पूछा।

'अरे अरे···भाइपो (भतीजे) आप !' मुझे देख कर खुश हो उठे काका। बोले, 'बीन कैसे बजाता, ये देखो···' उन्होंने हाथ सामने कर दिया, दाहिनी तर्जनी ठूंठ हो गयी थी।

'अरे, यह कैसे कट गयी ?'

'हमारा बगान का हासना हेना (रात की रानी) आप देखा था न...उसमें सुगंध के कारण साप एक-दू ठो आया करता था, मगर हम ज्यादा ध्यान नहीं दिया। एक दिन जाने कहां से एक महानाग आ गया। उसको हम पकड़ना चाहा, मगर वो काबू में नहीं आया और इस आंगुल में मोरोन-कामड़ (मृत्यु दंश) दे दिया। उसका विष भेजा में चढ़ जाता है, तो हम कट से चाकू निकाला और खच !'

'और साप ?'

'उसी दिन हम हासना हेना को काट के फेंक दिया, साप फिर क्या करने आता ?'

'अपनी हासना हेना के बारे में भी कभी सोचते हो काका?'

'कौन ?'

'आपकी मताई· · ·उनके रूप की सुगंध भी दूर-दूर तक कांकड़डीहा में फैली हुई थी और एक-से-एक विषधर साप थे वहां।' मैंने ठिठोली की।

'आप बहोत बदमासी करता· · ·बोलने को काकी बोलता और· · ।'

'छोड़ा काका, कुछ भी कहो, तुम्हारा आज का खेल देख कर मेरा भी सपेरा बनने को जी चाहता है।'

'आइसा छोटा बात काहे को बोलता भाइपो· · आप लोग मैनेजर बनगा, मिनिस्टर बनगा-ई धधा हम गाइया-गवार को छोड दो। सपेरा लोग का जीवन साप कामड़ाने सेइ जाता। हमारा बाप भी अइसेइ मरा था। मरते बखत हमको ऊ बोल के गिया—बेटा, ई धंधा छोड़के चास बास शुरू करना। हम किया भी। गाछ काट-काट के, पत्थर हटा-हटा के खेत बनाया, मगर भाग्गो (भाग्य) में ये ई लिखा था· · ।'

'नौकरी···? तुम्हारी तो जमीन भी चली गयी है कोलियरी के पेट में।'

'हूह ! येई होता तो कांकड़डीहा का आदिवासी लोग छोड़-छोड़ के भागता काहे! सब जगह पर मुखिया, मैनेजर या यूनियन का लोग है।'

'आखिर कुछ तो बचे है। उनके धनुप-तीर, भाले-गडासे क्या हो गये ?'

'मत पूछो-भाइपो, बाकी आदिवासी को माडी पिला के चाहे दइसेइ उलटा-सीधा बुझा के जो कराने सकता ई लोग। उनकी जनाना लोग तक से मनमानी करता है ईलोग। हमारा दुख कोई कइसे काटने सकता, जब सरसो मे ई भूत है। आप क्या करता इधर?' 'बाबा रिटायर्ड होकर गाव चले गये हैं और मैं जल्दी ही तुम्हारे हलके मे डी० एस० पी० होकर आ रहा हूं।'

'डीस्पी···? वो क्या होता है ?'

'दरोगा से बड़ा और कप्तान से नीचे।' देहाती लहजे में मैंने समझाया।

'अरे-अरे मताई ! मताई !! सलाम करो डिस्पी साब को और सचमुच दोनों सलाम कर बैठे मुझे। मैं झेंप गया उनकी इस ऊलजलूल हरकत पर।

'अब क्या है ! अब तो बनग या संपेरा हमारा भाइपो ··! जगह-जगह जाके रकम-रकम का सांप पकड़ेगा-तेलिया, मुआपासी, लावोडार्गी, तक्षक, अजगर, शंखचूड़, महानाग, रकम-रकम का बोड़ा (बहरा) रकम-रकम का रोरिश (गेहुअन)। जेल का चिड़िया-खाना में बद करेगा तब बेल्ट, हैट, बूट, बंदूक ले के लेफ्ट-रैट, लेफ्ट-रैट चलेगा, जइसे हम सपेरा लोग गडा-नवीज बाघ के नाचता। एक भी सांप छोड़ना नहीं भाइपो। कामड़ाओ साला लोग और कामडाओ।'

पता नहीं किस विश्वास से प्रेरित होकर काका के जीवन के तमाम हारे हुए क्षण मेरे माध्यम से अपना प्रतिशोध लेने को आतुर हो उठे थे। उमंगों के अटपटेपन ने मुझे स्वयं एक मजमा बना दिया था। मैं स्कूटर पर बैठ कर जाने लगा, तो उन्होंने चीखते हुए कहा, 'भाइपो, डिस्पी के ड्रेस में आप कांकड़डीहा आवेगा तो सबसे पहले हमारा पास...हां..?' दूर तक वह आवाज मेरा पीछा करती रही थी।

□

नियति का कैसा व्यंग्य था ! तीन महीने के बाद उस इलाके का चार्ज संभालने के बाद ही कांकड़डीहा गांव जाना पड़ा, मगर काका से मिलने नहीं, उन्हें बंदी बनाने-मताई की हत्या के अभियोग में। लाश के फोटो वगैरह ले कर उसे पोस्टमार्टम के लिए ट्रक में रखवा कर मैं जब काका के पास आया, तो चौकीदारों ने उन्हें करम के पेड़ से खोल कर मेरे सामने बैठाया।

'काका, तुमने यह क्या किया ?' क्षोभ और आश्चर्य में डूब-उतरा रहा था मेरा स्वर।

'कुछ नहीं भाइयो'''एक बार फिर हमको अपना हासना हेना को काट देना पडा, बाड़े में सांप आ गिया था। ·· मगर साप ई बार भी हाथ में कामड दे के निकल गया।' उनका स्वर पहले जैसा ही विनोद भरा था, मगर आख जल रही थी।

'कौन ··?'

'वो ई तो आपका बगल में—गोखुरा नाग।' इशारा पुजारी पंचानन भट्टाचार्य की ओर था।

'देखं छेन ! देख छेन ! की असम्भो।' हकलाये पुजारी जी मेरे पीछे छुपने की कोशिश करते हुए। मैं विचित्र स्थिति में पड़ गया, बोला, 'काका, सच-सच बताओ, तो शायद मैं तुम्हारी कोई मदद कर सकू।'

काका ने बताया कि एक किंग कोबरा साप पकड़कर हाड़ी में रख वे कलकत्ता गये थे बेचने के लिए। पार्टी से कान्ट्रैक्ट करने के लिए। सात दिन बाद बात पक्की करके कोल फील्ड एक्सप्रेस से लौट रहे थे। मगर गाड़ी लेट होने के कारण रात दो बजे ही अपने गाव पहुंच पाये। घर में उन्होंने मताई और पुजारी को एक साथ सोते हुए पाया। उनकी दुनिया धू-धू करके जलती हुई-सी लगी। पहले उन्होंने सीधा हत्या न करके वह सांप ही छोड देना चाहा था उनके बदन पर। मगर हाडी खोली तो बदबू का तेज भभका फूटा। दिये की रोशनी में देखा, तो साप पर चींटिया रेंग रही थी। उन्हें यह साप की नहीं, मताई की मरी हुई लाश की दुर्गन्ध-सी लगी और उन्होंने छुरी से मताई की हत्या कर दी। पुजारी वार होने से पहले ही दिये को फूंक कर अंधेरे का फायदा उठाते हुए भाग निकला। शिबू काका ने पीछा किया, मगर उनके पहुंचने के पहले ही उसने मंदिर के कपाट बंद कर लिये और शोर मचा दिया। शोर सुन कर गाव के लोग

इकट्ठे हो गये और उन्हें पकड़ कर करम के पेड़ से बांध दिया।

□

जिन्नू काका को आजीवन कारावास पाये चंद माह ही बीते थे कि मैं उनसे मिलने जेल में गया। मुझे देखते ही उनके चेहरे पर आत्मीयता से भरे अह्लाद और आश्वस्ति का जो रंग छलका, वह उनके कालेपन की मनहूसियत के बावजूद जज्ब नहीं हो सका।

मैंने उनके पसंद की तम्बाकू और साल के पत्ते उन्हें थमा कर औपचारिकतावश कुशल-क्षेम पूछने के बाद उन्हें टटोला, 'काका, मताई के साथ तुम्हें ऐसा सुलूक नहीं करना चाहिए था।'

मैंने लक्ष्य किया, काका के चेहरे की मनहूसियत घनीभूत होने लगी थी। चुट्टी बना कर उन्होंने सुलगा ली, बोले नहीं कुछ। लगा, हर कश के साथ यादों के अंगारे दहक उठते थे। धुएं की लकीरों में वह चेहरा प्रस्तर प्रतिमा की तरह रहस्यमय लग रहा था। आधी चुट्टी पीकर उन्होंने एक बार उसे देखा और बुझा कर बुझी हुई मताई की याद की तरह कान पर रख लिया।

'गांव' जहने ई लोग हमारा सब कुछ छीन लिया, बदले मताई को भी छीन लिया। उनके बिना हम जिंदा नहीं रह सकेगा।' हम उसको का दिया अब तक था? चाल किया तो और साप ढोया तो, अभाव पोसा कुत्ता का माफिक पीछा लगा रहा। आपसे का बोलेगा, एक बार बीमार पड़ने पर खाने को कुछ नहीं था, साप घोड़ा (भून) के खा के रात काटा हम दोनों। कितना पुरुषार्थी है हम, पेट में भात तो नहीं दे सका, सांप मारने में भी कभी पीछे नहीं रहा। साला कितना बहादुर मरद है हम लोग, अपना आगुन और हानना हुंना को टोकई काट के फेंकने सकता मगर ऊ सांप को कुछ नहीं करने सकता... ऊ सांप तो अभी भी कुंडली मार कर बैठा होगा मंदिर में।' उनकी आवाज जैसे किसी कुएं से निकलती हुई भाव-भार करती-सी लगी।

लगा, ये ध्वनि-तरगें नही हैं बल्कि मृत्युदंश की टीसें हैं, जो जिस्म के एक छोर से दूसरे छोर तक तोड़ते-मरोड़ते गुजर रही हैं।

'आप हमारा माफिक उसको जेल देने सकेगा न ?' काका के इस सवाल का बिना कोई उत्तर दिये उनके कंधे थपथपा कर मैं वापस चला आया था उस दिन।

पंचानन भट्टाचार्य को कानून की गिरफ्त में लेने की मैंने बहुतेरी कोशिश की, मगर सामाजिक, राजनीतिक दबावों, समीकरणों की मेरी अपनी दुनिया थी, जहा सत्य नही सामर्थ्य की तूती बोलती थी और हर बार कानूनी फंदा छोटा लगने लगता। दिन बीतते गये थे और सवाल की आश्वस्ति का कवच दरकने लगा था आखिर कवच झड़ गया और रह गया नगा सवाल, जो बस आखों-आखो में ही तैरा करता और जिसकी नोक मुझे अपने सीने में चुभती-सी लगती। धीरे-धीरे सवाल भी सूख गया और अंततः अविश्वास और सदेह का सपाट। रूक्ष बियावान रह गया और एक दिन रात को जेल की दीवार फादने की चेष्टा करते हुए काका प्रहरी की ललकार पर हाथ-पांव तुड़वा बैठे। इसकी सजा स्वरूप पायी शारीरिक यत्रणा से पूरी तरह मानसिक सतुलन गवा बैठे। पागलो के वार्ड में भी मेरे अनुरोध पर उनकी चिकित्सा का हर संभव प्रयत्न किया गया था, मगर उनकी हालत बिगड़ी तो बिगड़ती ही चली गयी।

आज जैसे ही उनकी शोचनीय हालत की सूचना फोन पर मिली है, भागता हुआ आया हूं। जेल के उद्यान में सहिजन के पेड़ के तले, उन्हें लिटाया गया है। मनो-चिकित्सक अपने अतिम प्रयोग के रूप में किसी मोन बादक से बीन बजवा रहे हैं। रह-रह कर बुदबुदा उठता है उनका कंकाल। देखते-देखते धूसर शाम रात मे ढल गयी है। हासना हेना (रात की रानी) खिलखिला कर झरने लगी है। सुगध प्लावित है, बदसूरत दीवारों से घुटता जेल का मनहूस आलम। ऐसे में, दर्द के इस आखिरी पड़ाव पर

काका को देख कर, मेरे ज़ेहन में मशाल की रोशनी में, मादल की ताल पर उस झूमर का दृश्य उभर रहा है, जिसमें काका और मताई समेत जाने कितने संथाल-संथालिनों के पाव थिरक रहे थे ···।

स्त्रियों का दल : गोलाप फुटिलो, चोंपा फुटिलो, मातिलो पोवोन। किसेक गोंधो पेये मेते आछि नोमार मोन ?

पुरुषों का दल : हासना हेना आमार हे, सुवाय किसेक गोंधो हे / गोंधो सागरे भासदि जार जीवोनेर दिगोतो हे / एकी कोथा सेधे, कोंपे उठे आमार मोन / आधेक रातेर पोरेई झोरे जाग ना जोमोन।

स्त्रियों का दल : फुटिलाम कि झोरिलाम, एइ जीवोन ई पाइलाम / पीरिति अनो भालो नोय, तोमाके बुझादलाम/पीरिति पीरिति कोरे पागल होस ना रे मोन / नागफेनार सेज एटा टोसिई मोरोन।

स्त्रियों का दल : गुलाब खिल गया है, चंपा खिल गया है। पवन मतवाला हो उठा है, मगर कौन सी सुगंध पाकर तू मतवाला बन बैठा है ?

पुरुषों का दल . जिसके सुगंध सागर में मेरे जीवन के दिगंत तैरने लगे हैं। मेरी यह रात की रानी पूछती है कि गंध किसकी है ! एक ही बात सोचकर मन कांप उठता है, रह-रह कर, आधी रात के बाद (रात की रानी की तरह) झर तो नहीं जाओगी ?

स्त्रियों का दल : खिली कि झरी यही तो ज़िंदगी मिली है। इसमें प्रीति अच्छी नहीं है—तुम्हें मैं समझाये देती हूं। प्रीति-प्रीति करके बावरे न बनो। यह तो नागफनी की सेज है, टोंच-टोंच कर मरोगे।

□

तो क्या आज काका सचमुच 'नागफेना' की सेज पर टीस रहे हैं !

मनोचिकित्सक की व्यस्तता बढ़ चली है। बदहवास-सा वह कभी काका की हथेलियां मलता है, कभी पाव का तालू। अंततः नाड़ी टटोल कर, सर हिला कर बैठ जाता है, सर पर हाथ रख कर। उसे अफसोस है कि उसकी कोई दवा काका को न बचा सकी। उन्हें शायद कोई और रोग होता तो वे बच भी जाते, मगर उन्हें तो गोखुरे नाग ने डंसा था और मताई कोई उगली तो थी नही कि काट देने भर से बच जाते !

उनकी मौत से बेखबर बीन अब भी बज रही है। धब्बों से भरी चितकबरी चादनी किसी विशालकाय अजगर-सी छा गयी है कफन बनकर। इस धुंधली रोशनी में नजर दौडाता हू तो आस-पास झुण्ड-के-झुण्ड सर्पगंधा के कैक्टस फुनगिया उठाये खड़े दीखते हैं। लगता है, अनगिनत नाग बीन की तरंग पर हमें घेर कर लहरा उठे हैं। और उनसे घिरे हम दो सपेरे एक जैसे अशक्त हैं एक जैसे निरुपाय !

सिम्मी हर्षिता

O

धराशायी

"कान्ता, तू कल काम पर क्यों नहीं आयी ?"

"दाजी, मैं कल फिलिम देखने गयी थी न !"

"तो क्या सुबह-सुबह ही धरना देने पहुंच गयी थी ?"

"फिलिम पर जाने की खुशी में काम पर आने को जी ही नहीं किया। साढ़े ग्यारह तक वहां पहुंचना था। पैदल रास्ता पार करना था। जाने की तैयारी करनी थी। घर का काम कर के मां को भी तो खुश और राजी करना था न !"

"हूं ! कौन-सी फिल्म देखी तूने ?"

"वे ही जो 'अलंकार' में लगी हुई है।"

"हूं ! आजकल तू भी बहुत फिल्मखोर हो गयी है। कैसी लगी ?"

"मैंने सारी देखी कहां ? बस, वहां तक ही तो देखी, जहां वो एक आदमी मर जाता है।"

"क्यों ? सारी क्यों न देखी ?" अब मुझे फाइल पर से नजरें उठाने की जरूरत पड़ी।

"वो दाजी, जब मैंने कुर्सी का नम्बर बताने वाले को टिकट

दिया, तो उसने टिकट वापस ही नही किया। कह दिया, 'उस कुर्सी पे जा के वैठ जाओ।' और हम वैठ गये जा के। जब फिलिम शुरू हुई, तो एक दूसरा आदमी टिकट देखने को आ गया। हमारे हाथ में तो टिकट था नहीं। वह बोला—'टिकट नही है, तो वाहर जाओ। बिना टिकट के फिलिम कैसे देख सकती हो ?' हमने वहुतेरा कहा कि जो टारचवाला था, हमारा टिकट उसी के पास है। पर वह माना ही नही। पूछने लगा, पहचानती हो उसे ?' हम अंधेरे में उसकी सूरत भला कैसे पहचानेंगे ? और फिर सीट वताने वाले की मूरत की ओर देखने की कभी जरूरत ही कहां होती है ? हम टार्च के मुह की तरफ टिकट वढा देते हैं और जिधर वह अपना मुह हिलाती है, उधर ही जाके वैठ जाते हैं। हमें जाली नोट की तरह वाहर आ जाना पडा। हम कुछ भी न कर पाये। कहा तो हम उनके यहा रंगीन फिलिम देखने गये थे और कहां उन लोगों ने हमारी ही काली फिलिम वना डाली।'

"तुमने मैनेजर से शिकायत क्यो नही की ? उसने या तो कुछ जाली टिकट वेचे होंगे, या तुम्हारा टिकट किसी और को ज्यादा दाम पर वेच दिया होगा, या फिर कोई और गोलमाल होगा।"

"वाहर आ के हमने गेट पर खड़े टिकट काटने वाले वावू से तो कहा था। वह तो मान रहा था कि हमारे पास टिकट था। हमारी वात सुन के वहा के कित्ते ही लड़के हमें घेर के खड़े हो गये। सभी वार-वार पूछें—'पहचानती हो उसे ?' तभी एक और आदमजात वहा आया और वोला, 'पहचानती हो उसे ?'

"मैंने कहा, 'हां, पहचानती हू तुम्हें ! तुम ही तो थे !'

—'मैं था ?'

—'हां और क्या नही ? तुम्हारी मूरत नही पहचानती,

पर तुम्हारे शरीर के मोटापे और ताकत से मैं पहचानती हूं कि वह तुम ही थे।'

—'मैं था ?'

—'हां, तुम ही थे !' वह जैसे दोबारा उस आदमजादे से सवाल-जवाब करने लगी। उस आवेश में उसके हाथ धुल चुके वाशबेसिन को दोबारा पानी से नहलाने लगे।

"वो हंस के चला गया। दार्जी, यदि उसने न लिया होता तो मेरे ऐसे दोष लगाने पर क्या वह नाराज न होता ? पर उसने कुछ न कहा। वहां खड़े लड़कों में एक बार-बार मेरे कंधे पर हाथ रखे और कहे—'चलो, उधर कमरे में। वहां मैनेजर ने सारे टार्च वालों को खड़ा किया हुआ है, पहचान लो चलकर।'

—'मैं वहां क्यों जाऊं ? यहीं ले आओ उन्हें। यहीं पहचान लूंगी सबके सामने।'

—'यहां कैसे ला सकते हैं? मैनेजर साब यहां कैसे आ सकते हैं ? तुम्हीं को चलना पड़ेगा वहां। फिलिम तुमको देखनी है, मैनेजर साब को नहीं। तुम्हारे टिकट की गड़बड़ हुई है, मैनेजर साब की नहीं। नहीं पहचानोगी तो इनकी आदत कैसे सुधरेगी ? और यदि नहीं पहचान सकी, तो कल आ जाना। तुम्हें टिकट दे देंगे। कल फिलिम देख लेना।'

"मेरे साथ पड़ोस की आया भी गयी थी, जो मुझसे उमर में बड़ी है। मैंने आया को साथ चलने को कहा, तो वह बोला, 'ये क्या करेगी वहां जा के ? इसका क्या करना है ?"

—'क्यों ? ये मेरे साथ है।'

—'पर टिकट तो तुम्हारे हाथ में थे न ? तुमने लिये थे न ? इसलिए पहचान का हक केवल तुम्हारा है, इसका नहीं।'

"सो तो ठीक था दार्जी, पर मैं अकेली क्यों जाती, उस मटरढैया-कटिया की शकल पहचानने ?"

"यह तो तूने समझदारी करली।"

"उस टिकट उचक लेने वाले कंजे ने सोचा होगा। छोटी जात की है ? क्या कर लेगी ?"

वह सारी स्थिति का जोड़-घटाव करने के बाद शांत भाव से नतीजा सुना कर गुमसुम हो गयी। जाति का सवाल आ जाने के बाद, अब जैसे उसके पास कुछ भी न बचा हो कहने या जीने को।

◘

वह इस पल मुझे बुझी हुई निस्पद मोमबत्ती लग रही है। *उस टिकट की घटना को जाति से जोड़ देने पर उसका जीवन*, उसका मानवीय सम्मान, उसकी आत्मा की गरिमा घायल हो कर जैसे रोने लगी है। बेचारगी और लाचारी से घिर गयी है वह। उसका हर जीवत अणु जैसे मिट्टी में मिल गया है। पर इस दीनता और हीनता के बोझ के नीचे हर पल जीना बेहद कठिन और पीडादायक है। इस पल लगता नहीं कि यह वही कांता है, जिसे मैं जानता हूं। लगता है, जैसे यह कोई सदियों पुरानी काता है। मैं उसके कल का आज से परिचय और दोस्ती कराते हुए कहता हू, "क्यो ? इसमे छोटी या बड़ी जाति का क्या सवाल है ? सवाल तो टिकट का है और वह तुम्हारे पास था। इसलिए आराम से फिल्म देखने का हक तुम्हारा पूरा था।"

"पर दाजी, टिकट तो सभी खरीदते है न ? पर टिकट ही काफी नही होता, ठीक से फिलिम देख सकने के लिए या जिंदगी का कोई भी सफर कर सकने के लिए टिकट तो इस दीन-दुनिया मे भी आने-जाने का सबके पास है, पर इसमें भी सबको ठीक से और पूरा जीने का हक कहा मिलता है ? इन्सान जहा भी जाता है, उसकी जाति का टिकट और टिकट की जाति भी साथ जाती है—चेहरे पर चिपकी गरीब-गुरबा भाव की जाति—नीची और ऊंची कुर्सी की जाति—पहिये और बेपहिये की जाति। बस मे सफर करो, तो लड़के जानबूझकर छेड़-छाड़ो

करते हैं । वे समझते हैं—छोटी जाति की है, क्या कहकर लेगी ? या इसे क्या या क्यों एतराज होगा इसमें ? मुझे सख्त नफरत है इन सबसे ।"

उसका कल आज के पास नहीं लौट पाता । काता ने जात-पात की माचिस छुआ दी है और मानव-सभ्यता का इतिहास भभक कर जल उठा है । कभी जाति कर्म बन जाती है और एकलव्यों के अंगूठे काट लेती है । कभी वह मां का गर्भ बन जाती है और एक शिशु के सिर पर, उसकी मां के सिर पर का कूड़े का टोकरा धर देती है और दूसरे शिशु के सिर पर उसकी मां के सिर पर का ताज धर देती है । कभी वह हैसियत और औकात बन जाती है और दूसरे के शील को नग्न तथा जीवन को बंधुआ बना लेने का हक हासिल कर लेती है । कभी वह खास तरह का ईश्वर बन जाती है और अपने से विपरीत विश्वास का गला घोंट देती है । कभी वह चमड़ी का गोरा रंग और खूबसूरती बन जाती है और किसी को आर्य तथा किसी को अनार्य नाम दे देती है । कभी वह देश विशेष की उपनिवेशवादी मनोवृत्ति बन जाती है और तलवार पर अपने प्रभुत्व के दम में जीने लगती है । कभी वह अंग्रेजी भाषा बन जाती है, जिसको जाने बिना व्यक्ति अयोग्य और श्रीहीन हो उठता है । कभी वह बेटी की तुलना में वारिस बेटा बन जाती है । कभी वह देहात की तुलना में महानगर बन जाती है । कभी वह राजतंत्र बन जाती है और कभी नकली साम्यवाद का वेश धारण लेती है और लोगों की आजादी को निष्कासित हो जाना पड़ता है । कभी वह पहली और दूसरी समर्थ दुनिया बन जाती है और शेष विश्व को तीसरी दुनिया के भुखमरे खाते में डाल देती है ।

देश और काल के अनुसार इसने हर बार अपने चेहरे का रंग-रूप बदला है । इसके नाटक के न जाने कितने अंक और कितने दृश्य और हैं अभी । हर भंगिमा में इसका उद्देश्य दूसरे

को कुंठित और पीड़ित करना है। कल इसने कांता को गांव के कुए से पानी भरने से रोका था—परसों काता की मदिर से एक फूल पाने की चाह को पूरा नही होने दिया था—नरसों काता के रक्त और छाया को अपवित्र घोषित कर दिया था और ऐसे समय पर घर से बाहर निकलने का आदेश दिया था, जब छाया का जन्म नही हो पाता—और आज इसने दो रुपये खर्च करके जीवन का काल्पनिक सतरगापन देखने का कांता का नन्हा-सा सुख लूट लिया है।

□

मेरी याद मे पहले कांता के दादा-दादी यहा काम किया करते थे, फिर उसकी मा करने लगी, फिर काता की बड़ी बहनें, कभी-कभार भाई और फिर काता आने लगी। वह गुनगुनाते हुए अपना काम निपटाती जाती, जैसे कि वह कोई बहुत ही रोचक गीतनुमा काम हो। पर उसकी पलकों का परदा हमेशा ही नीचे गिरा रहता। उसके सिर पर का दुपट्टा भी अपनी जगह से कभी विद्रोह न करता, वह आसपास के वातावरण को लजालु अहसास से भर देती, जब कि उसकी छोटी बहन दालचीनी एक झगड़ालू और जिद्दी छवि बिखेर कर निधड़क काम के आर-पार हो जाती। उसके आने का मतलब है दिन की गलत शुरुआत, पर जब वह कहती है—'दार्जी, मैं कूड़ा लेकर जा रही हू।' या पूछती है—'मैं कूड़ा ले जाऊ?' तो जैसे मुझ पर घड़ों पानी पड़ जाता है। मना करने पर भी वह ऐसा पूछना-कहना छोड़ती नही और हर बार एक ही उत्तर देती है—'मा ने सिखाया है कि किसी के घर की कोई चीज बिना पूछे नहीं छूनी या फेंकनी।'

एक तरह से यह अच्छा ही है कि अभी जीवन मे निहित वेदना के अहसास ने दालचीनी के द्वार पर दस्तक नहीं दी है। पर मैं देख रहा हू, ज्यों-ज्यों उसकी किशोरावस्था एक-एक कदम

उससे दूर जा रही है, उसमें की अक्खड़ता बुझने लगी है—विनम्रता दीपित होने लगी है। जैसे कि उसने जीवन के यथार्थ को समझना शुरू कर दिया हो। अब ऐसा कभी नहीं होता कि वह आते ही फटाक से दोनों दरवाजे खोलकर बीचोबीच खड़ी हो जाये और दीदे फाड़कर मुस्कराने लगे। जैसे कि वह कह रही हो—हे घर के मालकिननुमा मालिक, अब शुरू करो अपनी डांट-डपट। मैं तो वही काम करूंगी, जिसने तुम चीखो-चिल्लाओ और कहो—'चली जा यहां से। अपनी मां को भेज। तुमसे काम नहीं करवाना है।' मैं यही तो चाहती हूं कि मुझे सुबह-सुबह न उठना पड़े, ये बेढंगा काम न करना पड़े और पहले की तरह दिन भर इधर-उधर खेलती-डोलती रहूं।

कांता के जीवन में कितनी ही तरह की दुर्घटनाएं उसके अहसास में अपनी यात्राएं कर रही हैं। उसका बाप हर साल बच्चों का खेल खेलता रहता है। गरीबी, महंगाई की दुहाई देने पर वह दासों से कहता है—'इनकी चिंता करना मेरा काम है, तुम्हारा नहीं।' समझाने और विरोध करने पर वह पुराने युग के किसी योद्धा की तरह इन्हीं के आगे अपने मन का भेद खोलता है—'ऐसा करने से इस नये जमाने में भी औरत के खराब होने का अंदेशा नहीं रहता। आखिर मैं अपने कुनबे में पहला सरकारी नौकर हूं। दिन भर बाहर ड्यूटी बजानी पड़ती है। दिल्ली शहर में अपनी जवान औरत पर नजर कैसे रखूं मैं?'

अब इन्हीं मुहल्ला वेजान हो गयी है। दान बाहर निकल आये हैं। न आपस में हंस रहा है, न आगों में आग्नू। पूरी तरह से हालात की मारी। नजर रखने की जरूरत की सीमा के पार। हर दो-तीन साल बाद पुराने चेहरे पर, पहले सादी और फिर उसका सौना हो जाता है और तब एक नया नन्हा-सा गोरा चेहरा काम पर आने लगता है। घरों में नये उसके प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम शुरू हो जाता है, जो

उसके नौसिखिए ढीलेपन और वक्त की पाबन्दी के अभाव के कारण उसके प्रति नापसदगी से शुरू होता है और चले जाने पर उसकी याद पर खत्म हो जाता है।

□

कांता के चाचा-चाची ने बड़े चाव से उसका विवाह और गौना अपनी बेटी की तरह किया था और अपनी बेटी के अभाव में कन्यादान का सुख दान-दहेज के साथ सजोया था। फिर भी काता को दहेजी ताने सुनने पड़े। उसका पति उसे उम्र में छोटा है और कमजोर भी। इसलिए सास ने पहले दिन से ही काता को न पेट भर खाना देना ठीक समझा, न जीना। उसे उठते-बैठते यह ताना सुनना पड़ता कि इस मुस्टंडी ने उसके फूल-से बेटे को आते ही कमजोर कर दिया है। उसके भरे-पूरे शरीर को ठोक-पीट कर उसकी शक्ति और स्वास्थ्य को उसके पति से नीचे लाने के यत्न में वह लगी रहती। जब काता घर का सारा काम निबटा कर भोजन की हकदार बनती, तो देखती कि दाल-भाजी आज भी उसके लिए नही बच पायी। तब उसे मा और चाची की याद आ जाती और रोटी को आखो के नमक के साथ निगल लेती चुपचाप।

एक ओर वह देश की राजधानी की बेटी है और दूसरी ओर शुरू की उम्र का काफी हिस्सा उसने चाची के यहा दुलार मे बिताया था, इसलिए उसके रख-रखाव मे एक नफासत और नपा-तुला भाव आ मिला है। पर पति उसके ढग से रहने-पहनने और गुनगुनाते रहने की आनदी आदत पर छीटा-कशी करते हुए कहता—'सारा दिन सजी-धजी और गुनगुनाती-महकती हुई अपने किस यार का इन्तजार करती रहती हो ?' और कोई उत्तर न मिलने पर उसके दोनो हाथो पर खूब मार मारता, जैसे कि वे हाथ किसी अपराध के दोषी हो। उसका आदेश था —'जब मैं तुम्हारे हाथों पर मारूंगा, तो तुम अपने हाथ परे

नही हटाओगी। दरद होने पर भी ज्यो-के-त्यो मेरे आगे पसारे रहना होगा। यदि हटाओगी तो और मार खानी पड़ेगी।' 'यानी मारोगे भी और रोने का हक भी नही दोगे?'—उसकी चुप्पी में से एक सवाल बाहर आता और मार खाकर अन्दर लौट जाता।

ऐसे ही न जाने कितने ही कहे-अनकहे दुख उसके अन्दर जी रहे है। काता को जैसे इस सब मे कुछ भी नया या अजीब नही लगता, क्योकि उसके आस-पास, उसकी मा-बहनो के साथ कुछ-न-कुछ ऐसा या वैसा घटित हो रहा है अनदेखे काल से। यदि उसके साथ ऐसा न होता, तभी उसे अजीब लगता। उसकी बड़ी बहन वर्षों से मा के पास आयी पडी है और अब बीमार रहने लगी है। अब उसका अपने ससुराल जाना और भी असभव हो गया है। अब काता को भी ससुराल से मायके धकेल दिया गया है, क्योकि उसने हाथो पर पति से डडे की मार खाते हुए दर्द से चीख कर हाथ परे खीच लिये थे—उसने पति परमेश्वर के फरमान की तामील नही की थी—वह अपनी पाचवी झाड़ेंदी को निष्क्रिय और निस्पद करने मे असफल रही थी। काता फिर पहले की तरह अपने पुराने काम पर आने लगी है और पहले की तरह ही गुनगुनाती रहती है।

काता के जीवन मे कितने ही गम्भीर दुख है, पर उसके किसी दुख ने एकदम से कभी मुझे इतना परेशान नही किया, जितना कि कल की घटना ने। वे दुख जिनके अन्दर सदियो पुराना मलबा भरा हुआ है—किसी भारी पत्थर की तरह चुप-चाप मेरे मन के तल मे जाकर बैठ गये है—मेरे अपने दुख के साथ पर आज का दुख लहरो की तरह बार-बार मेरे मन से टक-राता है और उसे भिगो-डुबो देता है।

कुछ दुख ऐसे होते है, जिन्हे व्यक्ति बर्दाश्त नही करता—पति या पत्नी का दुख—परिवार और सन्तान का दुख—प्यार

पाने और देने का सुख —अपनी सहजता में नदी के वहाव-सा जीने-हंसने-रोने का सुख—भागते-दौड़ते स्वस्थ तन का सुख। विकाऊ होते हैं—उन्हें खरीदा जा सकता है और फिल्म देखने का एक सुख ऐसा ही सुख है। क्या व्यक्ति को जीवन में कुछ सुख खरीदने का अधिकार भी नही होना चाहिए ?

फिल्म के प्रकाशित परदे के सामने उसकी जिंदगी का अंधेरा परदा कुछ देर के लिए सिनेमा के अंधेरे में गुम हो जाता। कुछ देर के लिए अपने को भूलना-भुलाना हो जाता। कुछ देर के लिए अपने से दूर जाने का सफर हो जाता। कुछ देर के लिए उसके मन का वृक्ष अपनी जड़ें जमीन के फंदे से निकाल कर हवा में फैला देता और फिर चुपचाप जमीन के अंदर लौट जाता।

पर काता इससे पहले कि झाड़ू, कूड़ा, गुसलखाना, शौचालय आदि की सफाई-धुलाई की रोजी-रोटी की जमीन को कुछ देर के लिए भुला पाती—कुछ पल के लिए अपने आप से अलग होकर किसी शिशु की तरह विस्मित-चकित कल्पना के तरल वायवी सतरंगेपन में डूब पाती कि किसी ने उसको मासूम मुस्कराहटों की पतंग से उठा दिया है—एकाएक एक और आदमी मर गया है—जीवन की ईमानदारी को फिर कोई दफन कर गया है—किसी की नन्ही-मुन्नी खुशियों को रुला सकने का एक और पाप ईजाद हो गया है—आवश्यकता एक और दुष्ट आविष्कार की मा बन गयी है।

☐

जब तक काता ने कूड़ा बाहर पड़े अपने टोकरे में डाल दिया है। घर के पीछे का यह हिस्सा धुला-धुला और अच्छा लग रहा है। अब धूप उस पर मजे से लेटी चमक रही है। पहले जैसे कल काता के न आने पर कुछ नाराज लगती थी। हवा में फिनाइल की सुगंध आ बसी है, जो सब कुछ स्वास्थ्य-

कर हो जाने का ऐलान कर रही है। घर का बासीपन झर गया है। एकदम तरोताजा, हल्का और खुश हो उठा है घर का पिछवाड़ा। अब फर्श पर चाहे कहीं भी पसर कर बैठ जाओ। लगता है घर के इस भाग पर कोई बोझ पड़ा हुआ था, जो कांता ने बुहारकर अपने टोकरे में फेंक दिया है।

गीले फर्श पर कांता पोछा फेर रही है। कहीं बहुत दूर खड़ी वह एक बात याद करने लगती है, "दाजी, दो-तीन रुपये के पीछे वह भठूरा मर पड़ा। न जाने कैसे-कैसे लोग होते है? इधर-उधर के घरों से जब भी एक दो रुपये मुझे इनाम मिलते हैं, तो मैं सोच लेती हू—मां को जरूर बता दूंगी, चाहे वापस नहीं दूंगी। बता देने से वह मेरा हो जाता है, नहीं तो वह मा का ही बना रहता है। मुझे इस तरह का झूठ और बेईमानी का पैसा पचता नहीं—कोई न कोई नुकसान हो जाता है। अब हाजमा-तो-हाजमा है न! उसमें कोई क्या कर सकता है?"

कांता ने जीवन की इस दुर्घटना को भी व्यक्ति के हाजमे से जोड़कर उसे रोटी-दाल का पर्याय बनाकर छोड़ दिया है। कांता ने उस व्यक्ति को हाजमे की हांडी में फेंककर ऊपर ढक्कन धर दिया है। अंदर पड़ा खाता-खदबदाता रहे वह—उसे परवाह नहीं अब। अब वह टिकट-झपट व्यक्ति जैसे उसके सामने धराशायी पड़ा है। उसके बुझे व्यक्तित्व पर एकाएक चाद निकल आया है। वह यों सहज हो आयी है, जैसे कुछ हुआ ही नहीं था कभी। वह इस पल न कोई जाति है न कोई पेशा—केवल एक इंसान बन गयी है और इसीलिए एक मुस्कान बन गयी है। उसकी गुनगुनाहट फिर हवा से खेलने लगी है।

सुखबीर

O

कच्चे धागे से

रजनी ने आंखें खोलीं तो कमरे में मद्धिम-सी रोशनी थी। एक छोटा-सा नीले रंग का बल्ब जल रहा था। और उस रोशनी में दवाइयों की महक घुली हुई थी।

रजनी आंखें खोले लेटी हुई कुछ देर ऊपर ताकती रही। उसे अपनी पलकें बड़ी ही थकी हुई लग रही थी। उन्हें खोलने में उसे तकलीफ हो रही थी। पर वह उन्हें बंद नहीं करना चाहती थी। आखिर, कुछ देर के बाद उसे अपने अस्तित्व का एहसास हुआ और उसने धीरे-से कमरे में नजरें घुमायीं। हां, यह अस्पताल का कमरा था। फिर उसकी नजर अपने पावों पर पड़ी। वह ढलवा पलग पर लेटी हुई थी। पलंग सिरहाने की ओर ढलवां था, और पावों की ओर काफी ऊपर उठा हुआ। उस स्थिति में लेटना रजनी को अजीब-सा लगा। कहीं वह सिर की ओर फिसलती हुई पलंग से गिर ही न पड़े, उसने सोचा। पर नहीं, वह अडिग लेटी हुई थी।

उसने अपने पावों की ओर से नजर हटाकर बायें हाथ खिड़की की ओर देखा। खिड़की अंधेरे का एक चौरस टुकड़ा

प्रतीत हुई। फिर वह तारों भरे आसमान का एक चौरस टुकड़ा प्रतीत हुई। चौरस रात ! उसे ख्याल आया। खिड़की में से दिखाई देने वाली चौरस रात का जिक्र भला कहा पढ़ा था ? किसी कहानी में ही पढा था, पर कहां? और किसकी कहानी थी वह ?···रजनी सोचने लगी, पर उसे याद न आया। फिर यह भी याद न आया कि उस कहानी का प्लाट क्या था और उसमें क्या लिखा हुआ था।

चौरस रात ! या तारो-भरा चौरस आसमान ! रजनी ने मन मे कहा और कमजोर-सी नजरों से खिड़की की ओर देखती रही।

धीरे-धीरे उसकी आखें मुदने लगीं। तभी उसने चौंककर उन्हें फिर खोल दिया। उसे डर था कि आखें बन्द हुईं, तो फिर कही वही सपना न दिखाई देने लगे, जो वह कुछ समय पहले देख रही थी और जिसे देखते हुए एकाएक उसकी आखें खुल गयी थी।

सपने में वह दो पंख आसमान मे फड़फड़ाते हुए देख रही थी। वे कटे हुए दो पंख थे। सिर्फ पंख। भला वे किस पक्षी के पंख थे ? उसने सोचा। आसमान मे अकेले ही कैसे फड़फड़ा रहे थे। और आसमान था कि चीखों से भरा हुआ था। क्या अजीब बात नही कि वे चीखें दिखाई दे रही थी। जैसे उन्हें छुआ जा सकता था। पर वे किसकी चीखें थी ? क्या उस पक्षी की, जो वहा नही था और जिसके सिर्फ पंख ही वहा थे ? या क्या वे चीखें उन पंखों की थी ? जैसे वे चीखते हुए फड़फड़ा रहे थे। फिर, एकाएक आसमान से खून का धार बहने लगी थी और खून नीचे आकर किसी अंधेरे गढ़े मे गिरने लगा था। धार बहती रहा थी, पर गढ़ा भरने में नही आ रहा था।···

रजनी की खुली हुई आंखों के सामने एक-दो बार वे पंख फड़फड़ाये और खून की धार चमकी। तभी उसे लगा कि वह

खून की धार जैसे उसके अन्दर से वह रही थी और कई दिन से वह रही थी। रजनी कई बार बेहोश हुई थी। और जब भी उसे कुछ होश आया था, उसने अपने अन्दर से बहते हुए खून को महसूस किया था। डाक्टरों ने बहुत कोशिश की थी, पर खून रुकने में नही आ रहा था। रजनी बेहद कमजोर हो गयी थी। वह प्राय. नीमबेहोशी की हालत में लेटी रहती। उस हालत में उसे धुधला-सा प्रकाश दिखाई देता और मंद-सी आवाजें सुनाई देती। और चारो ओर दवाइयो की महक फैली होती। उस महक में जैसे खून की महक भी होती।

नौ दिन पहले रजनी के पेट में एकाएक तीखी पीडा उठी थी और उसके अन्दर से खून बहने लगा था। दो महीने से उसे माहवारी नही हुई थी। शादी के पाच-साल के बाद यह पहला मौका था कि उसकी माहवारी रुक गयी थी और उसका जी मितलाने लगा था। उसकी खुशी का अन्त नही था। आखिर इतने सालो के बाद उसकी कोख भरी थी। और यह शून्यता भी भर गयी थी, जो इतने सालों से उसके जीवन में फैलती जा रही थी।

रजनी ने जब यह बात पति को बतायी थी, तो उसका चेहरा एकाएक गम्भीर बन गया था, और उसकी आखें जरा-सी सिकुड गयी थी और कही दूर देखने लगी थी। अन्त में, उसके चेहरे का रंग काला पड गया था और वह बिना कुछ कहे वहा से उठकर चला गया था।

रजनी अवाक्-सी उसकी ओर देखती रह गयी थी। फिर, अगले ही क्षण उसका मन किसी सदेह से भर गया था और उसका चेहरा भी गम्भीर बन गया था।

रजनी को कमरे में घुटन महसूस हुई और लगा, जैसे उसकी सास अन्दर ही अन्दर घुटती जा रही है। उसे प्यास महसूस हुई और मुह एकदम सूखा-सा लगा। उसने बड़ी कठिनाई से

जरा-सा घूमकर देखा। नर्स नीचे फर्श पर सोयी हुई थी। उसने बड़ी क्षीण आवाज में नर्स को बुलाया। पर उसे लगा कि वह आवाज उसके अन्दर से बाहर नहीं निकली थी। तब उसने और जोर लगाकर दुबारा बुलाया। इस बार नर्स जाग पड़ी और उसके पास आकर पूछने लगी, 'कैसी तबीयत है ?

'पानी।' रजनी के मुह से निकला।

नर्स ने उसे पानी पिलाया। फिर, वह कुर्सी खींचकर उसके पास बैठ गयी। 'कैसी तबीयत है ?' उसने फिर पूछा।'

रजनी ने उसकी ओर आखें फैलाकर देखा और धीमे-से कहा, 'ठीक है।'

कुछ देर दोनों चुप रहीं। नर्स खिड़की में से बाहर देख रही थी, और रजनी उसके चेहरे की ओर। वह हल्के सावले रग का चेहरा था। उसमें कहीं छिपी हुई मासूमियत का आभास होता था। नीद से जागने पर भी उस चेहरे पर ताजगी थी। रजनी को उस चेहरे से ईर्ष्या-सी हुई। उसके मन में आया कि आईने में अपना चेहरा देखे। तब वह कल्पना में अपने चेहरे को देखने लगी, जो उसे बहुत कमजोर और सूखा हुआ-सा दिखाई दिया, जैसे लकड़ी या सूखी मिट्टी का बना हो।

'कितने बजे होंगे ?' उसने नर्स से पूछा।

नर्स ने अपनी कलाई-घड़ी देखकर कहा, 'सवा तीन हुए हैं।'

'रात कितनी धीरे-धीरे चलती है।' रजनी ने कहा।

'आप काफी देर से जाग रही हैं ?' नर्स ने पूछा।

'पता नहीं। शायद ज्यादा देर नहीं।

'अब नीद नहीं आ रही ?'

'नहीं। नीद से डर लग रहा है कि सोऊंगी, तो फिर वही सपना देखने लगूंगी। बड़ा भयानक सपना था वह।'

नर्स को सपने के बारे में पूछने की इच्छा हुई, पर उसने नहीं पूछा। इससे मरीज को नुकसान पहुंच सकता था।

'तुम्हें नींद आ रही है ?' रजनी ने पूछा।

'नही तो,' नर्स ने मुस्कराकर कहा।

'नींद आ रही हो, तो सो जाओ।'

'नही, नींद नही आ रही है।'

सुनकर रजनी को खुशी हुई। वह खुद चाहती थी कि नर्स न सोये तो अच्छा है। वह उससे बातें करना चाहती थी। उसे लग रहा था, जैसे एक अरसा ही हो गया था कि उसने किसी से बातें नही की थीं।

'थोड़ा और पानी पिलाओ।'

नर्स ने उसे पानी पिलाया।

पानी भी कैसी चीज है, रजनी ने सोचा, जो आदमी को जिन्दगी देता है। अब उसे अपना मुह इतना सूखा हुआ नही लग रहा था, और न होंठ ही लकड़ी के बने हुए।

वह ध्यान से नर्स के चेहरे को देखने लगी।

नर्स खिड़की में से बाहर देखने लगी।

कुछ देर के बाद रजनी ने पूछा, 'तुम्हारी शादी हो चुकी है ?'

'हां !' नर्स ने उसकी ओर नजर मोड़ी। 'आठ साल हो गये हैं।'

'आठ साल !' रजनी के मुंह से निकला। 'चेहरे से तो तुम बहुत छोटी लगती हो। जैसे अभी कुआरी हो।'

नर्स को खुशी हुई।

'बच्चे होंगे तुम्हारे ?' रजनी ने पूछा।

नर्स ने कुछ संकोच से कहा, 'तीन हैं।'

'तीन ?' रजनी को जैसे विश्वास नही हुआ।

'हां, तीन। दो लड़कियां और एक लड़का।'

'बहुत होशियार होंगे ?'

नर्स की आखें चमकी। जवाब में वह सिर्फ मुस्करायी ही।

वह ममता-भरी मुस्कराहट थी।

रजनी कुछ देर उसके बच्चों के बारे में बातें करती रही। नर्स ने बताया, 'एक बेटी को मैं डाक्टर बनाना चाहती हूं, और दूसरी को टीचर और लड़के को इंजीनियर। पर वह बड़ा गंभीर सा लड़का है। अपनी ही दुनिया में खोया रहना है रंग-बिरंगे चाक लेकर उलटी-सीधी रेखाएं खींचता रहता है। अजीब अजीब शक्लें बनाता है—जानवरों की, आदमियों की, दूसरी कई चीजों की। फिर उन्हें देखकर बहुत खुश होता है। उस समय उसका चेहरा इतना गंभीर नहीं रहता।'

'तब तो वह आर्टिस्ट बनेगा।' रजनी ने कहा, 'कितने साल का है ?'

'साढ़े तीन साल का। जो भी बने, मैं उसे बहुत बड़ा आदमी बनाना चाहती हूं।'

'तुम्हारा पति क्या करता है ?'

नर्स का चेहरा एकाएक काला पड़ गया। कुछ क्षण वह बोल न सकी। उसकी आंखों में दो आंसू टूटे। उसने साड़ी के आंचल से आंखें पोंछी और फिर कहा, 'वे डाक्टर थे।'

'थे ?···और अब ?'

'अब वे इस संसार में नहीं हैं। पिछले साल स्वर्गवास हो गया था उनका।'

'ओह !' बहुत अफसोस हुआ सुनकर।

नर्स कुछ संभली। 'बस, यही लिखा था किस्मत में। उनके साथ मैंने जो सात-सवा सात साल बिताये थे, और शादी के पहले के दो साल—उन्हें मैं कभी नहीं भूल सकूंगी। वे मुझे सारी जिंदगी के लिए अमीर बना गये हैं। ये पिछले नौ साल कभी नौ दिन भी लगते हैं, कभी नौ सदियां।' नर्स की आंखें फिर गीली हो गयी थीं, और वह चुप हो गयी। इस बार उसने आंखें पोंछी नहीं और रजनी की ओर से नजर हटाकर अ

के धुंधलके में से खिड़की से बाहर दूर कहीं रात में देखने लगी।

रजनी कुछ देर एकटक उसके चेहरे की ओर देखती रही। फिर, उसके उस पार उसे अपने पति का चेहरा दिखाई दिया—गुस्से और नफरत से भरा हुआ चेहरा। बड़ा भयानक चेहरा। रजनी के गर्भवती होने का जिक्र सुनकर वह वहां से उठकर चला गया था। उसने शायद हिसाब लगाया होगा। और जब वह लौटकर रजनी के पास आया था, तो उसने कहा था कि वह उसका बच्चा नहीं है। वह सतीश का बच्चा है। वह हराम का बच्चा है।

रजनी पिछली बार अपने माता-पिता से मिलने गयी थी, तो वहां से दो-तीन दिन के लिए सतीश के शहर भी—हां, अब वह सतीश का ही शहर था—गयी थी। वह उससे मिली थी। उसने देखा था कि सतीश अपने आपको तबाह कर रहा था। उस दुःख और दर्द को अन्दर ही अन्दर जी रहा था, जो वह उसे दे गयी थी। रजनी ने उसे नयी जिंदगी शुरू करने के लिए कहा था। अपनी कसमें खिलाकर कर कहा था कि वह पिछला सब कुछ भूल जाये और नयी जिंदगी शुरू करे। वह खुश होगा, तो वह भी खुश होगी, वरना वह उसके दुःख को सह नहीं सकेगी। और नयी जिंदगी शुरू करने के लिए उसने सतीश के लिए एक बहुत अच्छी लड़की भी ढूंढ़ी थी। उसकी फोटो उसने उसे दिखाई थी। वह चाहती थी कि सतीश उस लड़की के साथ शादी कर ले और सुख से रहे। हां, वह ऐसी लड़की थी, जिसके साथ वह सुख से रह सकेगा। पर सतीश नहीं माना था। आखिर रजनी निराश होकर और उसका दुःख-दर्द अपने दिल में लेकर वहां से लौट आयी थी, और उसे लगा था कि अब वह भी उसी की तरह अंदर ही अंदर घुलकर तबाह हो जायेगी, टूट जायेगी।

घर लौटने पर एक दिन उसके पति ने सतीश से मिलने

का जिक्र किया था, तो रजनी ने उसके बारे में सब कुछ बता दिया था। वैसे भी, पति को उसके सतीश से मिलने का पता लग गया था। दोनों की झड़प हुई था, और फिर बात आयी-गयी हो गयी थी।

पर रजनी के गर्भवती होने की बात सुनकर पुरानी चिनगारी भड़क उठी थी और पति उस पर झपटा था। वह पागलों की तरह झपटा था और उसे बेतहाशा मारने लगा था। पता नहीं, कितनी लातें उसने उसके पेट में मारी थी। अंत में, रजनी बेहोश हो गयी थी। होश आने पर वह बिस्तर पर पड़ी थी और उसके अन्दर से लगातार खून बह रहा था। बार-बार वह खून साफ किया जा रहा था। दवाइयां और इंजेक्शन दिये जा रहे थे, पर खून बंद होने में नहीं आ रहा था। रजनी कई बार बेहोश हुई थी। एक बार बेहोशी के बाद जब उसने आंखें खोली थीं, तो देखा था कि वह अपने घर के बजाय अस्पताल में लेटी थी।

रजनी को लगा था कि कोई चीज उसके अन्दर से निकल गयी थी और अब उसके अन्दर एक बहुत गहरा गड्ढा था। कई बार वह गड्ढा फैलने लगता और बहुत बड़ा बन जाता। वह सूखा हुआ गड्ढा था—एकदम खाली और भयानक।

रजनी ने अपने माथे पर नर्स का हाथ महसूस किया, तो उसका ध्यान टूटा। वह हाथ उसे स्निग्ध-सा लगा। नर्स उस पर झुकी हुई थी और पूछ रही थी, 'क्या बात है? तबीयत खराब हो रही है?'

रजनी ने जवाब नहीं दिया और आंखें फैलाये उसकी ओर देखती रही। उसके चेहरे पर फिर पसीने की बूंदें उभर आयी थीं। नर्स ने फिर उसका चेहरा पोंछा और उसके माथे पर हाथ रखा।

रजनी ने सम्भलने का यत्न नहीं किया।

'पानी दू ?' नर्स ने पूछा ।

'हां ।'

पानी पीकर रजनी की हालत सुधरी । कुछ देर के बाद उसने नर्स से कहा, 'लगता है, जैसे मेरा अन्दर खाली हो गया है । एकदम खाली हो गया है ।'

'बहुत खून बह चुका है' नर्स ने कहा, 'पर फिक्र की बात नही । आप ठीक हो जायेंगी ।'

'क्या पता,' रजनी के मुंह से निकला ।

'अब कोई खतरा नही है,' नर्स ने उसे धीरज बधाया । 'हां, कमजोरी बहुत है । पर वह भी धीरे-धीरे दूर हो जायेगी ।'

'क्या पता,' रजनी के मुह से फिर निकला । 'अच्छा होता मैं मर जाती ।'

'ऐसी बात मुह पर न लाइये । आप बिलकुल ठीक हो जायेंगी । फिर से आपकी सेहत बन जायेगी ।'

रजनी चुप रही और उसने मन में कहा कि अब कुछ नही बनेगा । वह जो एक कच्चा धागा था, जिसके साथ वह लटकी हुई थी और जिसे पकड़े हुए पता नही किस तरह वह गिरने से बची हुई थी, अब वह टूट गया है । अब कोई सहारा नहीं है । उस एक कच्चे धागे का सहारा था, पर अब वह भी नहीं रहा । वह कच्चा धागा ? भला कौन-सा था वह कच्चा धागा ?... हां सतीश भी तो उसी से बधा हुआ था । पर उसके जिस सिरे से बंधा हुआ था, वह सिरा तो कब का टूट चुका था । नहीं, मनोज कच्चे धागे से नहीं बंधा हुआ था । तो वह किससे बधा हुआ था ?...

रजनी का दिमाग बोझिल होने लगा था । सोचने के लिए उसे दिमाग पर बहुत जोर डालना पड़ रहा था, और वह बेहद कमजोरी महसूस कर रही थी । उसके सामने अंधेरा छाने लगा था । वह कुछ भी सोच नहीं पा रही थी ।

कुछ देर के बाद उसकी आंखें मुंद गयीं। उसे नींद आ गयी। नींद में उसने एक मकड़ी को जाल बुनते देखा। वह बड़ी तेजी से इधर-उधर घूम रही थी। फिर, वह एकाएक गिरी, पर नीचे नहीं गिरी, बल्कि हवा में ही लटक गयी और झूलने लगी रजनी ने ध्यान से देखा, तो वह अपने एक बारीक-से तार से लटकी हुई थी।

हृदयेश

O

नये अभिमन्यु

पिछले एक पखवारे में मास्टर बजरंग प्रसाद छत पर तीसरी बार चढ़े थे। पिछले पखवारे से ही बरसात शुरू हुई थी, और तीन-चार पानी यों बरस चुके थे, बरसात के मौसम में जैसे उनको बरसना चाहिए, गरज कर, लरज कर, मूसलाधार पहला पानी रात में गिरा था और पन्द्रह-बीस मिनट बाद मास्टर बजरंग प्रसाद और मोतियाबिंद से धुंधलायी आंखों वाली उनकी पत्नी ने, जो घिसट-घिसट कर भी चलती थी, पाया कि कमरे की छत टपक रही है। छत ने एक जगह से टपकना शुरू किया है और फिर कई जगह से टपकने लगी है। जिस भाग को सुरक्षित समझ कर वे खंसखट खिसकाते हैं, पानी कुछ ही देर बाद उधर ऊपर से आने लगता है, किसी बेसब्र और बेलिहाज महाजन के तकाजे जैसा। पत्नी बड़बड़ायी थी कि जब पहले पानी ने यह गति कर दी है, तो पूरी चौमासा कुत्ते-बिल्ली की तरह भीगते-दुबकते काटे-कटेगा। मास्टर बजरंग प्रसाद ने बिस्तर गुड़ी-मुड़ी कर खंसखट खड़े कर दिये थे और संदूक, कनस्तर आदि जिन चीजों को बचाना जरूरी था, उनको ढक-तोप दिया था। फिर वह

पत्नी को ले कर कमरे से सटे, टीन के सायेवाले उस एक मुरब्बा गज टुकड़े में चले गये थे, जिसके दो ओर नंगी ईंटों की आड़ उठी थी और जिसे चौके का विकल्प बनाया गया था। और वहां रखे ईंधन, अंगीठी, घड़े-बाल्टी जैसे ही जिन बन कर सिकुड़ कर बैठ गये थे।

सामने छोटी-सी खुली जगह पार कर एक छोटा कमरा था। हालांकि अंधेरा था और चारों ओर स्याह कंबल झूल रहे थे, लेकिन मास्टर बजरंग प्रसाद की आंखों के सामने लोहे का एक ताला बार-बार चमक जाता था, जो दरवाजे की ऊपरी कुंडी पर लटका हुआ था। उस कमरे की छत नयी थी। दो साल पहले उस पर उनके सामने ही दूसरा गट्टा पड़ कर पलास्तर हुआ था। पहले वह कमरा उनके ही पास था, पर पिछले छह महीने से नहीं था। मकान मालिक ने उसे अपने कब्जे में ले लिया था।

तो पिछले पखवारे मास्टर बजरंग प्रसाद छत पर जो पहली बार चढ़े थे, वह इस पहले पानी के बाद ही। सुबह वे स्कूल गये थे। दोपहर को लौट कर उन्होंने बुश्शर्ट और पाजामा उतार कर बदले में चारखाने का एक कचमैला गमछा लपेट कर खाना खाया था और तुरन्त बाद ही गमछे में कांछ लगा कर छत पर चढ़ गये थे। सीढ़ी वे पड़ोस के एक मुनीम जी से माग लाये थे, जिनसे उनका घुला-मिलापन था। सीढ़ी के डंडे यद्यपि बुढ़ापे की दांत की तरह उखड़े-उखड़े और आड़े-बाड़े थे, वह छत से एक हाथ नीची भी थी, पर मास्टर बजरंग प्रसाद किसी नागामृग की तरह उचक कर चढ़ ही गये थे। धूप निकल आयी थी और छत पर यहां-वहां बिछी हुई आड़ी-तिरछी दरारें चमक रही थीं— दुर्दिनों की वक्र गति की तरह, अनचाहे से प्रमादों की तरह, खंडित आकांक्षाओं की तरह, नहीं, उनके अपने पचास साला चेहरे की अनगिन कटी-पिटी लकीरों की तरह। उनके पास मौसिम

कागज के एक बडे थैले में थोड़ा-सा सीमेंट बहुत संभाल कर रखा हुआ था, जिसे वे काफी दिनों पहले स्कूल में काम लगने पर हेडमास्टर साहब से इजाजत लेकर, वक्त जरूरत काम आने की नीयत से ले आये थे। उन्होंने उस सीमेंट में थोड़ा बालू मिला कर, जो भी उनके पास सहेजा रखा हुआ था, कलछी की सहायता से, डेढ-दो घंटा पसीना चुआनेवाली मेहनत कर, दरजें भर दी थी। भर कर वे आश्वस्त हो गये थे कि छत अब नहीं टपकेगी और उस आश्वस्ति से मिले सतोष के कारण उन्होंने रामायण की वह चौपाई गुनगुनायी थी, जिसे वे सतोष के क्षणों में बतौर एक आदत गुनगुनाया करते थे—मोरि सुधारहिं सो सब भाती, जासु कृपा नहीं कृपा अघाती।

किंतु दो दिन का वक्फा दे कर पानी जब फिर तड़ातड बरसा था, तो चद मिनट बाद कमरा फिर चूने लगा था—कहीं रिस-रिस कर, कहीं टपक-टपक कर और कहीं बकायदा धार बाधकर, लगभग पहले की ही तरह वक्त शाम का था। दिन की बची चिलक पानी में नील की डली की तरह घुलती जा रही थी मास्टर बजरग प्रसाद और उनकी पत्नी ने फिर जरूरी सामान ढक-तोप दिया था। पत्नी जहां भाड़ में पड़े मकई के दाने की तरह बड़-बड करने लगी थी, वहां मास्टर साहब की आंखें सामने कमरे के दरवाजे पर लटके ताले को फिर देखने लगी थी…।

मकान मालिक, जो रग का काम करता था और जिसका बाजार में एक रिहायशी तिमजिला मकान था, उसने उनसे किराया बढ़ाने के लिए फिर दोबारा कहा था, किंतु उन्होंने यह कह कर मना कर दिया था कि कानून का सरक्षण होने पर भी वे दो साल पहले किराया बढ़ा चुके हैं और इतनी जल्द अब और नहीं बढ़ायेंगे। मकान मालिक ने तब मकान खाली कर देने पर जोर दिया था, जिसका उन्होंने यह उत्तर दिया था कि दूसरा कोई ढंग का मकान मिल जाने पर वे निश्चित खाली कर देंगे।

बात फिर आयी-गयी हो गयी। वे किराया देते रहे थे और मकान मालिक किराया लेता रहा था। छह महीने पहले एक संध्या मकान मालिक ठेले पर रंग और वार्निश के डिब्बे लदवा कर आया और कहा कि माल ज्यादा आ जाने के सबब से उसे उस कमरे की दरकार है और हफ्ता-दस दिन में माल निकल जाने पर वह कमरा खाली कर देगा। वे राजी हो गये थे। मकान मालिक ने रंग और वार्निश के डिब्बे रखवा कर अपना ताला डाल दिया था। बाद में वह रंग के डिब्बे निकाल ले गया था, किंतु ताला पड़ा रहने दिया था और बार-बार खोलने का इसरार करने पर कह दिया था कि वह कमरा अब उसके कब्जे में रहेगा।

वह कमरा चूता नहीं होगा।

दूसरी बार मास्टर बजरंग प्रसाद छत पर इस दूसरे पानी के बाद चढ़े थे। स्कूल से लौटने के बाद वे उन्हीं मुनीम जी से सीढ़ी ले आये थे और मोमिया कागज के बचे हुए सीमेंट को घोल कर उन्होंने दरजों को फिर पिला दिया था, जो पहले जैसी तड़की हुई थीं। इस बार उन्होंने बालू कम मिलायी थी, दूसरी सावधानियां भी अधिक मुस्तैदी से बरती थीं। नहीं, अब यह नहीं चुएगी। संतोष के सुख से उन्होंने चौपाई फिर गुनगुनाई थी···
मोरि सुधारहिं सो सब भांति, जासु कृपा नहीं कृपा अघाती।

लेकिन कल जब तीसरे पहर पानी फिर गिरा था, तो छत फिर वैसे ही टपकने लगी थी, जैसे उसकी कोई मरम्मत हुई न हो। मास्टर बजरंग प्रसाद और उनकी पत्नी ने जरूरी सामान को फिर ढका-तोपा था। पत्नी चट-पट कर सुलगनेवाली गीली लकड़ी की तरह फिर बुद-बुद करने लगी थी और मास्टर बजरंग प्रसाद की निगाह सामने वाले कमरे पर लटकते ताले पर फिर अटक गयी थी···।

मकान मालिक दूसरों के दबाव से ताला खोल दे, इसके लिए वह अपने स्कूल के मैनेजर के पास कई बार दौड़ कर गये

थे, जो खुद एक बड़ा दुकानदार था। कई और असरदार आदमियों के पास भी गये थे। फिर हार कर एक बूढ़े वकील के पास गये थे। उसने चमड़े की जिल्दवाली किताब की ओर खिसका कर नाक पर चश्मा ठीक करते हुए कहा था, 'लिखा-पढ़ी आपके पास कोई है नही। अदालत में यह साबित करना मुश्किल हो जायेगा कि वह कमरा भी आपकी किरायेदारी में था।' अब कुछ हो न सकेगा, तब यह मान कर वे खामोश हो गये थे।

और आज छत पर चढ़ना यह तीसरी बार था। आज मास्टर बजरंग प्रसाद नयी बोरी से सीमेंट निकलवा कर लाये थे। उनके साथी अध्यापकों ने दरजें बार-बार खुल जाने की बात जान कर कहा था कि सीमेंट पुराना हो कर मर गया होगा, मरा हुआ सीमेंट राख बराबर होता है। उनके दरजे में ही बिजली कपनी के एक बाबू के पढ़ने वाले लड़के के यहा काम लगा हुआ है, यह जान कर वे वहा से मतलब लायक सीमेंट ले आये थे। फिर उस नये सीमेंट से उन्होंने दरजें भर दी थीं।

छत पर से नीचे उतर कर जब वे गली में गुस्ताने आये, तो उन्होंने पाया कि स्टील के बर्तनों का काम करनेवाले लाला गनेश शकर चरवाहे के लड़के को जोर-जोर से डाट-धमका रहे हैं। लड़का तेरह-चौदह साल का दुबला-पतला था। लड़के ने पाच दिन से लाला की गाय नहीं खोली थी, क्योंकि गाय के गले में पड़ी पीतल की घटी चली जाने पर लाला ने चोरी का इलजाम लगा कर लड़के को पीट दिया था। पिट जाने पर लड़के ने गाय खोलना बद कर दिया था। लाला अपनी बलगमी आवाज में एक के बाद दूसरी धमकी देते जा रहे थे कि कल से अगर उसने गाय नही खोली, तो वह उसका उधर से निकलना बद कर देंगे। हाथ-पैर तुड़वा देंगे, पुलिस के हवाले कर देंगे। लेकिन वह लड़का इन धमकियों की उपेक्षा कर कहता जा रहा था कि गाय खोल कर अब वह दोबारा चोर नही बनना चाहता है। जब वहा

से हटा, तब भी यही कहता हुआ कि गाय अब वह नहीं खोनेगा।

उस छोटे लड़के के तू-तड़ाकपन पर मास्टर बजरंग प्रसाद को अचरज हुआ था।

□

चार दिन खुला रह कर पानी फिर बरसने लगा था। दिन का वक्त था। जब पानी गिरते कुछ देर हो गयी और छत नहीं टपकी, तब मास्टर बजरंग प्रसाद को पक्का विश्वास हो गया कि सारी संधें दरारें भर गयी हैं। आसमान बरसात का तेवर लिए हुए था। बादलों का रंग पहले उन्हें पकी हुई धान की फसल जैसा लगा, फिर इमली के दरख्तों के झुण्ड जैसा, जिसकी चटनी उनको बेहद पसंद थी, और फिर दशरथनंदन राम के नीलाम्बुज तन जैसा, हालांकि उन्होंने कभी नीलकमल देखा नहीं था और उसके बारे में पढ़ा-सुना ही था। उन्होंने चौपाई गुनगुनायी… मोरि सुधारहिं सो सब भाँती, जासु कृपा नहीं कृपा अघाती।

उन्होंने लहक कर फिर एक चौपाई और गुनगुनायी, जिसे वह सुख के क्षणों में प्रायः गुनगुनाया करते थे—सीम की चापि सकइ कोउ तासू, बड़ रखवार रमापति जासू।

किन्तु नहीं, पानी फिर टपकने लगा। पहले एक कोने से टपका, फिर दूसरे से और फिर पुरानी तमाम जगहों से, लगभग पहले जैसा ही।

मास्टर बजरंग प्रसाद की छटपटाती आंखें सामने वाले कमरे पर फिर चली गयी थी। वहां ताला अन्याय के प्रतीक जैसा लटका हुआ था।

□

मास्टर बजरंग प्रसाद को उनके साथी अध्यापकों ने इस बार राय दी कि वे कोलतार का प्रयोग कर देखें। दरजें भरने के लिए कोलतार बहुत कारगर चीज है। तब वे घर से डालडे का एक पुराना डिब्बा लेकर, आधा कि. मी. दूर एक पुलिया पर

जाकर, जहां मरम्मत का काम लगा हुआ था, मेट को यह जानकारी दे कर कि वे लड़कों के 'मास्साब' हैं, कोलतार ले आये थे।

सीढ़ी वाले मुनीम जी ने चुटकी ली थी, 'मास्साब, बरसात भर सीढ़ी अपने यहां ही रखिए।'

मास्टर बजरंग प्रसाद ने अंगीठी पर चढ़ा कर कोलतार पतला कर लिया। वे कोलतार को कलछी से दरजों में चुआ देते थे और फिर उस पर बालू बुरक देते थे। एक बार उजलत में हाथ बालू के डिब्बे की बजाय कोलतार के डिब्बे में चला गया। गर्म कोलतार अंगुलियों से लासे जैसा चिपक कर जलाने लगा। सी-सी करते हुए उन्होंने तब अंगुलियां बालू में खोंस दीं। अगुलियों में जलन की मिर्च जैसी चरपराहट होती रहने पर भी वे दरजें भरने का काम पूरा कर ही छत पर से उतरे।

चौराहे पर हलवाई के घर पर एक मीटर लंबे काले सांप को हलवाई के सोलह वर्षीय लड़के ने मारा था। खबर सुन कर वे सांप और उस लड़के को देखने चले गये थे।

□

आज मास्टर बजरंग प्रसाद का लड़का कानपुर से आया था। वह वहां एक कारखाने में आपरेटर था। सफर की दिक्कतों की बात पूछे जाने पर उसने बताया कि उसके डिब्बे में कुछ यात्री बिना इस बात की चिंता किये हुए कि दूसरे यात्री खड़े हैं, सीटों पर लेटे हुए थे। उसने एक लेटे हुए यात्री को जबरदस्ती उठाकर सीट ली थी। बाद में फिर दूसरे खड़े हुए यात्रियों ने भी लेटे हुए यात्रियों को उठाकर जगह हासिल की थी।

वह फिर अपने कारखाने के बारे में बताने लगा था कि कैसे एक वर्क्स इंजीनियर ने मशीन का मोटर जल जाने पर अपनी गलती होते हुए भी दो मिस्त्रियों को बरखास्त करवा दिया था और कैसे उन लोगों ने उन मजदूरों का मामला लड़ कर उनको बहाल करवाया था।

कमरा छिन जाने की बात जान कर वह बजरंग प्रसाद से बोला था कि ताला उनको पड़ने नहीं देना चाहिए था। बोलते हुए उसका चेहरा आ जाती चमक के कारण कांसे का बन जाता था। स्वर धातु के बजने जैसा था।

वह फिर अपने साथ लाया अखबार पढ़ता रहा था।

वह फिर साथियों से मिलने चला गया था।

रात में सोते-सोते लड़का उठ बैठा। पानी उसके सिर पर टपका था। बजरंग प्रसाद और उनकी पत्नी भी उठ बैठे थे। पानी उन पर भी टपका था। बाहर पानी तेज गिर रहा था और अंदर चू रहे पानी का दायरा बढ़ता जा रहा था। क्या अंगुलियां जल जाने से कोलतार ठीक से भर नहीं पाया था? क्या ऐसी भी दरजें हैं, जो दिखायी नहीं देतीं, पर पानी के लिए रास्ता बन जाती हैं। अकिंचन के भाग्य के अदृष्ट लेखे और उनसे आने वाली विपत्तियों की तरह।

लड़के ने खाट छोड़ दी और सामनेवाले कमरे की ओर चला गया। एक गुम्मा उठा कर उसने ताले पर प्रहार किया। एक चोट में ही वह जंग लगा ताला किसी मरे हुए जीव की तरह मुंह फैला कर अलग हो गया। मोमबत्ती की रोशनी में तब लड़के ने कमरे के अंदर रखे हुए चार-पांच खाली डिब्बों और पेटियों को एक कोने में समेट दिया और बन्द खिड़कियां खोल दीं।

वह बजरंग प्रसाद और अपनी मां को कमरे में ले आया।

कुछ देर बाद वे तीनों गहरी नींद में सो गये। बाहर पानी गिरता रहा।

सुरेन्द्र तिवारी

O

इसी शहर में

रोज की तरह वह ठीक समय से कॉलिज के गेट पर आ खड़ा हुआ। सोच में डूबा। पर यह सोच उसके चेहरे पर स्पष्ट नहीं था, भीतर ही भीतर कहीं एक बवण्डर-सा था। पहले उसके कदम रोज की तरह सीधे भीतर तक पहुंच जाने के लिए उठे पर वह रुक गया। उसकी नजर सामने कॉलिज के गेट पर जमी थी। वहा जमी हुई भीड़ को वह देखता रहा। कोई उपाय नहीं। वह इस भीड़ के बीच से बिना गुजरे भीतर नहीं पहुंच सकता और वह भीड़ के बीच से गुजरने का अर्थ जानता है। वह उसी तरह खड़ा रहा। खड़ा-खड़ा उस भीड़ का एक हिस्सा बन गया। वह अकेला नहीं है।

कुछ देर तक उसी तरह निष्क्रिय-सा खड़ा रहा, फिर अलग हट गया। सोच को अलग कर एक निश्चिन्तता उसके अन्दर फैल गई। जो औरों के साथ होगा, वही उसके साथ भी। वह भीड़ से अलग हटकर कालिज की रेलिंग के अन्तिम सिरे पर आ कर बैठ गया। उसने जेब से एक सिगरेट निकाली। आज अच्छा

तमाशा होगा, सिगरेट जलाते हुए उसने सोचा—आज यही सही।

उसके लिए यह पहला मौका था। इससे पहले वह ऐसी स्थिति से नहीं गुजरा था। एक तरह की घबराहट उस पर छाई हुई थी। नई-नई नौकरी है। कहीं कुछ गड़बड़ा गया तो?

प्रिंसिपल की गाड़ी आने तक वह दूसरी सिगरेट खत्म कर चुका था। लड़कों ने एक जोरदार नारा लगाया। वह एकदम रेलिंग से उतर कर नीचे आ खड़ा हुआ। वह अभी भी अन्दर से कुछ डरा हुआ था। पर फिर झटके से बैठ गया उसी तरह रेलिंग पर उछलकर। वह वहीं बैठे-बैठे लड़कों को देखता रहा जो अब धीरे-धीरे नहीं, एक साथ ही प्रिंसिपल की गाड़ी के चारों तरफ इकट्ठे हो गए थे। अब कुछ होगा जरूर। उसने पहले की तरह सोचा। अगर आज पत्नी भी साथ होती किसी तरह, तो शायद उसे हर्ट-अटैक ही हो जाता। पत्नी उसके साथ नहीं थी यह जानकर एक खुशी उसके अन्दर फैल गई।

प्रिंसिपल को अपने ऊपर पूरा-पूरा विश्वास था। लड़कों से किस तरह निपटा जाता है, यह वे अच्छी तरह जानते हैं, ऐसा उनका विश्वास रहा है। दूसरे लोगों ने उन्हें रोका। वहां जाना खतरनाक है। लड़के अभी जोश में हैं। सुनकर वे मुस्कराए थे—'ऐसी क्या बात है? आप लोग व्यर्थ में डरते हैं और मुझे भी डराने की चेष्टा कर रहे हैं। मैं जानता हूं, लड़के क्या चाहते हैं।'

उन्होंने तेज नजरों से चारों ओर जमी हुई लड़कों की भीड़ को देखा। कुछ लड़के गेट पर और चुस्त होकर खड़े हो गए थे। हाथ हवा में जोरों से लहराने लगे थे। प्रिंसिपल ने पहले गाड़ी में बैठे-बैठे ही यह सब देखा। एक बार उनकी इच्छा हुई कि वे न उतरें। ऐसा करने से लड़के जरूर उन्हें कायर समझ

वे कायर बनने की कोई इच्छा नहीं रखते।

इसलिए आहिस्ते से गाडी से नीचे उतर आए। उन्होंने अपने चारों तरफ खड़े लड़कों को देखा। उनकी तनी भृकुटियों और कसी मुट्ठियों को देखा। एक बार पीछे मुड़कर फिर गाड़ी में बैठ जाने की सोची। पर यह सम्भव होता तब न? वे उसी तरह खड़े रहे। लड़कों ने नारा लगाया। वे आगे बढे। लड़के सामने आ गए। वे लड़कों को प्रायः इस गेट से बाहर निकालते थे। आज उन्होंने देखा, यह गेट उन्हें ही भीतर लेने को तैयार नहीं।

उनकी समझ में न आया, उन्हें अब क्या करना चाहिए। रास्ते पर लड़के जुलूस सजाए खड़े थे। इधर-उधर से आती-जाती ट्रामें रोक दी गई थी। बसों का रास्ता बदल दिया गया था। लोग दूसरे फुटपाथ से सहमे-सहमे जल्दी-जल्दी चल रहे थे। इधर के फुटपाथ पर से फलों की टोकरी लेकर बैठने वाली बुढिया अपनी टोकरी उठाने की चेष्टा करती हुई धीरे-धीरे बड़बड़ा रही थी—'लड़िके लोग का चैन ना है।' वह टोकरी को बड़े जतन से उठा रही थी। उसे डर था कि टोकरी का सामान नीचे न आ गिरे। टोकरी का सामान अभी बिका भी नहीं था। उसके सूखे पतले हाथ टोकरी को इधर-उधर से टटोल रहे थे। वह एक असमर्थता से भर उठी। उसने कातर दृष्टि से लड़कों को देखा, वे सब जाने क्या बक रहे हैं, उसने सोचा, और फिर उसी तरह झुकी-झुकी अपनी जगह पर बैठ गई। 'लड़िके लोग लूट रहे हैं और का करिहैं…'

वह बुढ़िया को देख रहा था। बुढ़िया के कमजोर हाथों से वह टोकरी नहीं उठेगी, वह समझ रहा था। बुढ़िया पर उसकी नजर ज्यादा देर तक टिकी न रही, वह रेलिंग छोड़कर भीड़ से कुछ और अलग हट गया। प्रिंसिपल का चेहरा इतना मुरझाया पीला-पीला उसने कभी नहीं देखा था। वह कुछ ओट में

सुनने के लिए प्रिंसिपल वहां रुके नहीं। वे अब अपनी भूल को अच्छी तरह समझ रहे थे। वे समझ रहे थे कि अब उनका यहां खड़े रहना क्या अर्थ रखता है और क्या रंग ला सकता है। वे मुड़े। गाड़ी उनकी बगल में थी पर लगा कोसों दूर है। लड़के उन्हें भी छोड़ना नहीं चाहते थे। पर किसी तरह की गलती भी वे नहीं करना चाहते थे। वे सिर्फ नारे लगाते रहे—'समझौता नहीं, हमारी मांगें पूरी करो।'

प्रिंसिपल साहब चुपचाप गाड़ी में बैठ गये। लड़के हटे नहीं थे। वे उसी तरह जमे थे···जब तक हमारी मांगें पूरी नहीं होंगी यह गेट नहीं खुलेगा।

'मांगें क्या है।'

—'जो लड़कों ने की हैं।'

—'लड़कों की मांग क्या है ?'

—'जो पैम्फलेट पर छपी है।'

—'क्या छपी है ?'

—एक पर्चा ले लीजिए, घर जाकर पढ़ लीजिए।

प्रिंसिपल ने देखा कहीं से एक लाल कागज उनके हाथ में थमा दिया गया है।

—'अगर मांगें पूरी न हुईं तो कालिज का सत्यानाश हो जाएगा।'

प्रिंसिपल ने मुंह मोड़ लिया। वे ड्राइवर पर झल्लाए··· 'तू क्या सुन रहा है। चलाता क्यों नहीं गाड़ी।' पर उन्होंने देखा, रास्ते पर काफी दूर तक जुलूस फैल गया था। आगे दो लड़के खड़े थे। उनके हाथों में बांसनुमा के डंडे थे और उन डण्डों के बीच लिपटा था एक बड़ा-सा कपड़ा, जिस पर बड़े-बड़े अक्षरों में—कालिज का नाम वगैरा लिखा था। उन दोनों लड़कों के पीछे और भी पचासों झण्डे थे। पोस्टर थे। मांगों की लिस्ट थी। बड़े-बड़े अक्षरों में नारे थे।

बुढ़िया तभी से चकित इन लड़कों को ही देख रही थी। उसका सारा ध्यान उधर ही जा अटका था। उसकी टोकरी आज पूरी की पूरी भरी पड़ी थी। पर अधिक इन्तजार नहीं करना पड़ा उसे। एक लड़का आया और बुढ़िया की टोकरी से नारियल का एक टुकड़ा उठाते हुए बोला—'बुढ़िया दादी, आज तुम यह सब यहां मुफ्त में बांटने के लिए बैठी हो क्या ?'

—का बोलत हो बापू, यह सब तुम्ही लोगों का तो है।

—हमी लोगों का है ? लड़का हंसा फिर उस टुकड़े को दांतों के नीचे दबाते हुए बोला—तब बैठो दादी, मुफ्त में खाने वालों की कमी नहीं है। मैं अभी सब को भेजता हूं। और अपने दांतों के बीच टुकड़ा उसी तरह कुचलता रहा। वह दूसरी ओर बढ़ गया। बुढ़िया टोक न सकी कि बापू यह चार आने का है।

अचानक उसके चले जाने के बाद बुढ़िया डर गयी। उसे जोरों से कंपकंपी छूटी। उसे लगा कि ये सारे लड़के उसकी टोकरी को मिलकर लूट लेंगे। उसने जल्दी से एकबार चेष्टा की। शायद टोकरी उठ जाए। किन्तु टोकरी भारी थी, बिना किसी के सहारे के वह उसे उठा पाने में समर्थ न थी। परन्तु उसका डर और बढ़ता ही जा रहा था। वह रुकी नहीं, टोकरी को खींचती हुई दूसरे फुटपाथ की ओर चल दी।

जुलूस काफी दूर तक फैल गया था। बुढ़िया जल्दी-जल्दी जरा दूर से टोकरी को उसी तरह खींचती हुई रास्ता पार कर रही थी। 'मुए लोग रास्ता भी रोककर खड़े हो जाते हैं।' वह समझ नहीं पा रही थी कि वह किसे-किसे को गाली दे। टोकरी भारी थी। खींचती हुई बुढ़िया पसीने से लथपथ हो गई। मुआ पसीना-पानवा भी डरता है। तबही तो मुह बाए आता और चला। उसने नजर उठाकर देखा, डिप्रिजल की गाड़ी बड़ी तेजी से पीछे मुड़ रही थी। वह और जल्दी-जल्दी टोकरी खींचने लगी। डिप्रिजल

को लड़कों ने छोड़ दिया था। गाडी को जल्दी से मोड़कर ड्राइवर भागने की चेष्टा में था। बुढिया पर उसका ध्यान नहीं था। वह प्रिंसिपल का घबडाया और उदास चेहरा देखकर भीतर ही भीतर खुशी का अनुभव कर रहा था। बुढिया का सारा ध्यान अपनी टोकरी पर था। अब भी वह पीछे-पीछे हट रही थी कि अचानक किसी चीज से टकराई। टोकरी उसके हाथ से छूट कर अलग हो गई। बुढिया एक तरफ लुढक पडी। उसे विशेष चोट नहीं आई थी। रास्ते की ईंट को देर तक गाली देती रहती अगर उसे टोकरी की चिंता न होती। वह सम्भलती सी उठी। उसने देखा, वही कुत्ता फिर भागा-भागा आकर उसकी टोकरी की तलाशी ले रहा है। वह तेज से दौडी'''घत। धत।' कुत्ता डरा नहीं। उसी तरह टोकरी को अपने पंजों से टटोलता रहा। 'ठहर मरे'''बुढिया का हाथ अचानक हवा में लहराया और लहरा कर रह गया। एक पल को उसका शरीर जैसे सम्भलने की चेष्टा में हो, पर फिर कटी डाल की तरह वह धड़ाम से गिर पडी। जब वह गिरी थी उसका सिर प्रिंसिपल साहब की गाड़ी के पिछले हिस्से से टकराया और टकरा कर फिर जमीन पर लुढ़क पड़ा था। ड्राइवर को तनिक भी आभास न हो पाया कि वह क्या कर बैठा है, बुढ़िया के गिरने से पहले ही उसने मिरर में से देखा प्रिंसिपल साहब और घबड़ाए हुए जल्दी-जल्दी हाथ हिला रहे थे'''चलो—चलो, भागो—भागो।

वह अब तक निश्चय नहीं कर पाया था कि वह वहां खड़ा रहे या घर चल दे। वह दूर हटकर खड़ा था। अभी दो महीने पहले ही वह नौकरी में आया है। उसके आने के बाद यह पहली स्ट्राइक है जो लड़कों ने की है। उसे पता होता कि उसका दूसरा कोई साथी यहां नहीं आएगा तो वह कदापि न आता। उसे अपने ऊपर अफसोस हो रहा था। बेकार में गाड़ देने आगे के गए, उसने सोचा कि आज घर लौटकर बच्चों के साथ रहे

फिल्म देख ली जाए ? पर वह पत्नी की अपेक्षा अब ज्यादा उत्सुक यहां के लिए हो उठा था। कहीं कुछ गड़बड़ हो गई तो वह सबसे पहले हट जाएगा, यही सोचकर वह कुछ दूर खड़ा था। प्रिंसिपल का डरा व आतंकित चेहरा देखकर परिस्थिति की भयानकता का हल्का-सा आभास उसे जरूर हो गया था उसने देखा था, प्रिंसिपल को भागते हुए। पर भागते वक्त बुढ़िया को जिस तरह वे कुचल गए थे, उनके मन में एक नफरत-सी भर गई। उसने जलती सिगरेट फेंक दी और दौड़ता हुआ लड़कों के बीच आ खड़ा हुआ। देखा बुढ़िया के सिर से खून निकल कर चारों तरफ फैल रहा था। लड़के उसे घेरे खड़े थे। जुलूस बिखर गया था। वह सबको धकियाता हुआ सबसे आगे होकर जमीन पर बैठ गया। बैठकर उसने बुढ़िया को टटोला…नहीं, मरी नहीं, सिर्फ बेहोश हो गई है। उसकी नजर में एक उम्मीद फैल गई।

—अभी यह मरी नहीं है।

—तुम यहां बैठ क्यों गए ? अलग हट जाओ

—इसे अस्पताल ले जाना चाहिए।

—यह नहीं बचेगी।

—तुम डाक्टर हो क्या ?

—नहीं मैं इस कॉलेज का क्लर्क हूं।

—तो तुम कागज-कलम लगा कर बैठ जाओ और हिसाब लगाओ कि यह और कितनी सांसें लेगी और कितनी छोड़ती है। पर खबरदार हाथ मत लगाना इसे।

वह सहम गया। उठ कर खड़ा हो गया चुपचाप।

—बैनर्जी आ रहा है।

—हटो-हटो यहाँ तमाशा क्या करना है।

सारे लड़के उस तरफ देखने लगे। कॉलेज का बन्द दरवाजा भीतर से खुला और एक पतला दुबली-पतली काया वाला लड़का बाहर निकल आया और साथ में दो और लड़के थे।

—क्या बात है, सुना, कोई मर गया।

—ऐक्सीडेन्ट, बुढ़िया मर गई।

—फलो वाली ?

—हां, प्रिंसिपल की गाडी से टकरा गई।

—टकराई नही, उन लोगो ने कुचल डाला।

—प्रिंसिपल गाडी चला रहे थे ?

—ना। ड्राइवर।

—तब बुढ़िया खुद टकराई होगी।

—वह अभी भी जिन्दा है। वह भीड़ से छूटकर बैनर्जी के सामने खड़ा हुआ—वह अभी मरी नहीं है।

—तुम्हें उसकी इतनी चिंता क्यों है ? उसके लड़के हो क्या ?

—नही। मैं तो इसी कालेज का क्लर्क हू।

—उस बुढ़िया के मरते हुए तुमने अपनी आखो से देखा है न ?

—वह तो अभी जिंदा है। उसकी सास चल रही है।

—तुम मुझे पहचानते हो कि नहीं ?

—क्यों नहीं पहचानूगा।

—हा। तुम उस बुढ़िया को अस्पताल ले चलो। वह फौरन मुड़कर फिर बुढ़िया के पास आ खड़ा हुआ। उसने पास खड़े एक लड़के ने कहा—भाई साहब आप एक टैक्सी बुलादें न। बैनर्जी बाबू ने कहा है इसे अस्पताल ले जाने को।

—बैनर्जी ने कहा है ? कहीं पागल तो नहीं हो गए हो ? लाश को अब अस्पताल ले जाओगे ? इसे तो श्मशान ले जाओ।

वह चकित-सा उस लड़के का मुह देखता रहा। फिर झुक-कर उसने बुढ़िया की नब्ज टटोली। मर गयी ?

वह उठा। उसने अपना चेहरा ऊपर नहीं उठाया। भीड़ से

बाहर आकर उसने फिर एक सिगरेट सुलगाई। एक जोरदार कश लेकर उसने धुएं को गले से नीचे उतार लिया। फिर तेजी से अपने घर के रास्ते पर बढ़ गया। कुतिया उसके आगे-आगे चल रही थी। वह उसे दूर से भी पहचान पा रहा था।

□

जुलूस का कुछ भाग छिन्न-भिन्न हो गया था। कुछ लड़के अपनी जगह से हटकर बुढ़िया के इर्द-गिर्द आ गये थे।

कुछ अपनी जगह पर पूर्ववत खड़े थे। एक लड़का लाइन से हटकर कालिज के पिछवाड़े चला गया था। वहां उसने पेशाब किया फिर पास में पड़े कई ईंट के टुकड़े उठाकर उसने पेंट की जेब में डाल लिए, फिर बटन बंद करता हुआ वापस आ गया। आते हुए उसने एक लड़के को टोका—क्यों रे। सब ठीक आते हैं।

—हां।

—लाल।

—आधे।

—कुछ कायदा?

—पोस्टर।

—ओ...साला इतना भी काम करे ना...वह सोचा। उसने अपनी जेब पर एक बार हाथ फिराया, फिर दूसरे लड़के की ओर देखकर मुस्कराया।

दूसरा लड़का कुछ और सोच रहा था। वह सीधा पेड़ की ओर बढ़ा। उसे किसी ने टोका नहीं। पेड़ पर जो खड़े थे, वे एक तरफ हट गए। एक ने उसे टोकते हुए कहा—क्यों यार और कितनी देर है?

—बस अब जरा उस बुढ़िया का झंझट है।

—मर गयी?

—हां। अब उसको ले चलने की तैयारी कर रहे हैं।

एकदम मौके से मर गयी साली। अब तो बाजी अपनी ही है। साला प्रिंसिपल गया काम से।

—गाड़ी तो ड्राइवर चला रहा था न?

—कौन जानता है। हमने तो प्रिंसिपल को ही देखा है। जरा तुम ऊपर जाकर कह तो दो कि पोस्टर का काम छोड़कर वे लोग अब नीचे आएं। देर कर देंगे साले ये।

—अभी आया उस्ताद। एक लड़का ऊपर भागा।

उस्ताद गेट पकड़ कर खड़ा रहा। वह बार-बार अपनी जेब पर हाथ फिरा रहा था।

फिराते-फिराते अचानक बुढ़िया याद आ जाती तो वह कुछ खीझ-सा महसूसते हुए हाथ हटा लेता। उसने पास खड़े एक लड़के से पूछा—सिगरेट है? और उस लड़के से किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना उसकी जेब से उसने खुद ही सिगरेट का पैकेट निकाल लिया—बाहर का माल है रे यह तो? कहां से झाड़ा?'

—कल चौरंगी में एक बेटा को पकड़ा था। अरे क्या बताऊं उस्ताद, अब ये साले दुकानदार भी हरामी हो गए हैं। कोई खातिर ही नहीं करते। पर अपना तो उस्ताद वो दांव मारता है कि बस कुछ मत पूछो। एक घुड़की मारी नहीं कि बेटे ने माल बाहर निकाल दिया।

—साला भला मानुष बन कर रहो तो कोई सुनता है नहीं।

—हां। मुझे भी जाना है एक दिन उधर। सुना है उन लोगों के पास बाहर की सारी चीजें रहती हैं। हमें तो बस दो ही चीजें चाहिए। एक बोतल और एक ट्रांजिस्टर। बेटे लोगों ने अगर ना-नू किया तो वो रंग दिखा दूंगा कि... और आगे बोलना जरूरी न समझ वह सिगरेट का कश लेकर धुएं से गोल-गोल चक्कर बनाने लगा।

—उस्ताद इलेक्शन का क्या होगा ?

—होगा। पहले यह मामला तो निपट लें। साले ने दो-दो को कॉलिज से निकाल दिया। बेटा को कॉलिज नहीं छुड़वाया तो…कल से सारे स्कूल और कॉलिजों में स्ट्राइक करवा देना है।

—अगर इक्जाम इस बार न टला तो ?

—साला इक्जाम की चिंता है तो कालिज क्या करने आता है ?

उस्ताद उस लड़के को घुड़कते हुए बोला—'तुम लोगों की इन आदतों ने ही ग्रुप को बदनाम कर दिया है। इक्जाम नहीं टला तो एक भी कालिज क्या सही सलामत बचेगा ? उस्ताद के चेहरे पर एक रंग आकर फैल गया। वह उस लड़के को और भी कुछ समझाने के मूड में था। पर समय की कमी के कारण चुप हो गया, खड़े-खड़े उसे याद आया, आज रणजीत नहीं दिखा।

वह फिर चक्कर बनाते हुए बोला—रणजीत को जरा बुला लो, कहां है वह ? वह साला मोटू अब तक मेरा दो रुपया नहीं दे रहा है। सोचता है मैं भूल गया हूं। बेटा मैं सेर का सवा सेर हूं।

—रणजीत तो बीमार है उस्ताद, वरना वह आज जुलूस में रंग ला देता।

खाक ला देता। इस बार यूनियन में सब साले ऐसे वैसे पहुंच गए हैं। अच्छा आने दो इस बार इलेक्शन। सब को सड़क पर नहीं दौड़ाया तो मेरा नाम भी उस्ताद नहीं। उस्ताद मन ही मन रणजीत की अनुपस्थिति को महसूसने लगा।

रणजीत आज नहीं आया है। यह बात प्रायः सबकी जान-कारी में थी। रणजीत बीमार है। रणजीत आज जुलूस में नहीं चल सकता। यह सब सुनकर बैनर्जी बड़ा तिलमिलाया था। जुलूस को सजाने और जुलूस पर नियंत्रण रखने में रणजीत

जाहिर है।

रणजीत इधर कई दिनों से कालेज नहीं आ रहा था। पर ऐसा नहीं कि आज के इस जुलूस की खबर उस तक न पहुंची हो। कालेज में वह न आए तो लडके यही समझते हैं कि वह बीमार पड़ा है। उसे अजीब-अजीब रोग होते हैं। जिन्हें वह नया-नया नाम देता है। इन सब रोगों का जन्मदाता और डॉक्टर वह खुद ही होता है। उसे सुबह ही कैंटिन-सेक्रेटरी नारंगीलाल बता गया था सब। उस वक्त वह बिस्तर पर पडा हुआ 'कंफिडेन्शियल एडवाइजर' पढ रहा था, 'नारंगीलाल से उसने उदासी और गम के साथ कहा था—'ओह नारंगीलाल आज इतना बडा स्टुडेंट्स फेस्टिवल होने जा रहा है और मैं उसमें नहीं सम्मिलित हो पा रहा हूं बैड लक ?

नारंगीलाल उसकी मजबूरी देख-समझ कर उदास हो गया। वह कुछ देर चुप रहा। कुछ सोचता रहा। फिर बोला—नारंगी भाई, कोई आवडिया निकाल, मेरा तो बिस्तर से हिलना-डुलना भी मना है। क्या किया जा सकता है ? उसकी सजीदगी से नारंगीलाल मर्माहत हो उठा—तुम चिंता मत करो गुरू। सब ठीक हो जाएगा।

नहीं, नारंगीलाल एक काम हो सकता है।

—क्या ?

—तुम तो कैंटिन सेक्रेटरी हो। तुम्हारा जुलूस में जाना कोई जरूरी नहीं है। ऐसा करो कि तुम मेरी जगह बीमार पड़ जाओ। इस बिस्तर पर मुह ढंक कर लेट जाओ और मैं···और इसके बाद रणजीत को जोरों से खांसी उठी थी। वह खांसते-खांसते उठ बैठा। नारंगीलाल ने नहीं सोचा था कि उसकी तबीयत इतनी खराब है उसे इस तरह खांसकर हांफते देख वह एकदम घबरा गया—क्या बात है गुरू ? क्या हो गया है तुम्हें ?

—दशाकांरिया ?

—रक्ताकोरिया ? यह कौन-सा रोग है ?

—नया रोग है। तुम नहीं समझोगे मैंने जो कहा वह करो।

—नहीं गुरू, तुम चुपचाप लेट जाओ हम सब ठीक कर लेंगे।

—ठीक कर लोगे ?

—हा गुरू वहा उस्ताद और बैनर्जी हैं। दोनों ही एक नम्बर हैं।

—दोनों ही गधे हैं, उल्लू के पट्ठे। वे क्या करेंगे अरे मैं होता तो दिखा देता। पुलिस वालो को नाकों से चना चबवा देता पर क्या कहूं यह रक्ताकोरिया······

उस्ताद को बाद में पता चला सब। उसने बुरा सा मुह बनाते हुए कहा—साला स्टंटबाज है। इसके बाद उस्ताद को याद आया कि समय काफी हो गया है। उसने दो-तीन लड़कों को भेजकर बाजार से फूल पत्ते मंगा लिए। कालेज की दो बेंचों को रस्सी से बाधकर एक कर दिया गया और उस पर बुढ़िया को लिटा कर फूल मालाएं उस पर डाल दी गई। बुढ़िया की आखें अब तक खुली थी, जैसे वह आश्चर्य से यह सब कुछ देख रही हो और समझ न पा रही हो कि यह सब क्या और क्यों हो रहा है ? एक लड़के ने एक बार सोचा कि इन आखों को बन्द कर दे पर एक तरह का भय उस पर छा गया और वह अपनी जगह से जरा भी हट न सका। चार पहलवान किस्म के लड़के बुढ़िया के चारों तरफ खड़े थे। बुढ़िया को उठाने के लिए जल्दी मचा रहे थे—क्या बात है उस्ताद, अब किस बात की देरी है ?

—बस चलते हैं। जरा भीड़ और जम जाए।

—अरे बटुक तू तो आगे वाला हिस्सा उठाएगा न ?

—हा आगे रहने में ही मजा है।

—पर जरा खयाल रखना, जब कोई फोटोग्राफर सामने से

फोटो ले तो जरा साइड हो जाना ताकि अपना थोबड़ा भी जरा चमक जाए।

अच्छा यार मैं फोटोग्राफर को तेरे पास ही भेज दूगा।

—बुढ़िया ज्यादा भारा नही होगी न।

—थी तो एकदम दुबली-पतली। पर सुना है मरने पर आदमी भारी हो जाता है।

— पर यह आदमी कहा है ?

—सच यार इसकी जगह कोई छोकरी होती तो…

—फिर तेरे मेरे को यहां कौन बुलाता ? खुद बेनर्जी और उस्ताद नही जाते ?

—हा, ये लोग भी पक्के मक्कारीबाज है।

और वे दोनों चुप थे, वे अभी फर्स्ट इयर के थे इसलिए वे तय नही कर पा रहे थे कि उन्हें क्या बोलना चाहिए। बैनर्जी ने पकड़कर उन्हें यहा खड़ा कर दिया था।

लड़के बेचैन थे। खुद बैनर्जी महसूस कर रहा था कि काफी देर मे उन लोगों को रोककर रखा है। इतनी देर होना यह ठीक नहीं।

सारी तैयारी हो चुकी थी। जुलूस के आगे बुढ़िया को लाकर रख दिया गया था। चारो पहलवान लड़के चारो कोनो पर अकड़े खड़े थे। उनके चेहरे से साफ झलक रहा था कि वे एक महान् कार्य करने जा रहे है। इसका श्रेय उन्हें मिलेगा। वे भी कल अपना एक अलग प्रभाव जमा सकेंगे। दूसरे सारे लड़के जो उनके पीछे थे, पीछे ही रहेंगे। कल से इन लड़को के बीच वे लोग ज्यादा सम्मानित हो सकेंगे। यह विश्वास उनके अन्दर जोर पकड़ता जा रहा था। वे ही सबसे अधिक बेताब थे। जुलूस के बढ़ने के साथ साथ उनकी जिम्मेदारी बढ़ जायगी, इस बात की समझ ने उन्हें और अधिक उत्साहित कर दिया था। उनके पीछे सैकड़ो लड़के थे। सबके चेहरे पर रंग अलग-अलग

होने के बावजूद एक-सी चमक थी, एक ही उत्सुकता। जो इनसे पहले जुलूस सजा चुके थे, जरा ज्यादा गम्भीर और कम चिंतित नजर आ रहे थे, पर इनकी संख्या बहुत ही कम थी। बैनर्जी देर तक सारे लड़कों के चेहरे पढ़ता रहा।

कॉलिज का गेट बन्द हो गया। आठ-दस लड़के पहरेदारी के लिए वहीं छोड़ दिए गए। शेष लड़के जुलूस के बीच हो गए। बैनर्जी तेजी से बुढ़िया के पास आ खड़ा हुआ। उसने सबसे पहले इस बार बुढ़िया के चेहरे को देखा। उसके सिर का खून उसके चेहरे तक आकर फैल गया था। उसके होंठों के पास से खून निकलना शुरू हुआ था। पपड़ियां-सी जमने लगी थीं। बैनर्जी ने मुंह फेर लिया। यही समय था जब वह अपना प्रभाव जमा सकता था। उसे समय की पहचान है।

बैनर्जी ने एक तरफ को लुढ़की पड़ी बुढ़िया की टोकरी को उठा लिया, फिर उसे अपने चेहरे से ऊपर उठाते बोला—दोस्तो यह टोकरी उस बुढ़िया की है जिसकी लाश आपके सामने है। वह सीधी-सादी फलों वाली बुढ़िया—बेगुनाह बुढ़िया—आपके सामने ही इस बुढ़िया को कुचलकर मार डाला गया, वह भी सिर्फ इसीलिए कि बुढ़िया दयालु थी और हम छात्रों की भलाई की बातें सोचा करती थी, जो हमारे तानाशाह प्रिंसिपल को पसन्द नहीं है। दोस्तो यह बुढ़िया की नहीं, हमारी मौत है। प्रिंसिपल ने पहले हमारे दो निरपराध साथियों को कालिज से निकाल दिया और अब इस निरपराध बुढ़िया को मार ही डाला। इसका प्रतिशोध हमें लेना ही चाहिए। अब यह हमारे जीवन और मरण का प्रश्न है। यह दुर्बलों और सबलों के बीच का संघर्ष है। हम दुर्बल हैं, हम कमजोर हैं तो क्या, हम बदला लेकर रहेंगे। हम......इस बार बैनर्जी ने जरा जोर से कहा—हम......छात्रों ने उत्तर दिया—बदला लेके रहेंगे। वह फिर बोला—इस टोकरी की कसम हम......बदला लेके रहेंगे।

लड़कों का जोश बढ़ गया था। बैनर्जी उसी तरह टोकरी उठाए नारे लगाता रहा उस्ताद किसी लड़के को कुछ समझा रहा था। समझा लेने के बाद वह बैनर्जी की जगह पर आ खड़ा हुआ—यह हमारी आन-बान-शान की बात है कि हम अपने अपमान का बदला लें। हमारे वे दोस्त छात्र जिनको प्रिंसिपल ने कॉलिज से गलत ढंग से निकाला है, फिर से जब तक कॉलिज ज्वाइन नहीं कर लेते, हम इसी तरह आन्दोलन चलाते रहेंगे। बोलो इन्कलाब···जिन्दाबाद।

चारों पहलवान लड़के जोश में थे। उन लोगों ने देखा बैनर्जी आगे-आगे बढ़ रहा है तो उन्हें कुछ चिढ़-सी हुई—साला यहां भी नेता बना जा रहा है। बुढ़िया को उठाये वे धीरे-धीरे बढ़ने लगे। जुलूस रेंगने लगा। कंधा बदलने के लिए चार लड़के और बगल से चल रहे थे। सबसे पीछे जो लड़के थे अभी वे खड़े ही थे। उनकी पारी अभी नहीं आई थी। उनमें से एक काफी उतावला नजर आ रहा था। वह काफी देर से इधर से उधर कर रहा था और एक पैर का बल दूसरे पैर पर डाल कर खड़ा होने की चेष्टा में था। बहुत देर से वह चुपचाप खड़ा था। जुलूस बढ़ा तब वह अपने पास के लड़के से बोला—अच्छा धर्मतल्ला तक पैदल ही जाना होगा?—'नहीं तो क्या जेट पर जाओगे।' दूसरा लड़का काफी उखड़े और तीखे स्वर में बोला। पहला लड़का सहम गया। वह चुप लगा गया। पर देर से वह यों ही खड़ा था। उसके पैर अकड़ने लगे थे। बहुत ज्यादा देर चुप न रह सका। कमजोर आवाज में बोला—'तुम बिगड़ते क्यों हो? मैंने तो यों ही पूछ लिया। मैं सोच रहा हूं कि इतनी दूर जब चलना है तो अपने जूतों को खोल लूं।

—खोलकर गले में लटका लो।

—तुम तो हर बात पर बिगड़ने लगते हो।

—तो और क्या करूं? साला कहां आ फंसा मैं भी।

सोच रहा था आज कॉलिज बन्द है, पिक्चर देखूंगा ज्योति में। उसे उस्ताद पर जोरों का गुस्सा आ रहा था। उसी ने पकड़कर बलात उस जुलूस में खड़ा कर दिया था। वह उस्ताद से काफी डरता था। उस्ताद अभी दूर था, इस लिए बोला – यह कॉलिज है या रंडी है। सारे गुंडे यहीं भर्ती होते हैं। यह उस्ताद कहलाता फिरता है, पर है एक नम्बर का, साला सब पर रोआब गांठता है। वह और कुछ कहता, पर उस्ताद को अपनी ओर आते देख वह बुरा-सा मुंह बना कर चुप हो गया। उस्ताद उनके पास से गुजरते हुए बोला—तुम लोग जरा जोर से आवाज लगाना। पीछे की आवाज दूर तक फैलती है। समझे ?

—हां उस्ताद। वही लड़का मुस्कराते हुए बोला —हम जोर से चिल्लाएंगे।

—गुड।

—हिन्। वह मन ही मन बड़बड़ाया।

□

धर्मतल्ला तक पहुंचते-पहुंचते शाम हो गई। धर्मतल्ला के करीब आकर लड़कों में फिर उत्साह उमड़ आया। वरना इस बीच वे काफी मंदे-हास्यक स्थितियों के बीच चलते चले आ रहे थे। बहुत कम लड़कों के मुंह से ठीक से नारे निकल पा रहे थे। वे बोलते भी थे तो जैसे कोई आपसी मंत्रणा कर रहे हों। [illegible] नहीं थी। पर लड़कों के चेहरों पर पसीना छलछला आया रहा था। थकान और परेशानी उन सबके चेहरे से साफ-साफ दिखलाई पड़ रही थी। कई लड़के बीच में पेशाब करने के बहाने सड़क के दूसरी तरफ चले गये और तब तक पेशाब करते रहे जब तक जुलूस का अंतिम सिरा उनसे काफी दूर नहीं निकल गया। फिर वे उठे। उन्होंने पैंट की बटन ठीक की और इस तरह चेहरों से बढ़े जिन पर कुछ हुआ नहीं था। बढ़ते हुए उन्होंने एक-दो बार पीछे मुड़कर देखा भी पर शायद अभी उन

पर किसी को ध्यान देने की फुरसत नही थी। एक लड़का चलते-चलते अचानक जुलूस के बीच में ही बैठ गया। उसका सिर जोरों से चकरा रहा था। उस्ताद ऐसे लड़कों से काफी चिढ़ता है, पर अभी कुछ कर सकने का मौका उसके लिए नही था, इसलिए उसने उस लड़के का हाथ पकड़ कर उठाया और सड़क के दूसरी तरफ करते हुए बोला—वो ट्राम आ रही है, उसमें बैठकर घर चले जाओ। कही और मत जाना। पता नही साले तुम किस मिट्टी के बने हो, दो मील पैदल भी नही चला जाता।

लड़का कुछ बोला नहीं। उसका चेहरा एकदम जर्द-सा दीख रहा था। आती ट्राम मे वह धीरे से उठा। उस्ताद ने फिर एक बार रोका—सीधा बालीगंज उतरना और घर चले जाना। लड़के ने सिर हिलाया पर उससे पहले ही उस्ताद वहां से हटकर जुलूस मे जा मिला था। आज जुलूस का पूरा भार उसी पर था। साला रणजीत। उस्ताद चिढ़ा था। लड़का एक सीट पर बैठते हुए बुदबुदाया—साला बड़ा उस्ताद बनता है। क्या ट्रिक मारा। आह-हा। कण्डक्टर की तरफ मुह करके उसने पूछा—रूपाली सिनेमा तक का कितना भाड़ा है? और घड़ी देखने लगा कि अभी दूसरा शो देखा जा सकता है या नही।

□

धर्मतल्ला पहुच कर लड़के फिर उत्साहित हो उठे। अब राज्यपाल भवन नजर आ रहा था। राज्यपाल भवन के सामने पुलिस की कतार खड़ी थी। एक फुसफुसा रहा था। पुलिस वाले तो अब बात-बात पर गोली चला देते हैं।

—हम पर भी चलाएंगे क्या?

—कुछ लड़कों के पास बम हैं।

—हमें यहां नही आना चाहिए था।

—नही आने से तुम कल से स्कूल भी नही जा पाते। ये लोग किसी का मुह नही देखते हैं। तुम्हारा बाप घर मे होगा।

—मेरे पिताजी कहते हैं कि अच्छे लड़के इन झमेलों में नहीं पड़ते।

—यह सभी पिता कहते हैं।

लड़के अब एक साथ नारे लगा रहे थे। बैनर्जी सबसे आगे था, वह महसूस कर रहा था कि जितने लड़के हैं उस हिसाब से उतना तेज नारा नहीं लग रहा है उसने कई कोशिश की, पर लड़के उसी आवाज से बोल रहे थे—भय के साथ। राज्यपाल भवन के नजदीक आते हुए उनका भय और बढ़ता ही जा रहा था। कई लड़के घबराकर चुप लगा गए। उनके चेहरे पर सफेदी छा गई। जबकि वे खुद भी इस भय का सही अर्थ नहीं समझ पा रहे थे। वे दम चलते थे, खड़े होते थे, हाथ उठाते थे, होंठ हिलाते थे। मुंह चलाते थे और सामने खड़ी पुलिस की कतार को देख लेते थे। वे बराबर यही कर रहे थे। जो लड़के आगे थे, वे धीरे-धीरे पीछे सरकने की चेष्टा में थे।

पुलिस वालों ने सामने से उन्हें रोका—यहीं रुक जाओ।

लड़के नहीं माने। बात बढ़ गई। आगे बढ़ने वाले लड़के आगे बढ़ते हुए पीछे हटने लगे। पीछे से ही किसी ने बम फेंका था। सीधा एक पुलिस जीप पर गिरा। जीप खाली थी।

इसके बाद अंधकार फिर आया था और धीरे-धीरे धर्मतल्ला सुनसान होता गया। दुकानें बन्द हो चुकी थीं। बस, ट्राम छूट सी गई थीं। लोगों का आना-जाना बन्द हो गया था। लोग आतंकित होते हुए भी उधर शंकित नजरों से देख रहे थे। जरा भीड़ थी वहां के वातावरण में अश्रु गैस की गंध और सड़कों में ईंट-पत्थर फैलकर लोगों को उधर आने-जाने से मना कर रहे थे। कुछ दूरी पर एक ट्राम अभी तक धू-धू जल रही थी। एम्बुलेन्स की गाड़ी में कई लोग भरे जा चुके थे। पुलिस वाले अपने हथियार सम्भाले इधर-उधर खड़े थे।

—कहां गए दादा लोग। न जाने किसने किससे पूछा। पर कोई उत्तर कहीं से नहीं आया।

बहुत देर बाद पुलिस वालों की नजर उस तरफ गई जिधर धूम-मालाओं से सटी बुढ़िया का रक्त सना चेहरा एक तरफ मुड़ा पड़ा था। □ □ □

इस संकलन के कथाकार

अशोक शुक्ल

युवा पीढ़ी के चर्चित व्यंग्यकार। 'प्रोफेसर पुराण' (व्यंग्य उपन्यास) तथा 'मेरा पैंतीसवा जन्म दिन' (व्यंग्य संग्रह) प्रकाशित। गत अठारह वर्षों से राजस्थान-शिक्षा-सेवा में।

राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

कुसुम अंसल

नयी पीढ़ी की समर्थ कथाकार और कवयित्री। चार उपन्यास (उदास आंखें, नींव का पत्थर, उसकी पंचवटी, उस तक) एक कहानी संग्रह (स्पीड ब्रेकर) दो कविता संग्रह (मौन के दो पल, धुएं की तस्वीर) प्रकाशित।

एन-१४८, पंचशील पार्क, नयी दिल्ली

कुसुम चतुर्वेदी

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लगभग ६० कहानियां प्रकाशित। मेरठ विश्वविद्यालय से—'आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, शीर्षक शोध-प्रबन्ध पर पी० एच० डी०। अध्यापन कार्यरत।

७/३ उग्रगीट, डालन वाला, देहरादून

गिरिराज किशोर

हिन्दी के बहुचर्चित कथाकार। सात उपन्यास (लोग, दो, जुगलबंदी, यात्राएं, चिड़ियाघर, इन्द्र सुनें, दावेदार) पांच

कहानी संग्रह तथा एक नाटक (प्रजा ही रहने दो) प्रकाशित।

आई. आई. टी., कानपुर

दामोदर सदन

हिन्दी कथा साहित्य में दामोदर सदन की कहानियों का अपना एक अलग तेवर और विशिष्ट मिजाज है। दो उपन्यास (नदी के मोड़ पर, बृहन्नला) दो कहानी संग्रह (आग, श्मशान) एक एकांकी संग्रह (वापसी) और ललित निबंधों का एक संग्रह प्रकाशित।

क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी—छिंदवाड़ा (म प्र)

प्रभु जोशी

वर्तमान विसंगत राजनीति को अपनी कहानियों में चित्रित करने वाले समर्थ युवा कथाकार। एक व्यंग्य उपन्यास (अभियोग) तथा एक कहानी संग्रह (किस हाथ में) प्रकाशित। पेंटिंग में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त।

आकाशवाणी—इंदौर (म प्र)

महीप सिंह

कथाकार, आलोचक, संपादक। एक उपन्यास (यह भी नहीं) ८ कहानी संग्रह (उलझन, उजाले के उल्लू, घिराव, कुछ और कितना, किसने सम्बन्ध, मेरी प्रिय कहानियां) तथा अन्य अनेक पुस्तकें प्रकाशित। विशिष्ट साहित्यिक पत्रिका-सचेतना के संपादक।

एच-१०८, शिवाजी पार्क, नयी दिल्ली-२६

मृणाल पांडे

नयी पीढ़ी की सशक्त लेखिका। हिन्दी और अंग्रेजी में समानान्तर लेखन। एक उपन्यास (विरुद्ध) दो कहानी संग्रह (दरम्यान, शब्दवेधी)। आगरा विश्वविद्यालय से [illegible]

समसामयिक भारतीय कविता ग्रंथ में हिन्दी खंड का संपादन। लेखन के अतिरिक्त शास्त्रीय संगीत और चित्रकला में विशेष रुचि।

सी-२४, शिवाजी नगर, भोपाल

रामदरश मिश्र

हिन्दी के वरिष्ठ कवि, कथाकार, आलोचक। सात उपन्यास (पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ, बीच का समय, सूखता हुआ तालाब, अपने लोग, रात का सफर, आकाश की छत) तीन कहानी संग्रह (खाली घर, एक वह, दिनचर्या) चार कविता संग्रह तथा अनेक आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित।

हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रमाकान्त

दृष्टि सम्पन्न कथाकार। अधिकांश कहानियां साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर चर्चित हुई हैं। चार उपन्यास (खोई हुई आवाज़, मैं हत्यारा, छोटे-छोटे महायुद्ध, दोपी) एक कहानी संग्रह (ज़िंदगी भर का झूठ) प्रकाशित।

सादातपुर कालोनी, पो० गोकुलपुर, दिल्ली-९४

राजी सेठ

इधर बीच उभरी कथा-लेखिकाओं में अत्यन्त चर्चित नाम। लगभग २५ कहानियां, २५ कविताएं, समीक्षा लेख, चिन्तनात्मक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। एक कहानी संग्रह (अंधे मोड़ से आगे) प्रकाशित।

१/१२, सर्व प्रिय विहार, नयी दिल्ली-१६

रमेश उपाध्याय

युवा कथाकारों में अग्रणी। तीन उपन्यास (चक्रबद्ध, दण्डद्वीप, स्वप्नजीवी) तीन कहानी संग्रह (जमी हुई झील, शेष इतिहास,

नदी के साथ) एक नाटक (सफाई चालू है) प्रकाशित। द्वै-मासिक 'कथन' के संपादक।

बी-३/४, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७

लक्ष्मी कान्त वैष्णव

व्यंग्य प्रधान लेखन में बहुचर्चित युवा हस्ताक्षर। निबन्ध, कहानी, लघुकथा, एकांकी, नाटक आदि हिन्दी की लगभग सभी प्रमुख पत्रिकाओं में प्रकाशित।

एच-६/६६-२२८ नवीन आवासगृह,
शास्त्री नगर, भोपाल-१३

शरद जोशी

हिन्दी व्यंग्य साहित्य के श्रेष्ठ सृजकों में से एक। अनेक व्यंग्य संग्रह (परिक्रमा, किसी बहाने, जीप पर सवार इल्लियाँ, रहा किनारे बैठ, पिछले दिनों) दो व्यंग्य नाटक (एक था गधा उर्फ अलादाद खाँ, अंधों का हाथी) प्रकाशित।

होटल मानसरोवर, बांद्रा, बम्बई

शशि प्रभा शास्त्री

हिन्दी की सुपरिचित कथा लेखिका। ६ उपन्यास (वीरान रास्ते और झरना, नावें, अमलतास, सीढ़ियाँ, परछाइयों के पीछे, क्योंकि) तीन कहानी संग्रह (पुनः हुई शाम, अनुभूति, दो कहानियों के बीच) तथा बाल साहित्य की अनेक पुस्तकें प्रकाशित।

१/६ भगवान नगर, देहरादून (उ. प्र.)

संजीव

कुछ कहानियों के माध्यम से ही अपनी सामर्थ्य का परिचय देने वाले युवा कथाकार। अभी हाल में ही सारिका द्वारा आयो-

जित कहानी प्रतियोगिता में 'अपराध' कहानी को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ।

मुख्य प्रयोगशाला, इंडियन, आयरन एण्ड स्टील क०, कुलटी

सिम्मी हर्षिता

सूक्ष्म संवेदन और भाषिक सामर्थ्य की दृष्टि से हिंदी की बहुचर्चित कथा लेखिका। दो कहानी संग्रह (कमरे में बंद आभास, धराशायी) प्रकाशित।

के-२८, लाजपत नगर-३, नयी दिल्ली-२४

सुखबीर

हिंदी और पंजाबी के सुपरिचित कथाकार और कवि। पंजाबी में अनेक उपन्यास, कहानी संग्रह, कविता संग्रह प्रकाशित। हिंदी में रात का चेहरा, उपन्यास और एक कहानी संग्रह प्रकाशित।

बी-१६, सन एण्ड सी, वरसोवा रोड, बम्बई-६१

हृदयेश

हिंदी के सुपरिचित कथाकार। चार उपन्यास (गाँठ, हत्या, एक कहानी अंतहीन, सफेद घोड़ा काला सवार) दो कहानी संग्रह (छोटे शहर के लोग, अंधेरी गली का रास्ता) प्रकाशित।

१३६-बजरिया, शाहजहाँपुर

सुरेन्द्र कुमार तिवारी

युवा पीढ़ी के समर्थ कथाकार और नाटककार। तीन कहानी संग्रह (दूसरा कुरुक्षेत्र, इसी शहर में, दमन) दो नाटक (दीवारें, एक और राजा) प्रकाशित।

ए-३१ मानसरोवर पार्क, दिल्ली-३२

★★★